अध्यात्मविद्या

श्री शिवानन्द सरस्वती

दिव्य जीवन ससंग प्रकाशन

ॐ श्री स्वामी शिवानन्द शताब्दी प्रकाशन-माला-प्रथम पुष्प

अध्यात्मविद्या

ॐ

अध्यात्मविद्या

SELF - KNOWLEDGE

का अविकल अनुवाद

: लेखक :

श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

: अनुवादिका :

डा० स्वर्णलता अग्रवाल,

एम० ए० (संस्कृत, हिन्दी), पी-एच० डी०

.: प्रकाशक :

दिव्य जीवन सङ्घः, पो० शिवानन्दनगर - २४६ १६२,

जिला टिहरी-गढ़वाल (उत्तर प्रदेश), हिमालय ।

मूल्य] [रुपये २४-०० १९८२

'डिवाइन लाइफ सोसायटी' के लिए श्री स्वामी कृष्णानन्द जी द्वारा प्रकाशित तथा श्री देवेन्द्र विज्ञानी जी द्वारा 'विज्ञान प्रेस' ऋषिकेश, जिला देहरादून, उ०प्र०' में मुद्रित।

प्रथम हिन्दी संस्करण :१६६८

द्वितीय हिन्दी संस्करण :१६८२

(३००० प्रतियाँ)

: प्राप्ति-स्थान :

शिवानन्द प्रकाशन संस्थान,

विव्य जीवन सङ्घ, पो०ऑ० शिवानन्दनगर, जिला टिही-गढ़वाल (हिमालय), उ०प्र०,

पिन : २४६ १६२

प्रकाशकीय वक्तव्य

इस पुस्तक में सङ्कलित गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज के बहुमूल्य सदुपदेशों का परिचय विश्व के अधिकांश सत्यान्वेषी साधकों को आजसे चिरकाल पूर्व प्राप्त हो चुका है। इसका श्रेय मद्रास से प्रकाशित होने वाली अंग्रेजी पत्रिका के यशस्वी सम्पादक श्री पी० के० विनायक मुदालियार को है जो इन्हें अपनी लोकप्रिय पत्रिका में 'आध्यात्मिक शिक्षाएँ' नामक स्थायी स्तम्भ के अन्तर्गत निरन्तर प्रकाशित करते रहे। यहाँ इस सम्बन्ध में यह उल्लेख करना अप्रासाङ्गिक न होगा कि गुरुदेव के अधिकांश वरिष्ठ शिष्य यथा श्री स्वामी परमानन्द जी, श्री स्वामी नारायणानन्द जी, श्री स्वामी चिदानन्द जी आदि इसी पत्रिका के माध्यम से उनके सम्पर्क में आये।

अस्तु, अध्यात्म-जगत् के लिए इन उपदेशों की सतत आव-श्यकता को ध्यान में रख कर, आजसे लगभग दश वर्ष पूर्व उन्हें Self Knowledge नामक पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया गया। अंग्रेजी भाषा का ज्ञान रखने वाले साधकों ने इस पुस्तक का आशातीत आदर किया। फिर भी हिन्दी भाषी जनता के लिए इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ का अभाव बना ही रहा। हर्ष का विषय है कि 'महारानी सुदर्शन कालेज, बीकानेर' की प्रधानाचार्या डा० स्वर्णलता अग्रवाल, एम०ए० (संस्कृत, हिन्दी), पी-एच०डी० ने अपने अनवरत तथा अथक परिश्रम से इस अत्यन्त उत्कृष्ट एवं परमोपयोगी ग्रन्थ का हिन्दी रूपान्तर प्रस्तुत किया है। माननीय आचार्या का जीवन आध्यात्मिकता से ओतप्रोत है। आप उच्च-कोटि की साधिका हैं और दिव्य जीवन सङ्घ की आध्यात्मिक प्रवृ-त्तियों में गहन रुचि रखती हैं तथा इसके प्रचार तथा प्रसार के लिए सदा ही उन्मुक्त रूप से अपना हार्दिक सहयोग प्रदान करती हैं। आपका हिन्दी तथा अंग्रेजी भाषा पर समान रूप से अधिकार है। इसके सुपरिणामस्वरूप आपने मूल लेखक के विचारों और भावों को सुरक्षित रखते हुए, ऐसी सतर्कता एवं सुयोग्यता से यह अनुवाद प्रस्तुत किया है कि वह मूलग्रन्थ के समान ही सरस, रोचक एवं सुबोधगम्य बन पड़ा है। आशा है कि हिन्दी राष्ट्र-भाषी जनता इस ग्रन्थ का समुचित मूल्याङ्कन करेगी। ईश्वर विदुषी अनुवादिका को सुन्दर स्वास्थ्य, दीर्घ आयुष्य, शान्ति और समृद्धि प्रदान करे, जिससे कि आध्यात्मिक जगत् को उनकी अहेतुक सेत्राओं सेनाओं का लाभ चिरकाल तक मिलता रहे!

शिवानन्दनगर, **- प्रकाशक**

वसन्तपञ्चमी, ३ फरवरी, १६६८

अनुवादक की ओर से

भगवान् शङ्कराचार्य ने कहा है-

"दुर्लभं त्रयमेवैतत् देवानुग्रहकारकम् ।
मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्वं महापुरुषसंश्रयः ।।"

- अर्थात् भगवदनुग्रह की आधारभूत ये तीन वस्तुएँ दुर्लभही हैं मानव-जन्म, मोक्ष की इच्छा और सत्सङ्गति।

मानव-जन्म तो पूर्व-जन्म के कर्मों पर निर्भर है, किन्तु एक बार मानव-जन्म प्राप्त हुआ तो महापुरुषों की सङ्गति में रह कर अपने में मोक्ष की इच्छा जाग्रत करने का प्रयत्न करना मनुष्य-जीवन का परम-पुरुषार्थ है।

मुमुक्षा के साथ आत्मज्ञान जुड़ा है। जीव, जगत्, ईश्वर, ब्रह्म आदि को पहचानना, कर्म-सिद्धान्त को जानना और साधना में लगना आवश्यक है।

आज संसार में मानव की समस्त चेष्टाएँ भौतिक सुख-सुविधाएँ प्राप्त करने की ओर हैं और सारे वैज्ञानिक आविष्कार ऐहिक वैभव जुटाने में संलग्न हैं, फिर भी विश्व में सुख और शान्ति का नितान्त अभाव ही है। चारों ओर अशान्ति की घटाएँ छा रही हैं; हिंसा स्वार्थ, छल, कपट, ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य और असामञ्जस्य का ही बोलबाला है।

क्या कारण है ? कारण इसके अतिरिक्त है कि वास्तविक सुख स्थूल विषयों में नहीं, और क्या हो सकता मनुष्य की अपनी आत्मा में है, जिसे मानव अभी समझ नहीं पा रहा है। मनुष्य को अन्तर्मुख होना चाहिए, समस्त सुखों के केन्द्र आत्मा को पहचानना चाहिए । अध्यात्मविद्या का प्रमुख लक्ष्य मानव को आत्मज्ञान कराना ही है ।

पूज्यपाद श्री स्वामी शिवानन्द जी ने इस पुस्तक में आत्म-ज्ञान का स्वरूप, उसकी साधना, उसके मार्ग आदि का बहुत सुन्दर, सरल, सुलभ शैली में दिग्दर्शन कराया है। उन्होंने यह भी बताया है कि इस साधना-पथ में क्या-क्या बाधाएँ आती हैं और उन्हें दूर करने के उपाय क्या हैं। धर्मरहस्य, ब्रह्मस्वरूप, जीवन्मुक्तावस्था आदि आत्मज्ञान-सम्बन्धी एक भी विषय छूटा नहीं है। सामान्य से सामान्य सांसारिक जीव भी, आज वह जहाँ है वहीं से ज्ञान-मार्ग की ओर प्रवृत्त हो सके, इस दृष्टि से सद्गुरु-सेवा, प्रार्थना, नाम-स्मरण आदि सुलभ उपायों का भी सुबोध विवेचन इसमें है ।

आजके बड़े-बड़े विचारवान् लोग भी अध्यात्म की नित्य जीवन में आवश्यकता महसूस करने लगे हैं। वे संसार को आगाह करने लगे हैं कि इस भौतिक विज्ञान और टेक्नालाजी के युग में कहीं मानव-जीवन में आध्यात्मिक पक्ष की उपेक्षा न होने पाये।

यह निश्चित है कि वैज्ञानिक और प्राविधिक विद्या का तथा अध्यात्म का समन्वय होना चाहिए और जब यह समन्त्रय होता है तभी विज्ञान का विध्वंसात्मक रूप मिटेगा, मानव के वास्तविक कल्याण का यह साधन बन सकेगा।

दिव्यद्रष्टा, अब महासमाधि में लीन स्वामी शिवानन्द जी ने 'आत्मज्ञान' की यह एक ऐसी गोली प्रस्तुत की है जिसका बाह्य आवरण काव्य-रस-रूपी मधुर रस से अवगुण्ठित है, जिसकी मूल सामग्री विवेक और अभ्यास-रूपी खरल में कुटी-पिसी है और जो मानव-हृदय की महामोह-रूपी व्याधि का निवारण करने वाली रामबाण औषधि है।

मुझे स्वामी शिवानन्द-साहित्य की ओर खींचने का श्रेय मेरे एक सन्मित्र दम्पति श्री और श्रीमती चावला को है। उन्हीं की प्रेरणा से मैंने न केवल उनका साहित्य पढ़ा, बल्कि ऋषिकेश में उनके सान्निध्य में कुछ समय रही भी। उनसे मैं बहुत प्रभावित हुई और मेरी इच्छा हुई कि उनके दिव्य ज्ञान का प्रकाश हिन्दी-भाषी जनता को भी अधिकाधिक मिले। उनकी हार्दिक इच्छा और प्रत्यक्ष आदेश के अनुसार तथा श्री स्वामी कृष्णानन्द जी की कृपा से इस अमूल्य ग्रन्थ का हिन्दी में अनुवाद करने का सुयोग मुझे मिला, यह मेरा अहोभाग्य है। आशा है उस विश्व-सखा महर्षि के तत्त्वनिरूपण के इस अनुवाद से हिन्दी-भाषी जनता अधिकाधिक लाभान्वित होगी और विश्वशान्ति-स्थापना के महायज्ञ में अपना हविर्भाग सर्पित करेगी।

- स्वर्णलता अग्रवाल

आमुख

इस दृश्य जगत् में मानव का जीवन एक वासनामय जीवन है, प्रलोभनों से घिरा जीवन है। मनुष्य तो आत्म-साक्षात्कार के लिए जन्मा है, धर्ममय जीवन जीने के लिए जन्मा है; परन्तु परिसर-परिस्थितियों के प्रलोभनों और वासनाओं में वह भटक जाता है, बह जाता है। समाज उसे भ्रष्ट कर देता है; उन प्रलोभनों का प्रतीकार करने की शक्ति उसमें रह नहीं जाती है।

एक डिप्युटी कमिश्नर ने मुझसे कहा - "स्वामी जी, लोग रोटी चाहते हैं। मैं रोटी चाहता है। अपने राम को तो दो पैसे की चिन्ता रहती है। आजकल आत्मा की किसे पड़ी है ? अध्यात्म-विचार की किसी को चिन्ता नहीं है ?" मैंने उस सज्जन को उत्तर दिया - "आप केवल रोटी पर जीवित नहीं रह सकते, लेकिन 'ॐ' पर जी सकते हैं, जो कि ब्रह्म का प्रतीक है। मन को मानसिक तथा आत्मा को आध्यात्मिक आहार चाहिए।"

इस प्रकार के गर्वी अहङ्कारी लोगों में आत्मज्ञान प्राप्त करने की आकांक्षा तब जाग उठती है जब उन्हें कुछ-न-कुछ दुःख, कष्ट, सङ्कट, निराशा या विपत्ति आ घेरती है; परन्तु आत्मज्ञान प्राप्त करने की वास्तविक भूख उस व्यक्ति को होती है जो प्रापञ्चिक विषयों की कामना से मुक्त है। वह व्यक्ति केवल निर्मल चित्त के द्वारा अध्यात्म-मार्ग की यात्रा के योग्य होता है।

जिन सज्जनों में आध्यात्मिक संस्कार भरे हैं और जो आत्म-साक्षात्कार के लिए प्रयत्नशील हैं, उनके दर्शन से मेरा हृदय आनन्द से भर जाता है। इस 'कलियुग' (लौहयुग) में भी जहाँ अधिकांश लोग कामिनी और काञ्चन के पीछे दौड़ते हैं, वहाँ ऐसे युवक भी हैं जो उत्कटता के साथ अत्यन्त निष्ठा से ईश्वर की और एकमात्र ईश्वर की प्राप्ति की इच्छा रखते हैं। निःसन्देह वे श्रेष्ठ मानव हैं। उनकी मैं मौन वन्दना करता हूँ।

क्या आप सर्वदा शान्त रहते हैं ? क्या आप उदात्त हैं ? . क्या आपमें दैवी गुण विद्यमान हैं ? क्या आप अज्ञान से मुक्त हैं ? क्या आपको आत्मा का ज्ञान है ? क्या आपको ज्ञान-ज्योति प्राप्त है ? क्या परिशुद्ध, अमर आत्मा का आपने साक्षात्कार किया है ? इन सब प्रश्नों का आपके पास उत्तर है? यदि यह सब आपको प्राप्त नहीं हुआ है तो आइए, बैठिए और इस पुस्तक को पढ़िए । इसमें आप सबके लिए अमृतत्व का सन्देश है। इसका अंशमात्र भी यदि आप अपने जीवन में उतारें तो आप मृत्यु, शोक और दुःख से तर जायेंगे ।

जीवन एक बड़ा रणक्षेत्र है। जीवन एक सङ्घर्ष है। जीने का अर्थ ही आदर्श और ध्येय के लिए लड़ना है। जीवन तो जाग्रति की एक परम्परा है। आपको इन्द्रियों और मन परः विजय प्राप्त करनी ही है। ये ही वास्तविक शत्रु हैं। आन्तरिक और बाह्य प्रकृति को जीतना ही चाहिए। अपनी परिस्थितियों को जीतना चाहिए। पुरानी गलत आदतों को, पुराने सदोष संस्कारों को, दुष्ट विचारों को और कुवासनाओं को जीतना ही चाहिए । अन्धकारमयी

विरोधी शक्तियों से लड़ना चाहिए और अधःपतन की ओर ले जाने वाली शक्तियों का सामना करना चाहिए, प्रतिकार करना चाहिए।

सबसे महान् विजय तो इस चिर चञ्चल चित्त पर विजय पाना है। सबसे बड़ा युद्ध तो आन्तरिक आध्यात्मिक युद्ध है । सबसे श्रेष्ठ वीर वह है जो मन को जीत लेता है।

वीर बनो । भयानक शत्रु- चञ्चल मन - को जीतो । लाख वीरगतियों से उत्तम है आत्म-विजय । कुविचारों, असद्वासनाओं और तृष्णा से तथा दुष्ट वासनाओं और कामनाओं से लड़ना अर्थात् आन्तरिक युद्ध भौतिक युद्धों से कई गुना भयङ्कर है। मन और इन्द्रियों से लड़ना, निश्चित ही, बाह्य जगत् के युद्ध से बहुत ही भीषण है ।

आध्यात्मिक संग्राम-भूमि के वीर बनो। पराक्रमी, दुर्जेय अध्यात्म-सैनिक बनो । शारीरिक वासनाओं, तृष्णाओं, वृत्तियों और संस्कारों तथा मन से लड़ो। मन का समूल उच्छेद करने के लिए ब्रह्मविचार-रूपी मशीनगन चलाओ । ॐ या सोऽहम् की जपरूपी पनडुब्बी के सहारे खूब गहरे पैठो और काम, क्रोध, लोभ, द्वेष, मात्सर्य आदि की अन्तर्धाराओं को नष्ट कर दो । ब्रह्माकारवृत्ति-रूपी विमान में बैठ कर आत्मानन्द की उच्च, उच्चतर ऊँचाइयों में मुक्त विहार करो। अवचेतन मन के सागर तले छिपी हुई वासनाओं को उखाड़ फेंकने के लिए ओङ्कार के जप-रूपी खनन-साधन काम में लो। दश प्रक्षुब्ध इन्द्रियरूपी दशों शत्रुओं का संहार करने के लिए विवेकरूपी टैंक का उपयोग करो। अनुद्वग, क्षान्ति, धैर्य, धृति, शान्ति, निग्रह आदि शक्ति-शाली मित्रों से मैत्री स्थापित कर चित्तरूपी शत्रु पर आक्रमण करने के लिए 'दिव्य समिति' का गठन करो। 'मैं देह हूं, मैं कर्त्ता हूं", 'मैं भोक्ता हूं", आदि विचारों और शरीर के बड़े-बड़े महलों को ढहाने के लिए 'शिवोऽहं भावना' का बम फेंको । रजोगुण और तमोगुण-रूपी बाह्य शत्रुओं को शीघ्र मिटा देने के लिए सत्त्व का गैस भरपूर फैला दो। बत्ती और बल्ब के समान इन मनोवृत्तियों को बुझा दो जिससे कि वैरी मन आप पर आक्रमण न करने पाये । एकाग्रता या चित्तसमाधान-रूपी सङ्गीन से वैरी मन से जम कर लड़ो जिससे कि आत्मिक हीरे-मोतियों से भरा अनमोल खजाना हथिया सको। अब समाधि-सुख, मोक्ष का आनन्द और निर्वाण की शान्ति आपकी मुट्ठी में है। मेरे प्यारे राम ! आप कोई भी क्यों न हो, आपका जन्म किसी भी कुल में क्यों न हुआ हो, आपका पूर्व-जीवन और इतिहास कुछ भी रहा हो, आप अपनी मुक्ति के लिए प्रयल करो; उपयुक्त सभी साधन आपकी सहायता के लिए हैं। उनकी सहायता से आप इसी क्षण महावीर और विजेता बन जाओ ।।

इस पुस्तक की सारी बातें उन लोगों के प्रति कही गयी हैं जिन्हें ईश्वर पर, धर्म पर, कर्म-सिद्धान्त पर तथा पुनर्जन्म पर श्रद्धा नहीं है।

इसमें ऐसी सामग्री का सङ्कलन है जो गत लगभग पन्दरह वर्षों से संसार के अनेक नास्तिकों को और आकुल तथा सङ्घर्ष-रत आत्माओं को सम्बोधन करके लिखी गयी है। इस समय वे सभी अध्यात्म-मार्ग में पर्याप्त प्रगति कर चुके हैं और सांसारिक कठिनाइयों और परेशानियों से सर्वथा मुक्त हैं।

इस पुस्तक में दी गयी शिक्षाओं की सहायता से कई साधकों को अपनी नित्य-साधना की बाधाओं और सम्भाव्य आपत्तियों से बचना सम्भव हुआ तथा उन्होंने अध्यात्म-मार्ग में नमी आशा और नया सुख प्राप्त किया।

यह पुस्तक 'चिन्तामणि' या 'कल्पवृक्ष' अथवा 'कामधेनु' के समान है, जो अपने पास आने वाले को समस्त अभीष्ट सिद्धियाँ प्रदान करती है।

यह सब प्रम, शान्ति और एकत्व की शिक्षा है। मेरा दर्शन और मेरी शिक्षा मुट्ठीभर सुशिक्षित और सम्पन्न व्यक्तियों के लिए ही नहीं है। मैं गरीबों का मित्र हूं। पीड़ित, दलित, रोगी, दुःखी, अपराधी, बहिष्कृत सबका बन्धु हूँ; परन्तु पश्चात्ताप का विरोधी हूँ। मैं दीन, दरिद्र, रोगी तथा पापी जनों की सेवा के लिए ही जीता हूँ। सारा विश्व मेरा शरीर है। सारा विश्व मेरा घर है। मेरा सन्देश, मेरे उपदेश और मेरी शिक्षा विशेषतः दरिद्रों के लिए है, बहिष्कृतों के लिए है, रोगियों और दलित-पीड़ितों के लिए है। मैं सबको गले लगाता हूँ", सभी को अपने आलिङ्गन में आबद्ध कर लेता हूँ। मैं जगन्मित्र हूं। प्रत्येक व्यक्ति अपने लिए मेरा उपयोग कर सकता है। मैं सबका हूँ। मैं सबका सेवक हूँ। मैं सभी का भाई हूं।

क्या आप मेरी सूचनाओं पर हढ़ श्रद्धा से चलेंगे ? मैंने इस पुस्तक में समस्त साधकों के लिए अध्यात्म की एक ऐसी गोली प्रस्तुत की है जो शक्कर से लिपटी है तथा तुरन्त रक्तगत हो कर आत्मसात् हो सकती है।

शिवानन्दनगर, **- स्वामी शिवानन्द**

१ जून, १६५७

प्रार्थनाएँ

१. गुरु-प्रार्थना

परम पूज्य गुरुदेव, नमस्कार। आपने मुझे इस प्रकार की साधना बतायी, इस प्रकार का अभ्यास सुझाया। मैं दुर्गुणों से भरा हूं, मैंने अनेक असत्कार्य किये हैं, कुकृत्य किये हैं। यदि विविध साधनायुक्त मेरे पुरुषार्थमात्र से मेरी मुक्ति अथवा भगवत्साक्षात्कार अवलम्बित होता तो हे प्रभु, आपकी दया का स्थान कहाँ ? आपके अनुग्रह का पात्र कौन ? मुझ पर दया रखें । मैं आपका अनुचर हूँ ।

मुझे भले ही लाखों जन्म लेने पड़ें और आवागमन के अनन्त चक्र में फंसा ही रहना पड़े, फिर भी मेरी आपसे एक ही प्रार्थना है और वह यह कि आपके प्रति मेरी श्रद्धा और भक्ति अटल रहे, कभी न डिगे ।

२. भगवान् शिव की प्रार्थना

हम भगवान् शिव का ध्यान करें, जो उमापति हैं, देवदेव हैं, सङ्कटहरन हैं, कैलासाधिपति हैं, ज्ञानानन्ददाता हैं, पापनाशक है, भूतमात्र के रक्षक हैं, हाथों में त्रिशूल और डमरू धारण किये हैं, कटि-प्रदेश में व्याघ्रचर्मधारी हैं, परम पूज्य हैं और जो सकल गुणों से सम्पन्न हैं, जिनसे जटाजूट से गङ्गा निःसृत हुई है।

उन शिवजी को प्रणाम जो मायातीत हैं, जो माया के चालक हैं, जो योगेश्वर हैं और जो योग के द्वारा ही प्राप्य हैं।

हे वन्दनीय प्रभु, आपका यदि अनुग्रह हो जाय तो चट्टान भी दूध दे सकती है। आपका यदि अनुग्रह हो जाय तो विष भी अमृत बन सकता है। यदि आपका अनुग्रह हो जाय तो लोहा नवनीत बन सकता है। हे सर्वकृपालु भगवन् ! मुझ पर दया करें, मुझ पर अनुग्रह करें। आप ही सर्वस्व हैं। आप ही सब-कुछ करने वाले हैं। आप न्यायशील हैं।

हे करुणानिधे ! आप मेरे पिता हैं, मैं आपका पुत्र हैं। मुझे आपने किस लिए इन कठोर बन्धनों में जकड़ रखा है ? मैं इस देह-बन्धन को तोड़ देना चाहता है। इन दुःखों और कष्टों को मैं अब और सहन नहीं कर सकता। मुझे आप अपना प्रसन्न मुख दिखायें। मैं अपनी उभय भुजाओं से आपको दृढ़ता से पकड़ना चाहता है। आओ, आओ मेरे परम प्रिय देव क्षणमात्र का भी विलम्ब न करो। आपके दर्शन के लिए मैं तरस रहा है। मेरे चित्त की सही स्थिति एक आप ही जानते हैं। आप ही मेरे ध्येय हैं, आपही मेरे सहारे हैं। हे प्रभु पाहि माम् ! पाहि माम् ! मुझे अपनी गोद में उठा लें। मैं आपके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं चाहता ।

हे प्रभु ! मैं नहीं जानता कि प्रार्थना कैसे की जाती है। मैं नहीं जानता कि जप क्या है, ध्यान क्या है, मानस-पूजा क्या है। मेरा हृदय सूना है, शुष्क है। उसमें न भक्ति है और न कोई सद्गुण है; परन्तु कभी-कभी मैं आपका

स्मरण करने का प्रयत्न करता है। साधु-संन्यासियों और दीन-दुःखियों की सेवा करने का प्रयत्न करता है। यही मैं जानता है, अधिक कुछ नहीं। क्या मुझ पर कृपा करेंगे ? मुझे अनुगृहीतं करेंगे ? हे अशरणशरण परम पिता ! अपने दिव्य आलोक से मुझे शीघ्र अनुगृहीत करें । संसार के दुःखों को मैं अब अधिक सह नहीं सकता। मैं सचमुच में व्याकुल हो रहा है।

हे भूतमात्र के सर्वभौम विधाता ! मैं न तो कोई वैभव चाहता है, न मोक्ष चाहता है, न ही प्रभुता या राज्य चाहता हूँ; परन्तु यही चाहता है कि प्राणिमात्र के दुःख, कष्ट सदा के लिए 'समाप्त हो जायें। आप दया-सागर हैं, सर्वशक्तिमान् हैं, आप 'यह कर सकते हैं।

३. भगवान् श्रीकृष्ण को स्तुति

हे विश्ववन्द्य प्रभु ! लोग कहते हैं कि आप दीनबन्धु हैं, दीनानाथ हैं, कृपानिधि हैं, करुणासागर हैं, अनायरक्षक हैं। आपने अहल्या, द्रौपदी, प्रह्लाद, ध्रुव, गजेन्द्र आदि का उद्धार किया। अभी तक मैं दुःख में पड़ा हूं, शोकग्रस्त हूँ, आज्ञाना-न्धकार से आवृत हूँ। मैं आपकी कृपा और सहायता के लिए रो रहा हूँ। हे विश्व के अगोचर स्वामी ! आप कहाँ चले गये ?

हे जगद्वन्द्य देव ! आप सूक्ष्मातिसूक्ष्म हैं। इसी लिए आपको समझना या देखना कठिन है। आप ही अतीत हैं। आप हो भावी हैं। आपके सिवा कुछ नहीं है। आप दया और कृपा का अनन्त सागर हैं। आपके भक्त ही आपको जानते हैं। आप निर्गुण निराकार हैं, फिर भी गुणों और आकारों को ग्रहण करते हैं। आपकी महिमा और आपकी महानता की कल्पना करना भी वड़ा कठिन है। आप मेरे पिता हैं, मेरी माता हैं, मेरे गुरु हैं और एकमात्र शरण हैं। आपको प्रणाम ! मेरी रक्षा करें। मुझे मार्ग दिलायें। इस जन्म-मृत्यु के भयानक चक्र से मेरा उद्धार करें।

हे करुणानिधि ! आपको प्रणाम । मुझे आन्तरिक आत्मशक्ति दें जिससे मैं समस्त सांसारिक प्रलोभनों का प्रतिरोध कर सकू और चट्टान या हीरे से भी अधिक कठोर अपने अहङ्कार को आपमें विलीन कर सकू । सारे संसार की आपकी अद्भुत लीला में सर्वदा मैं आपके द्वारा चुना जा सकू। आपकी गूढ़तम लीलाओं को मैं समझ सकू। आप अपने सभी प्यारे बालकों तक अपना मधुर प्रेम पहुँचाने का मुझे नित्य साधन बनने दें। मेरे शरीर, मेरी इन्द्रियाँ और मेरे चित्त का आप अपनी अविरत लीला में उपयोग करें। हे निगूढ़ प्रम; हे मधुर मौन ! हे अक्षत सुन्दर ! मेरा चित्त सदा-सदा के लिए शान्ति से अपमें रमता रहे !

हे स्वयंप्रकाश परमेश्वर ! जल के बिना मीन जी नहीं सकती, सूर्यमुखी सूर्य के बिना जी नहीं सकती, पतिव्रता स्त्री पति के बिना जी नहीं सकती, प्राण के बिना मन रह नहीं सकता, दीप की ज्योति स्नेह के बिना रह नहीं सकती; इसी प्रकार मैं आपके बिना जी नहीं सकता। हे प्रभु! आयें, आयें; मेरे हृदय में समा जायें। आप मेरे प्राणों के प्राण हैं; मेरी आत्मा की आत्मा हैं।:

आपकी जय हो, आपकी विजयं हो ! हे दयानिधे ! हे जगदा-धार ! हे परात्पर गुरु ! हे परमात्मन् ! हे अनन्त ! आयें, मुझ पर दया करें। मुझे दर्शन दें। अब आपके बिना जी नहीं सकताः । मेरा मन तड़प रहा है। मेरे हृदय-मन्दिर में विराजमान हों। मैं सर्वथा आपकी शरण आया हूँ।

हे विश्वकृपालु ! समय भाग रहा है। इन्द्रियाँ भटक रही हैं। मन छलाँगें भर रहा है। माया व्याप रही है, भरमा रही है। त्रयताप प्रज्वलित हैं। पञ्चक्लेश सन्ताप दे रहे हैं। मित्र बाधा दे रहे हैं। रोग कष्ट दे रहे हैं। ग्रीष्मकाल की ऊष्मा झुलसा रही है। मक्खियाँ, मच्छर, खटमल, बिच्छू तङ्ग कर रहे हैं। संसार की चमक-दमक लुभा रही है। न मैं चित्त एकाग्र कर पाता हूं और न ध्यान । आपकी कृपा-दृष्टि के बिना अध्यात्म-मार्ग में मैं कुछ नहीं कर सकता । हे प्रभु ! आप करुणासागर हैं। मुझ पर कृपा करें । उस करुणा के सागर से एक बूंद यदि मैं पा जाऊँ तो क्या वह सागर सूख जायगा ?

अब आइए ! अब आइए ! मेरे वंशीधर ! अपना दीप्तमान मुख दिखाइए । हे देवकीनन्दन ! मैं आपको कैसे प्रसन्न करू ? मेरे पास न दूध है न दहीं और न नवनीत; कन्दमूल तक नहीं हैं जो धरती से निकलते हैं। फल और पुष्प तो औरों के हाथ पहुँच गये हैं। मेरा रूखा-सूखा साग ही स्वीकार करने की कृपा करें। अब आइए, आइए मेरे प्रभु कृष्ण !

हे वृन्दावन के स्वामी ! हे देवकीनन्दन, हे भक्तों की शरण ! जब मेरे प्राण मेरे शरीर को छोड़ें तब मेरे मुख से आपका नाम निकले । मेरे प्राण वृन्दावन में यमुना के तट पर छूटें या ऋषिकेश अथवा वाराणसी में गङ्गा के तट पर निकलें। शिर पर मुकुट पहने, हाथों में मुरली बजाते हुए मेरे सामने आप खड़े हों। जब शरीर से प्राण निकलें, तब मैं आपके इसी रूप का ध्यान करू । मुझे अपनी सुमधुर मुरली की तान सुना दें। तुलसी-पत्र और चरणामृत मेरे मुंह में हों। मेरे प्राण अनायास निकलें । भयानक पीड़ा से मैं छूट जाऊँ। जब साँस गले में आये तब कोई रोग मुझे पीड़ा न दे। हे मेरे प्राणनाय ! तव शीघ्र आ जाना। भूल न जाना प्यारे कन्हैया। यह मेरी आतं पुकार है। इतना आप मान लेंगे तो आपका कुछ नहीं बिगड़ेगा। क्या यह आपके धर्म का ही एक बङ्ग नहीं है? यह मेरी विनम्र प्रार्थना है, हे विश्व-दयालु ! सभी कुछ आपकी इच्छा पर है। अपनी इच्छा से जो चाहे सो करें। मैं जानता हूं कि आप भक्तवत्सल हैं, पतित-
[बास

पावन हैं। आप पहले से ही मेरे प्रम के धागे में बंध गये हैं । अब आप सचमुच भाग नहीं सकेंगे । मेरे प्रियवर ! क्या भाग सकोगे ?

हमारी जिह्वा आपके गुण गाये, हमारे कान आपकी दिव्य लीलाम्रों का श्रवण करें, हमारे हाथ आपके चरणों में पुष्पाञ्जलि समर्पित करें और मानवता की सेवा करें, हमारे मन आपकी सुन्दर मूत्ति का ध्यान करें, हमारे नयन आपके पावन चरणों और उज्ज्वल मुख के दर्शन करें। हमारे चरण तीर्थक्षेत्रों और सन्तों के धाम की यात्रा करें।

४. भगवान् राम के प्रति प्रार्थना

हे राम ! आप साररूप में ज्योतियों की ज्योति हैं। आप सबका मूल-स्रोत हैं। आप अनन्त ज्योतिपुञ्ज हैं। आप सौन्दर्यो का सौन्दर्य हैं । वह आपकी ही दिव्य ज्योति है जो हिमालय के हिमाच्छादित शिखरों, सूर्य-चन्द्र-तारिकाओं, वृक्षों और पुष्पों को जीवन और कान्ति प्रदान करती है। आपकी ही ज्योति है जो महान् विद्वानों, कवियों, वक्ताओं, राजनीतिज्ञों, पण्डितों, दार्श-निकों और वैद्यों को जीवन और प्रकाश देती है। आप ही वह शक्ति हैं जो यन्त्रों का, विमानों का, जहाजों का, रेल-मोटर आदि का सञ्चालन करती है। सूर्यास्त का सौन्दर्य, व्रज की कान्ति, युवती की मधुर मन्द मुस्कान, वीरों का बल, तपस्वियों की घृति तथा मनीषियों की प्रतिभा आप ही हैं। ऊपर-नीचे, दायें-वायें, आगे-पीछे और सर्वत्र आपका उज्ज्वल, भव्य, दिव्य अस्तित्व प्रकाशमान है।

प्रत्येक वस्तु के अन्दर एकमात्र राम ही कूट-कूट कर भरे हैं। जहाँ देखता हूँ वहाँ राम हैं। जहाँ जाता हूँ वहाँ राम हैं। वह सदा आनन्द से खेल रहे हैं। सारा विश्व उनकी लीला है। पुष्प में, वृक्ष में तथा गगन में राम ही हैं। जल में, वन में और भोजन में राम ही राम हैं। दीवाल और द्वार में राम ही हैं। छतरी में राम हैं, कलम में राम हैं और कागज में राम हैं। यहॉ राम है, वहाँ राम हैं। रामरहित विश्व है नहीं। यह ब्रह्माण्ड राम से भरा है। प्रत्येक वस्तु राम है। राम के बिना कुछ नहीं है। उनकी अनुपम महिमा का मैं कैसे वर्णन करू ? राम की जय हो ! राम को प्रणाम ! राम को नमस्कार ! मैं राम की वन्दना करता है ।

वह सदा आनन्द से खेल रहे हैं। सारा विश्व उनकी लीला है। पुष्प में, वृक्ष में तथा गगन में राम ही हैं। जल में, वन में और भोजन में राम ही राम हैं। दीवाल और द्वार में राम ही हैं। छतरी में राम हैं, कलम में राम हैं और कागज में राम हैं । यहाँ राम हैं, वहाँ राम हैं। रामरहित विश्व है नहीं। यह ब्रह्माण्ड राम से भरा है। प्रत्येक वस्तु राम है। राम के बिना कुछ नहीं है। उनकी अनुपम महिमा का मैं कैसे वर्णन करू ? राम की जय हो ! राम को प्रणाम ! राम को नमस्कार ! मैं राम की वन्दना करता हूँ ।

हे प्रभो दयानिधे ! अध्यात्म-मार्ग में मैं कोई बड़ी सिद्धि की कामना नहीं करता, बहुत बड़ी उपलब्धि नहीं चाहता और न मैं मुक्ति या आत्मसाक्षात्कार ही चाहता हूँ। कृपा कर, अहिंसा के उस दिव्य गुण की मात्र एक किरण भुझे प्रदान करें। मेरा एक भी शब्द किसी के मन को, किसी की भावना को चोट न पहुंचाये। मुझे यह गुण दें, इसके सहारे मैं घोंघे की तरह धीरे-धीरे अध्यात्म की सीढ़ियों की चोटी तक चढ़ जाऊँगा। हे प्रिय राम ! यह मेरी तीव्र कामना है। मुझ पर दया करें। मैंने कई बार याचना की है। अभी तक मेरी झोली खाली ही पड़ी है। कदाचित् अभी मैं आपके वर और अनुग्रह पाने योग्य नहीं बना हूँ। हे करुणा-सागर, मुझे उस योग्य बनने दें।

हे स्वामी ! मेरे समस्त अपराधों को पूर्णतया क्षमा करें। मैं अपनी अविश्रान्त इन्द्रियों और मन को वश करने में असमर्थ हूँ। क्या करू, प्रभु ? मैं असहाय हूं। इस जीवन को खा जाने वाली अनेकानेक कठिनाइयों के बार-बार विचार करने से मैं डर गया हूँ। कहाँ जाऊँ? आपके पाद-पद्य ही मेरे आश्रयस्थल हैं। मैं आपके चरण कमलों की

पुनः पुनः वन्दना करता हूँ। इस विशाल दुःख-पारावार से मुझे उबार, जिसमे में इस समय डूबा हुआ हूँ। त्राहि, त्राहि ! प्रचोदयात्, प्रचोदयात् प्रभु !

हे देव ! मुझ पर दया करें। मेरे दिव्य चक्षु खोलें । मुझे विश्वरूप का दर्शन करने दें। भक्त आपको पतितपावन कहते हैं; भक्तवत्सल, दीनदयालु पुकारते हैं। पक्षी जिस प्रकार अपने बच्चे को पङ्खों के नीचे रख कर उसका संरक्षण करता है, उसी प्रकार आप अपने पङ्खों के नीचे मेरी रक्षा करें।

५. मातृ-वन्दना

देवी भगवती माता को प्रणाम जो समस्त प्राणियों में ज्ञान, दया और सौन्दर्य के रूप में बसती हैं। उन्हें नमस्कार, उन्हें नमस्कार, उन्हें अनन्त प्रणाम ।

हे प्रिय अम्बे ! आप ही आधार-शक्ति हैं। आपके दो रूप हैं-भीषण और सौम्य। आप उदारता हैं, साधुता है, लज्जा हैं, धृति हैं, वीरता हैं, क्षमा हैं और सहिष्णुता हैं। आप भक्तों के हृदय की श्रद्धा हैं; उदार पुरुषों की उदारता हैं; योद्धाओं की वीरता हैं और व्याध की क्रूरता हैं। मुझे मन और इन्द्रियों को वश में करने की शक्ति दें। आपमें निवास करने की योग्यता प्रदान करें। आपको प्रणाम ।

हे नमनीय माते ! आपने ही यह महामाया रची जिससे सारा संसार भ्रमित हो कर विचरण कर रहा है। समस्त विज्ञान आपसे ही निकले हैं। आपकी अनुकम्पा के बिना कोई व्यक्ति अध्यात्म-साधना में सफल हो नहीं सकता और न अन्त में मुक्ति पा सकता है। आप ही इस संसार का बीज हैं। आपके दो रूप हैं - एक अव्यक्त और दूसरा व्यक्त या दृश्य स्थूल विश्व । प्रलय में सारी व्यक्त सृष्टि अव्यक्त में लीन हो जाती है। मुझे दिव्य चक्षु दें। मुझे अपना भव्य रूप देखने दें। इस माया के सन्तरण में मेरी सहायता करें ।

हे मनोरमे माते ! प्रणाम । हे शिवप्रिये ! प्रणाम। हे माँ पार्वती, आप ही लक्ष्मी हैं, आप ही सरस्वती हैं, आप ही काली हैं, दुर्गा हैं और कुण्डलिनी हैं। आप ही समस्त शक्तियों की मूत्ति हैं। आप पराशक्ति हैं। आप भूतमात्रस्वरूपिणी हैं। आप सबका एकमात्र आश्रयस्थल हैं। आपने सारे संसार को मोहित कर रखा है। सारी सृष्टि आपके तीन गुणों का खेल है। मैं आपकी स्तुति कैसे करू? आपकी महिमा अनिर्वचनीय है। आपकी ज्योति अक्षुण्ण है। मेरी रक्षा करें; मुझे राह दिखायें ।

हे करुणामयी माँ ! मैं आपके आगे नतमस्तक है। आप मेरी पालनकर्मी हैं। आप मेरा ध्येय हैं। आप ही मेरा आधार हैं। आप मेरी मार्गदर्शिका हैं; दुःख, कष्ट और विपत्तियों को दूर करने वाली है। आप ही जग की अधिष्ठात्री देवी हैं। आप सृष्टिभर में व्याप्त हैं। सारा ब्रहमाण्ड आपसे ओतप्रोत है। सकल गुणगणों की आप भण्डार हैं। आप मेरी रक्षा अवश्य करें। मैं पुनः पुनः आपको प्रणाम करता है।

हे सर्वेश्वरी माते ! मुझे समदृष्टि और सन्तुलित चित्त कब प्राप्त होगा ? अहिंसा, सत्य और ब्रह्मचर्य मुझमें कब प्रस्थापित होंगे ? मैं आपके विश्वरूप का कब दर्शन कर पाऊँगा ? प्रगाढ़ ध्यान और समाधि में कब प्रवेश करूंगा ? मुझे कब गहन शान्ति और नित्य सुख उपलब्ध होगा ?

हे ज्योतिर्मयी देवी ! मैंने कोई अध्यात्म-साधना नहीं की है और न गुरु-सेवा ही की है। मैंने व्रत नहीं रखा, तीर्थ नहीं किया; जप, ध्यान या उपासना नहीं की, धर्मशास्त्रों का अध्ययन नहीं किया। मुझमें न विवेक है न वैराग्य है। मुझमें न पवित्रता है, न मुक्ति की तीव्र उत्कण्ठा है। मै आपकी शरण आया है। में आपके आगे मौन बन्दना करता है। मैं आपका विनम्र शरणागत हूँ । मेरा अज्ञान का परदा और मेरा मोहावरण हटा दें।

हे करुणामयी माते ! आपको अनन्त प्रणाम । आप कहाँ हैं ? मुझे भुला न दें। मैं आपका बालक हूं। मुझे उस पार ले चलें जहाँ भय नहीं है, जहाँ सुख का आगार है। मैं कब अपनी आँखों से आपके चरणकमल देखूंगा ? आप अपार करुणानिधि है। हे दिव्ये ! जब कि पारस पत्थर लोहे को कञ्चन बना सकता है, गङ्गा का पवित्र जल नाली के गन्दे पानी को पावन कर सकता है तो आप मुझे पवित्र क्यों नहीं बना लेती हैं? मेरी वाणी सदासर्वदा आपका नाम-जप करती रहे।

हे महिमामण्डिते माते ! आपको प्रणाम । समस्त नारियाँ आपका ही अंश है। मन, अहङ्कार, बुद्धि, शरीर, प्राण और इन्द्रियाँ सब आपके रूप है। आप ही पराशक्ति या पराप्रकृति है और आप ही अपराप्रकृति है। आप ही विद्युत्-शक्ति हैं, चुम्बक-शवित हैं, ओज हैं, ऊर्जा हैं और सङ्कल्पशवित भी आप ही है। जितने रूप हैं सब आपके ही रूप हैं। सृष्टि-रहस्य मुझे बता दें । मुझे दिव्य ज्ञान दें।

आपकी ज्योति से भास्कर प्रकाशित है, प्रज्ञा काम करती है, इन्द्रियाँ सक्रिय हैं। आपकी शक्ति से अग्नि जलती है ! आपकी शक्ति से वायु चलता है, जल सागर की ओर बहता है, चुम्बक लोहे को खींचता है, पुष्प प्रफुल्लित होते हैं और परमाणु सञ्चार करते हैं। आप विद्युत् हैं, आप अयस्कान्त है और आप ही समस्त किरणें हैं। मैं एक तुच्छ जीव कैसे आपको नमन करू ? कैसे आपकी स्तुति करू जिसको हरि, ह्र, विरञ्चि आदि समस्त देवता पूजते हैं ?

हे दिव्य माते ! चित्त के अधिष्ठानरूपी षट्चक्र के साकार रूप पर आपके पादयुग्म से निःस्रित अमृत की वर्षा करते हुए, छः शाक्त ग्रन्थों के उपदेश की प्रभा से आपका निज धाम पुनः प्राप्त करते हुए, और साढ़े तीन सर्प-कुण्डलियों के रूप में बदलते हुए आप ही मूलाधार के त्रिकोणाकार अवकाश में सोयी हुई हैं। :

हे माँ कुण्डलिनी ! आपके षट्चक्र ये है- मूलाधारचक्र में चतुर्दल पद्म में पृथ्वी है, स्वाधिष्ठान चक्र में षट्दल पद्म में जंल है; मणिपुर-चक्र में दशदल पद्म में अग्नि है, अनाहत (हृदय)-चक्र में द्वादशदल पद्म में वायु है, विशुद्ध (कण्ठ)-चक्र में षोडश-दल पद्म में आकाश है, और आज्ञा (भ्रूमध्य) चक्र में द्विदल पद्म में मन है-इन सबमें आप प्रविष्ट है ही, साथ ही अपने प्रिय परम शिवजी के साथ सहस्रदल-युक्त पद्म सहस्रार-चक्र में आप ही लीला-विहार कर रही हैं।

साधको, यदि आप कोई बड़ा पत्थर या चावल का बोरा नहीं उठा पाते तो आपके मित्र कहेंगे कि आपमें शक्ति नहीं है; वे यह नहीं कहेंगे कि आपमें विष्णु नहीं है या शिव नहीं है। इससे यही सिद्ध होता है कि शक्ति ही परा-देवता है तथा ब्रह्मा, विष्णु और शिव उसके आज्ञाकारी हैं। भगवत्पाद शङ्कराचार्य ने आनन्द-लहरी में लिख रखा है- "शिव तभी सृष्टिक्षम होता है जब शक्ति-युक्त होता है। उसके बिना वह जरा हिल-डुल भी नहीं सकता ।" माँ की उपासना करें, उनका अनुग्रह प्राप्त करें। वे आपको मुक्ति प्रदान करेंगी ।

६. वेदान्तीय प्रार्थना

(१)

हे प्रभु, आप विश्व के विधाता हैं। आप विश्व के पालक हैं। आप हरियाली में हैं, आप गुलाबों में हैं। आप सूर्य में हैं, तारिकाओं में हैं। हे जन्म-मरण के चक्र से. मुक्तिदाता भगवन् आपको प्रणाम । हे आनन्ददाता, हे अमरत्वदाता, आपको प्रणाम ।

हे भगवन् ! आप सबका कारण हैं; परन्तु आप कारणरहित हैं। आप निराकार हैं; परन्तु आपके अनन्त रूप हैं। आप समस्त शास्त्रों का ध्येय हैं, भूतमात्र की शरण हैं और सबके मुक्तिदाता हैं । हे विश्वकृपानिधे ! आपको प्रणामः ।

आप वास्तविक सारतत्त्व हैं । आप आदि-मध्यान्तरहित हैं । अपने स्वभाव से ही आप परिशुद्ध हैं। आप पवित्र, अजन्मा और अमर हैं। आप मुक्त हैं, आकाशवत् अबाध हैं। आप अपरिवर्तन-शील हैं। आप सबमें एक-सा सारतत्त्व हैं, अरूप हैं, निर्गुण हैं, अवर्ण हैं, निराकार हैं और मृत्युरहित हैं ।

हे गूढ़ों के गूढ़ देव, आपको प्रणाम । सकल हृदयान्तर्वासी ! आपके आगे नतमस्तक हूं। सबके चित्त के हे मौन साक्षी, आपके आगे नत-शिर हूँ। हे जन्म-जन्म के स्वामी ! आपके आगे झुकता हूँ। हे देव ! आप भूतमात्र को जोड़ने वाला आत्मसूत्र हैं, आप सबमें व्याप्त हैं, सबके विधाता हैं और सबके अन्तर्वासी हैं, आपको प्रणाम ।

हे भगवन् ! मुझे उस साम्राज्य में अमर बना लें जहाँ अपार सुख-सन्तोष है, जहाँ अनन्त आनन्द और उल्लास है और जहाँ सारी कामनाएँ अशेषतः तृप्त हो जाती है। हे दयालु परमेश्वर ! मुझे मुक्ति दें, छुटकारा दें।

हे मनोहर देव ! मैं मृत्यु के बन्धन से मुक्त हो जाऊँ। मैं अपने अमर स्वभाव को कभी न भूलू । मैं भूतमात्र को समता की दृष्टि से देख सकू। में ब्रह्म का परम-पद प्राप्त कर सकू। मैं अपवित्रताओं और पापों से छूट सकू; अपने वास्तविक साररूप का दर्शन कर सकू ।

आप कृषक हैं और राजा भी। आप दुष्ट हैं और सन्त भी । आप स्त्री हैं और पुरुष भी । आप बालक हैं और पिता भी । आंप बीज हैं और फल भी। आप पंञ्चतत्त्व हैं और उनका मिश्रण भी । आप सागर हैं और नदियाँ भी। आप कुरूप हैं और सौन्दर्यवान् भी । आप गुण हैं और अवगुण भी। यह सारा ब्रह्माण्ड आपके उदर में बसा है।

हे ज्यो'तमंय, हे जाज्वल्यमान् प्रभु, मैं आपके लिए जीवित है। बालकों के मन्द हास में, दुःखियों के अश्रुओं में, मेरी अपनी भावनाओं में, विचारों में, चिन्तन में, हिमाचल की हिममण्डित शिखर-शृङ्खला में और भुवन-भास्कर की किरणों में मैं आपको देखता हूँ। मेरा आवास आपके अस्तित्व की सुगन्धि से भरा है। अपने नित्य के आहार में आपकी अपार कृपा हो पाता है। अपने नित्य के पेय में मैं आपका दिव्य प्रम ही पीता है। आप प्रम और करुणा के सागर हैं। आपके प्रति मेरा प्रम प्रज्वलित ज्वाला बन जाय । मुझमें जो भी दोष छिपे हों, सब मिटा दें। मेरे हृदय को पावनता, सज्जनता, प्रेम और श्रेष्ठ गुणों से भर दें। मुझे अमर बना दें।

(२)

उस अक्षय परम आत्मा को, ब्रह्म को प्रणाम, जो आपमें, हममें, सबमें बसा है और जो एकमेव सत्य है। जो एक है, जो अपने में वर्णरहित है, जो अपने विविध आविर्भावों में, अपने अज्ञात हेतु को सिद्ध करने के लिए अनन्त वर्ण प्रदान करता है, और जिसमें सारा विश्व अन्त में विलीन हो जाता है, वह ईश्वर है। वह हमें सन्मति प्रदान करे, शुद्ध ज्ञान दे ।

आप दिव्य ज्योति हैं। आप ज्ञान-ज्योति हैं। आप मोह-तिमिर के विनाशक हैं। आप परमगुरु हैं। आप वाङ्मनसागोचर है । आप हर प्रकार की सीमाओं से परे हैं। आप परमात्मा है। आप विश्वात्मा हैं ।

हे प्रभु ! आप सर्वान्तर्यामी हैं, घट-घटगसी हैं। आप सबके आत्मा हैं। आप सबके आधार है, सबके पालनहार हैं। सबके कर्मों के फलदाता आप हैं। सब आप है। सबमें आप है। आप सबके आदि स्रोत हैं। सबके मुक्तिदाता आप हैं। आपको प्रणाम ।

उस परम पुरुष का हम ध्यान करें जो अगोचर है, जो परम सत्ता है, परम ज्ञानस्वरूप है, परमानन्दरूप है, सर्वस्व है, सर्वमय है, अद्वितीय है, वाणी और विचार से परे है और सबका मूलाधार है।

हे स्वयंप्रकाश आराध्य ! हे प्रकाशों के प्रकाश ! हे आनन्द-सागर ! हे जगद्गुरु ! हे ज्ञाननिधे ! हे कल्पवृक्षों के उपवन ! दया-शैल ! भगवन् ! मुक्तिदाता ! शान्तिस्वरूप ! हे गुप्त तुरीय ! हे सर्वातीत साररूप ! अमृतसुख के हे सिन्धु ! आवरण दूर करें और अपनी अक्षय और अद्भुत दृष्टि प्रदान करें।

हे विश्वकृपालु देव ! आपकी कृपा से मैं सत्य का दर्शन कर सकू। मुझमें सर्वदा उदात्त विचार आयें। मैं अपने-आपको दिव्य ज्योति अनुभव कर सकू। मैं लोभ, मोह, काम, मद, द्वेष और अहङ्कार से मुक्त हो सकू ।

आत्मभाव से विश्व-मानवता की सेवा कर सकू । समस्त भूतों में एक ही मधुर, अमर आत्मा का दर्शन कर सकू। विशुद्ध ज्ञान के द्वारा ब्रह्म-साक्षात्कार कर सकू ।

वह ज्योतियों की ज्योति सदा-सर्वदा मुझे मार्ग दिखाये । वह मेरे चित्त के सारे मल दूर करे। वह मुझे प्ररित करे। वह मुझे शक्ति, धैर्य और तेज प्रदान करे। वह मन का मोहावरण दूर करे । अध्यात्म-मार्ग की सारी बाधाएँ दूर करे। मेरे जीवन को सुखी और सफल बनाये। मैं आपको प्रणाम करता है, हे देवाधि-देव ! हे परमप्रभु ! हे देवदेव, हे उपनिषदों के ब्रह्म ! माया के चालक ! हे ईश्वर, हे अमरत्व के महा सेतु ! आपको प्रणाम ।

मुझे ताप-त्रय बहुत ही यातना दे रहे हैं। सर्वत्र अविद्या का चमत्कार चमक रहा है। अशुभ शुभ प्रतीत होता है। देह आत्म-दत् प्रतिभासित होती है। विषय-सुखों में भ्रान्ति-सुख है। हे गुप्त ज्योति ! हे अक्षय सौन्दर्य ! नाम-रूपात्मक आवरण को मिटा दें। मुझे अस्ति, भाति, प्रिय में स्थिर रहने दे। हे अनन्त, हे परात्पर, हे अमृत ! ब्रह्ममय मौन में मेरे चित्त को गलने दें; वह मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है, मेरा केन्द्र है, मेरा ध्येय है, मेरा आदर्श है।

(३)

यह सारा रहस्यमय विश्व जिससे उत्पन्न हुआ है, जो इसका पालक है और जिसमें यह सारा विलीन होने वाला है; जो परम सत्ता है, परम ज्ञान है और परम आनन्द है, उस परब्रह्म को मेरा प्रणाम ।

हे स्वयंज्योति प्रभु ! आप ही संहारा हैं, आप ही रक्षक हैं, आप ही स्रष्टा हैं। अन्तर्यामी, चालक, 'स्वामी, पालक और फल-दाता सब आप ही है। आप ही अज्ञान-तिमिर संहारक हैं। मानवमात्र को तापत्रय से छुटकारा दिलाने वाले आप ही हैं। अपने भक्तों के दुःख और कष्ट मिटाने वाले आप ही हैं। हे परम पूज्य स्वामी ! आपको प्रणाम । मैं आपकी शरण है। मुझे पावनता दें, भक्ति दें। मेरा चञ्चल दुष्ट मन सदा आपमें लीन रहे।

हे घट-घटवासी देव ! आप ही बालक है, आप ही सन्त हैं, आप ही दुर्जन है, आप ही अप्रामाणिक व्यक्ति हैं; आप ही सज्जन हैं, आप ही तपस्या है। आप ही समाधि हैं; योगी आप ही हैं और अष्टसिद्धियों से सम्पन्न महायोगी भी आप ही है। आप सर्वव्यापी हैं, सर्वशक्तिमान् हैं और सर्वज्ञ हैं।

गाय, कुत्ते, बन्दर, पक्षी. वृक्ष और पुष्प सबको प्रणाम; क्योंकि ये सब उसी परमेश्वर के विविध रूप हैं। वह इनमें वैसे ही छिपा है जैसे दूध में नवनीत ।

हे परमेश्वर ! आपको प्रणाम। आप अनादि और अनन्त हैं, आप पुष्प हैं। आप मधुकर हैं। आप स्त्री हैं। आप पुरुष है। आप विषयवासना है। आप ही लहर हैं। आप ही पहलवान हैं, लाठी टेक कर चलने वाला जर्जर वृद्ध भी आप ही हैं। आप सन्त हैं, आप ही लुटेरा हैं। आप सब-कुछ हैं। मैं कैसे आपका बखान करू ?

हैं परमाराध्य भगवन् ! नीलाकाश आप है, आप सागर हैं, आप बिजली है, आप मन हैं, आप वृक्ष हैं, फल है, आप 1 गुलाब हैं, आप सूर्य हैं, चन्द्र हैं और तारा है। विश्व में सर्वत्र आपका ही चेहरा है।

आप एक हैं । आप अनेक हैं । यह सगुण विचार है। आप न एक हैं न अनेक । यह आपका अतीत रूप है। आप द्वत है, आप ही अद्वैत हैं; आप न द्वत हैं, न अद्वत। आप द्वत तथा अद्वैत दोनों से परे हैं। आप साकार है, आप निराकार हैं। आप सगुण हैं, आप निर्गुण है । आप सगुण-निगुण से परे हैं । आप शून्य हैं। आप सब हैं। आप न शून्य हैं न सब हैं। शून्य और सब दोनों से परे हैं।

आप स्वयंप्रकाशी है। आप निरावयव है, निष्क्रिय हैं, असीम है, गुण-दोष रहित है, जन्म-मृत्यु विहीन है। आप हमारे पिता, माता, भ्राता, मित्र, बन्धु, गुरु और एकमात्र - शरण हैं। आप शान्ति, आनन्द, ज्ञान, शक्ति, बल और सौन्दर्य - का अवतार है।

हे प्रभु ! आप सूर्य हैं तो में आपकी किरण हूं; आप सागर : हैं तो मैं आपकी तरङ्ग हूं; आप हिमालय हैं तो मैं आपका वृक्ष हूँ; आप गङ्गा है तो मैं आपका बिन्दु हूं; आप उपवन हैं तो मैं आपका कुसुम हूँ; आप दिद्युत्शवित हैं तो मैं लट्टू (बल्ब) हूं; आप मैदान हैं तो मैं आपकी घास हूं। आपसे प्रेम करते हुए मैं अमर हो गया। यमराज की नाक कट गयी। हे देव ! आपको प्रणाम ।

ॐ शक्ति का शब्द है। ॐ पवित्र एकाक्षरी है। ॐ परम मन्त्र है। ॐ ब्रह्म का प्रतीक है। ॐ सोऽहम् है। ॐ ॐ तत्सत् है। ॐ सबका मूलस्रोत है.। ॐ वेदों का गर्भ है। ॐ समस्त भाषाओं का मूलाधार है। सभी त्रयी ॐ में विलीन हो जाती हैं।

ध्वनिमात्र ॐ से निःसृत है। विषयमात्र ॐ में स्थित है। हे प्रिय ॐ ! हे सर्वशक्तिमान् प्रणव ! मेरे प्राणों के प्राण ! संसार-सागर सन्तरण के हे तरणि! परमानन्द के हे धाम ! मेरे मुक्तिदाता रक्षक ! मुझे मार्ग दिखाओ, उस गुप्त योगी ब्रह्म की ओर मुझे ले चलो ।

७. विश्व-प्रार्थना

(१)

हे गुप्त आलोक ! हे गुप्त चैतन्य ! हे प्रज्ञाघन ! हे गुप्त सत्य ! हे गुप्त जीवन ! हमें असत्य से सत्य की ओर, अन्धकार से आलोक की ओर तथा मृत्यु से अमरत्व की ओर ले जायें। सत्यपथ के यात्री साधकों को अपना दर्शन दें। जो आत्यन्तिक भौतिकवादी है, प्रामाणिक नास्तिक हैं, वञ्चक हैं, अविश्वासी हैं, भ्रान्त हैं, उन सबको अन्तः प्रकाश दें, परमानन्द दें, परा-प्रशक्ति दें और विशुद्ध ज्ञान दें जिससे वे प्रत्येक वस्तु में, कण-कण में, प्रति-क्षण भावनाओं में, विचारों में, अनुभूति में और क्रिया में सर्वत्र आपकी उपस्थिति और आपका अस्तित्व देख सकें ।

उस परम तत्त्व को प्रणाम, जो समस्त भूतों के हृदय में बसता है, जो अग्नि में है, जल में है, जो ग्रह-ताराओं में है, जो वृक्षों में है, जो जड़ी-बूटियों में है, जो पत्थर में है, ईंट में है, लोहे की छड़ में है और जो सारे ब्रह्माण्ड में व्याप्त है।

जो. एक और अगोचर होते हुए भी अपनी अनन्त शक्ति के बल पर प्रत्येक प्राणी को उसकी आवश्यकता के अनुरूप उसकी मनोवाञ्छा पूरी करते हैं और जिनमें सारा संसार आदि से अन्त तक अवस्थित है, वह परमेश्वर हमें सद्बुद्धि प्रदान करें।

उस दिव्य परम सत्ता का हम ध्यान करें जो सबको आलोकित करता है। वह हमारे समस्त कर्मों में हमारा मार्ग-दर्शन करे । वह हमें सम्यक् ज्ञान और शुद्ध बुद्धि दे ।

प्रकाशमान् सूर्य आदि लोक सुखदायक हों, मध्यलोक सुख-दायक हों, भूलोक सुखदायक हों और सब अन्न (औषधियाँ) सुखदायक हों, सब वृक्ष सुखदायक हों, सब दिव्य जीव और दिव्य पदार्थ सुखदायक हों। ईश्वर, वेद, विद्या तथा जितेन्द्रियता सुखदायक हों, यह सब सुखदायक हों और इनके अतिरिक्त अन्य सभी सुखदायक हों, शान्ति देवी मुझको प्राप्त हों।

हे मधुर मनोहर आदि स्रोत ! हे सुखदाता, मधुर फलदाता ! आप अध्यात्म-जगत् में योगियों की निर्विकल्प समाधि हैं, आत्म-ज्ञान का अमृत फलदाता है। हे भगवन्, सभी साधकों में आप निवास करें।

(२)

हे स्नेह और करुणा के आराध्य देव ! तुम्हें नमस्कार है, नमस्कार है। तुम सच्चिदानन्दघन हो। तुम सबके अन्तर्वासी हो ।

तुम सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान् और सर्वज्ञ हो।

हमें उदारता, समदर्शिता और मन का समत्व प्रदान करो । श्रद्धा, भक्ति और प्रज्ञा से कृतार्थ करो। हमें आध्यात्मिक अन्तःशक्ति का वर दो,

जिससे हम वासनाओं का दमन कर मनोजय को प्राप्त हों।

हम अहङ्कार, काम, लोभ और द्वेष से रहित हों। हमारा हृदय दिव्य गुणों से पूर्ण करो ।

सब नाम-रूपों में तुम्हारा दर्शन करें।

तुम्हारी अर्चना के रूप में इन नाम-रूपों की सेवा करें ।

सदा तुम्हारा ही स्मरण करें।

सदा तुम्हारी ही महिमा का गायन करें।

केवल तुम्हारा ही कलिकल्मषहारी नाम हमारे अघर-पुट पर हो ।

सदा-सर्वदा हम तुममें ही निवास करें।

शान्तिपाठः

ॐ शं नो मित्रः शं वरुणः । शं नो भवत्वर्यमा । शंन इन्द्रो बृहस्पतिः । शं नो विष्णुरुरुक्रमः । नमो ब्रह्मणे । नमस्ते वायो । त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि । त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदि-ष्यामि । ऋतं वदिष्यामि । सत्यं वदिष्यामि । तन्मामवतु । तद्वक्तारमवतु । अवतु माम् । अवतु वक्तारम् ।। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥१॥

(कृष्ण यजुर्वेद : तैत्तिरीयोपनिषद्)

अर्थ

ॐ । मित्र (सूर्य) हम लोगों की भलाई करें। वरुण की कृपा हम पर रहे। प्रार्थना है कि अर्थमा हम सबकी भलाई करें । इन्द्र और बृहस्पति हम सबका भला करें। विष्णु हम लोगों का भला करें। ब्रह्म को प्रणाम। हे वायु, तुमको नमस्कार। तू ही एक प्रत्यक्ष ब्रह्म है। एक तुझको मैं प्रत्यक्ष ब्रह्म घोषित करता है। मैं तुझको सत्य कहता हूँ। मैं तुमको ही यथार्थ मानता हूँ। वह मेरी रक्षा करे। वह गुरु की रक्षा करे। वह मेरी और गुरु की रक्षा करे ॥ १॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

ॐ सह नाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीयं करवावहै। तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥२॥

(कृष्ण यजुर्वेद : कठोपनिषद्)

अर्थ

वह हम दोनों (गुरु और शिष्य) की रक्षा करे। वह हम दोनों को एक साथ ही आनन्द दे। हम दोनों एक साथ ही पुरुषार्थ करें । हमारा अध्ययन-अध्यापन सुप्रकाशित हो। हम एक-दूसरे से घृणा न करें ॥२॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

ॐ यश्छन्दसामृषभो विश्वरूपः छन्दोभ्योऽध्यमृतात्संबभूव । स मेन्द्रो मेधया स्पृणोतु । अमृतस्य देवधारणो भूयासम् । शरीरं मे विचर्षणम् । जिह्वा मे मधुमत्तमा । कर्णाम्यां मूरि विश्रुवम् । ब्रह्मणः कोशोऽसि मेधयाऽपिहितः । श्रुतं मे गोपाय ।। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।।३।।

(स्वरूपबोध उपनिषद् तथा तैत्तिरीयोपनिषद् अनुवाक-४)

अर्थ

वह इन्द्र, जो वेदों का सार है, जो विश्व-रूप है, जो वेदों से भी ऊपर अमर पद में रहने वाला है और अंब जीव बन गया है, हम लोगों को बुद्धि प्रदान करे। हे देव, मैं अमरत्व का अधिकारी हूँ, मेरा शरीर विचर्षण हो, मेरी वाणी में अत्यन्त मधुरता आ जाय। मैं अपने कानों से पर्याप्त श्रवण कर सकू। तू ज्ञान से आच्छादित ब्रह्म है। मैंने जो-कुछ सुना, उसके लिए मेरी रक्षा करो॥३॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

ॐ अहं वृक्षस्य रेरिव । कीत्तिः पृष्ठं गिरेरिव । ऊध्वं-पवित्रो वाजिनीव स्वमृतमस्मि । द्रविणं सवर्चसम् । सुमेघा अमृतोऽक्षितः । इति त्रिशंकोर्वेदानुवचनम् ।। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥४॥ (ब्रह्मानुभव उपनिषद् तथा तैत्तिरीयोपनिषद् अनुवाक१०)

अर्थ

मैं वृक्ष का सञ्चालक है। मेरा यश पहाड़ की चोटी के समान है। दिवाकर में मैं पवित्र अमृत के समान है। मैं एक अनन्त वैभववित् कोष, प्रज्योतित ज्ञानी है, अमर और अविनश्वर है-यह त्रिशङ्कु के वैदिक ज्ञान पर वचन है ।॥४॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिबं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णसाद्राय पूर्णमेवावशिष्यते ।। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥५॥

(शुक्ल यजुर्वेद : ईशोपनिषद्)

अर्थ

वह पूर्ण है। यह पूर्ण है। पूर्ण से पूर्ण को निकालने पर पूर्ण ही शेष रहता है ।॥५॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

ॐ आप्यायन्तु ममांगानि वाक् प्राणश्चक्षुः श्रोत्रमयो । बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि सर्व ब्रह्मोपनिषदं माहं ब्रह्म निराकुर्या. मा मा ब्रह्म निराकरोत् श्अनिराकरणमस्त्वनिराकरणं मे अस्तु । तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु ते मयि सन्तु ।। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।।६।।

(सामवेद : केनोपनिषद्)

अर्थ

हे भगवन् ! मेरे अङ्ग-प्रत्यङ्ग, मेरी वाणी, मेरे प्राण, नेत्र और कानों को बल प्राप्त हो और सभी इन्द्रियाँ पुष्ट और तत्पर हो जायें। सब-कुछ उपनिषदों का ब्रह्म ही है। मैं कदापि ब्रह्म का निराकरण न करू", अवहेलना न करू; कभी भी उपेक्षा न करू । ब्रह्म कभी मेरी अवहेलना न करे। कभी भी उपेक्षा, अवहेलना न हो। जिन गुणों की उपनिषदों में घोषणा है वे सब गुण मुझमें आयें, वे सब गुण मुझमें आयें ।।६।।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

ॐ वाङ्मे मनसि प्रतिष्ठिता । मनो मे वाचि प्रतिष्ठितम् । आविरावीर्म एधि वेदस्य म आणीस्थः । श्रुतं मे मा प्रहासीर-नेनाधीतेनाहोरात्रान्संदधाम्यूतं वदिष्यामि । सत्यं वदिष्यामि । तन्मामवतु । तद्वक्तारमवतु । अवतु माम् । अवतु वक्तारम् । अवतु वक्तारम् ।। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।।७।।

(ऋग्वेद : ऐतरेयोपनिषद्)

अर्थ

मेरी वाणी मन में प्रतिष्ठित हो। मेरा मन वाणी में प्रतिष्ठित हो। अपने को मेरे सामने प्रकट करो। आप दोनों वेदों के आधार हैं। जो-कुछ मैंने सुना है, उसको नष्ट मत करो। मैं अध्ययन करते-करते रात और दिन एक करता है। मैं सत्य बोलूंगा । वह मेरी रक्षा करें। वह मेरे गुरु की रक्षा करें। वह मेरी रक्षा करें। वह मेरे गुरु की रक्षा करें ॥७॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

ॐ भद्रं नो अपिवातय मनः ।॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ ८।।

(ब्रह्मरहस्य उपनिषद्)

अर्थ

हममें पवित्र मन प्रकट करो ॥८॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

ॐ भद्र कर्णेभिः शृणुयाम देवाः भद्र पश्येमाक्षभिर्य-जत्राः । स्थिरैरंगैस्तुष्टुवांसस्तनूभिव्यंशेम देवहितं यदायुः । स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धधवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः । स्वस्ति नस्तार्थ्यो अरिष्टनेमिः । स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ।। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।।६।।

(अथर्ववेद : प्रश्नोपनिषद्)

अर्थ

हे देवताओ ! हम सब अपने कानों से शुभ श्रवण करें। हे देव, आप पूजनीय हैं। हम लोग अपने नेत्रों से मङ्गल दर्शन करें। हम लोग इस जीवन का आनन्द, जो हमें देवकृपा से मिला है, उन्हीं के गुणगान प्रत्यङ्ग से करते हुए

उठावें। यशस्वी इन्द्र हम लोगों को वरदान दें। सर्वज्ञ भास्कर हम लोगों को आशीर्वाद दें । पापहारी गरुड़ हम लोगों को आशीर्वाद दें। बृहस्पति हम लोगों को आशीर्वाद दें ॥६॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

ॐ यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं । यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै । तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वे शरणमहं प्रपद्य ।। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥१०॥

(योगसार उपनिषद्)

अर्थ

मैं उन भगवान् की शरण में जा कर मुक्ति का इच्छुक बन प्रणाम करता है जो आदि में ब्रह्मा की सृष्टि करते हैं, जिन्होंने उसको वेद प्रदान किये और जो आत्मा तथा बुद्धि की ज्योति हैं ।।१०।।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

तत्त्वमसि ! वह तुम्हीं हो !

(स्वामी शिवानन्द सरस्वती)

नेति के प्राचीर से उस पार कोई अंशुमाली ।
प्राणियों में प्राण बन कर निहित जिसकी रश्मिथाली ।।
एक ज्योतिज्योति जो, हे वत्स, जानो वह तुम्हीं. हो ।।

जगत् के चलचित्र का आधारगत् परिधान जो है
नास्ति के नास्तित्व में अस्तित्व का अभिधान जो है
सत्य जो, सर्वेश जो, हे वत्स, जानो वह तुम्हीं हो ।'

जो विधाता का विधायक एक अधिपति है अखिल का
जो नियति का भी नियामक एक नायक है निखिल का
वह न तुमसे इतर कोई, वत्स, जानो वह तुम्हीं हो ॥

पञ्चमुख की आरती जिसके समक्ष दिखा रहे
तुम अर्चना की भारती जिसके समक्ष सुना रहे
तुम उस शिला का देव मिथ्या, सत्य जो है वह तुम्हीं हो ।।

एक अभिनेता बना, अभिनीत भी, अभिनय तथा है
एक मायावी बना, व्यामोह, मायामय तथा है
कृत्स्न नाटध-प्रपञ्च जिसका कार्य, जानो वह तुम्हीं हो ।।

ॐ

ब्रह्मलीन स्वामी शिवानन्द - परिचय

आप प्रख्यात हुए,
नवयुग के धर्माधिनायक के रूप में ।
निज अपरिसीम सेवा से
अभिनव विश्व-मानव के नैतिक और आध्यात्मिक
जीवन-स्तर को प्रोन्नत बनाया ।

महामहिम स्वामी शिवानन्द,
आपने ८ सितम्बर, १८८७ को दक्षिण भारत के
पट्टामडाई ग्राम में जीवन का प्रथम प्रभात देखा ।

पुनः चिकित्सा-व्यवसाय को अपनाया -
'एम्ब्रोसिया' अँग्रेजी में चिकित्सा विज्ञान की पत्रिका प्रकाशित की ।

मलय में दश वर्ष तक चिकित्सा कार्य करते रहे,
१६२३ में सांसारिक ऐश्वर्य का त्याग किया,
१६२४ में संन्यासाश्रम में प्रविष्ट हुए,

१२ वर्ष तक अनवरत तपश्चर्या के पश्चात्

१६३६ में दिव्य जीवन सङ्घ का
१६४५ में विश्व-धर्म-समाज का
१६४८ में योग-वेदान्त-आरण्य-अकादमी का संस्थापन किया ।

दिव्य जीवन सङ्घ की शाखाएँ विश्वभर में व्याप्त हैं ।
इसमें सभी धर्मों और राष्ट्रीयताओं का अभिनिवेश है।

आपने योग, वेदान्त आरोग्य एवं चिकित्सा-विज्ञान पर ३०० से अधिक ग्रन्थों का प्रणयन किया ।

१६५० में अखिल भारत और सिहल देश की यात्रा की और सर्वत्र आध्यात्मिक जाग्रति प्रदान की।

१६५३ में विश्व-धर्म संसद् का समाह्वान किया -जिसमें देश-विदेश के शिष्टमण्डल पधारे ।

आपकी दिव्य प्रेरणाप्रद एवं परहित निरत जीवन-सरणि ने भारत के धर्म और अध्यात्मवाद में चार चाँद लगाये हैं।

और भारत की 'दिव्य वाणी' को अधिकाधिक विस्फुटित, महिमान्वित किया है। यह "वाणी" विश्व के जनमानस तक विकीर्ण हुई।

हे विश्व के धर्माधिष्ठाता ! हम सर्पित करते हैं, आपके निमित अपने उपर्युक्त विपुल हृदयोद्गार ।।

विषय-सूची

प्रकाशकीय वक्तव्य 5

अनुवादक की ओर से 6

आमुख 8

प्रार्थनाएँ 11

१. गुरु-प्रार्थना 11

२. भगवान् शिव की प्रार्थना 11

३. भगवान् श्रीकृष्ण को स्तुति 12

४. भगवान् राम के प्रति प्रार्थना 14

५. मातृ-वन्दना 15

६. वेदान्तीय प्रार्थना 17

७. विश्व-प्रार्थना 20

शान्तिपाठः 22

तत्त्वमसि ! वह तुम्हीं हो ! 26

ब्रह्मलीन स्वामी शिवानन्द - परिचय 27

प्रथम अध्याय :सृष्टि 34

(१) सृष्टि और विकास 34

(२) यह संसार क्या है 40

(३) पुनर्जन्म के सिद्धान्त 44

(४) मृत्यु और उस पर विजय 47

(५) मोक्ष 50

द्वितीय अध्याय: हिन्दुत्व 52

(१) हिन्दुत्व 52

(२) वास्तविक धर्म 53

(३) भारत माता का वैभव 54

तृतीय अध्याय: गुरु और शिष्य 57

(१) गुरु की आवश्यकता 57

(२) गुरु और शिष्य 59

(३) साधक की योग्यता.....62

(४) सञ्चित, पुरुषार्थ और प्रारब्ध कर्म.....66

चतुर्थ अध्याय: ईश्वर और अवतार.....70

(१) ईश्वर का सगुण और निर्गुण रूप.....70

(२) भगवान के गुण.....75

(३) परमेश्वर का प्रसाद.....78

(४) ईश्वरावतरण का कारण.....81

(५) मूर्ति-पूजा.....83

(६) मानसिक पूजा.....87

पञ्चम अध्याय: भक्तियोग.....89

(१) भक्ति क्या है ?.....89

(२) भक्ति के विभिन्न प्रकार.....95

(३) भक्ति में भाव.....97

(४) परा-भक्ति.....97

(५) प्रेम को विश्वव्यापी बनाइए.....102

(६) भक्त कौन है ?.....105

षष्ठ अध्याय: भक्ति का विकास कैसे हो ?.....107

(१) भक्ति का विकास कैसे हो ?.....107

(२) परमेश्वर में श्रद्धा.....117

(३) प्रार्थना.....119

(४) नमस्कार.....121

(५) सङ्कीर्तन का महत्त्व.....122

(६) दान.....124

(७) सत्सङ्ग.....128

(८) शरणागति.....129

सप्तम अध्याय: जप-योग.....132

(१) जप - एक सरल साधन.....132

(२) जप के लिए मन्त्र.....133

(३) अजपा जप.....134

(५) जप के लाभ 135

(६) भावपूर्वक निरन्तर जप को आवश्यकता..137

अष्टम अध्याय: कर्मयोग 139

(१) कर्मयोग की आवश्यकता 139

(२) कर्मयोग के प्रकार 142

(३) कर्मयोग का अभ्यास 144

नवम अध्याय: माया 151

(१) माया क्या है ? 151

(२) अविद्या 153

(३) अहङ्कार..154

दशम अध्याय: ब्रह्मविद्या..157

(१) शरीर-त्रय 157

(२) अवस्था-त्रय 160

(३) ब्रह्मविद्या (ब्रह्मज्ञान)..165

(४) अध्यास 168

एकादश अध्याय: वेदान्त..173

(१) वेदान्त-दर्शन..173

(२) वेदान्त के उपदेश..181

(३) अनेकता में एकता..185

(४) वेदान्त की महिमा..189

(५) वेदान्त-साधना 191

द्वादश अध्याय: ज्ञानयोग..204

(१) ब्रह्म क्या है ?..204

(२) ब्रह्म की प्रकृति..206

(३) वेदान्त-ज्ञान 208

(४) वेदान्त और दूसरे मत 211

(५) तत्त्व 212

(६) ब्रह्मविद्या के विद्यार्थी 213

(७) राजनीति में शान्ति 215

(८) साधकों के लिए निर्देश....216
त्रयोदश अध्याय: जीवन्मुक्त....221
परिशिष्ट....230
आध्यात्मिक दैनन्दिनी....230
संकल्प-पत्र....232
आवश्यक नियम....234

अध्यात्मविद्या

प्रथम अध्याय :सृष्टि

(१) सृष्टि और विकास

सृष्टि के आरम्भ में एकमेव अद्‌वितीय ब्रहम ही था। जब अन्धकार पर अन्धकार विलोड़ित हो रहा था, उस समय एकमात्र सत् ही था । किसी भी प्राणी को यह पता नहीं है कि यह ब्रहमाण्ड किस प्रकार बना ? ऋग्वेद में लिखा है, "यहाँ कौन जानता है तथा यह कौन बतला सकता है कि यह विभिन्न रूपात्मक जगत् कहाँ से उत्पन्न हुआ ? जब देवता तक इस सृष्टि के उद्‌भव के पश्चात् उत्पन्न हुए तो भला फिर यह कौन जाने कि यह जगत् कहाँ से उत्पन्न हुआ ?" (ऋग्वेद ८-१७-६)

हिरण्यगर्भ, प्रथमजात, सूत्रात्मा तथा कार्यब्रहम ईश्वर के सर्जनात्मक रूप ब्रहमा के ही अन्य नाम हैं। सूत्रात्मा का अर्थ है सूत-आत्मा । पुष्पमाला के धागे के समान हिरण्यगर्भ सब प्राणियों में व्याप्त हैं, अतः उनका नाम सूत्रात्मा हुआ । 'सूत्र में मणियों के सदृश यह सम्पूर्ण जगत् मेरे में गुंथा हुआ है" (गीता, अध्याय ७-७)। हिरण्यगर्भ कार्यब्रहम है और ईश्वर कारणब्रहम । कारण का अर्थ है निमित्त और कार्य का अर्थ है परिणाम । हिरण्यगर्भ ईश्वर से उत्पन्न है।

कुछ लोगों की यह धारणा है कि यह ब्रहमाण्ड ईश्वर के सङ्कल्पानुसार शून्य से उत्पन्न हुआ है और प्रलय के अवसर पर यह पुनः शून्य में ही विलीन हो जायेगा। परन्तु शून्य से सृष्टि की उत्पत्ति का यह सिद्‌धान्त वैज्ञानिकों को मान्य नहीं है। उनका बलपूर्वक यह कथन है कि जो पदार्थ आज है, वह इस समय से पूर्व भी सदा विद्‌यमान रहा होगा और किसी न किसी रूप में आगे भी सदा विद्‌यमान रहेगा। सांख्य दर्शन में भी देखते हैं, "असत् कारण से सत् कार्य की उत्पत्ति नहीं हो सकती" (सांख्य सूत्र ७८) । गीता भी कहती है: "असत् से सत् की उत्पत्ति हो ही नहीं सकती और न सत् का अभाव ही होता है। इस प्रकार इन दोनों को ही तत्वज्ञानी पुरुषों द्‌वारा देखा गया है" (गीता, अध्याय २-१६) ।

असत् वस्तु से सत् वस्तु की उत्पत्ति नहीं हो सकती । सत् वस्तु से ही सद्‌वस्तु की उत्पत्ति होती है।

अचेतन तत्त्व सृष्टि का परम कारण नहीं हो सकते; क्योंकि वे जड़ हैं। इस विश्व को व्यवस्थित रूप प्रदान करने में सक्षम होने के कारण सर्वज्ञ ईश्वर ही इसका स्रष्टा हो सकता है।

कार्य अपने उपादान कारण से अलग नहीं रह सकता । उदाहरण-स्वरूप घट का उसके उपादान कारण मृत्तिका से पृथक् कोई अस्तित्व नहीं हो सकता। इसी भाँति इस सृष्टि का इसके उपादान कारण ब्रहम से पृथक् कोई अस्तित्व नहीं है। इसकी कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। यह ब्रहम के साथ एकाकार है। ब्रहम ही सत् है। यह संसार

प्रतीति मात्र है। जब मनुष्य आत्मज्ञान प्राप्त कर लेता है तो यह जगत् उसके लिए उसी प्रकार अदृश्य हो जाता है जिस प्रकार दीपक के प्रकाश में वास्तवि क रज्जु को पहचान लेने पर कल्पित सर्प अदृश्य हो जाता है।

ईश्वर सङ्कल्प करता है। ईश्वर के प्रभाव से काल द्वारा गुणों की साम्यावस्था में क्षोभ उत्पत्र होता है। काल ईश्वर की ही एक शक्ति है। अब प्रकृति के स्वभावानुसार गुणों में विकार उत्पन्न होता है। महत्तत्व का विकास कर्म का अनुसरण करता है । प्रारम्भ में यह समस्त जगत् तमसाच्छन्न था। ईश्वर ने स्वयं अव्यक्त रह कर इस संसार को क्रमिक रूप से व्यक्त किया। उस ब्रह्म के सङ्कल्पानुसार अविनाशी विश्वाधार ईश्वर ने प्रकृति को सर्वप्रथम प्रेरणा दी कि वह अपने मूल रूप को त्यागकर शनैः-शनैः क्रमिक रूप से बुद्धि, अहङ्कार, तन्म्पत्राएँ, प्राण, मन, पञ्चभूत आदि का रूप धारण करे जो कि वर्तमान जगत् की रचना के हेतुं अत्यन्त प्रयोजनीय थे ।

तत्त्व जितना ही अधिक सूक्ष्म होता है, उतना ही अधिक शक्तिशाली होता है। जल पृथ्वी की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली है, क्योंकि वह पृथ्वी से अधिक सूक्ष्म है। जल पृथ्वी को बहा ले जाता है। अग्नि जल की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली है, क्योंकि वह जल से अधिक सूक्ष्म है। अग्नि सम्पूर्ण जल का शोषण कर डालती है। वायु अग्नि की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली है. क्योंकि वह अग्नि से अधिक सूक्ष्म है। वायु अग्नि को प्रज्वलित करता है। आकाश वायु की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली है, क्योंकि वह वायु से अधिक सूक्ष्म है। वायु आकाश में ही अवस्थित है। आकाश वायु का आधार है। आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल तथा जल से पृथ्वी की उत्पत्ति होती है। महाप्रलय के समय पृथ्वी जल में, जल अग्नि में, अग्नि वायु में और वायु आकाश में लीन हो जाता है।

अब हम स्थूल जगत् के विकास का वर्णन करते हैं। पाँच तन्मात्राओं में से प्रत्येक को दो समभागों में विभाजित करते हैं।

अब एक तन्मात्रा के अर्घांश में दूसरी तन्मात्राओं का आठव भाग मिश्रित करते हैं। इस भाँति पञ्चीकृत तैयार होता है औ पाँच तत्वों का निर्माण होता है। यही पञ्चीकरण की प्रक्रिया है जब ये तन्मात्राएँ परस्पर मिश्रित नहीं होतीं और अपने शुद्ध मौलिक रूप में होती हैं, तब उन्हें अपञ्चीकृत तत्त्व कहते हैं। समस्त विश्व उद्भिज, स्वेदज तथा पिण्डज - इन चतुर्विध प्राणियों के चतुर्विध स्थूल शरीर तथा समस्त विषय पदार्थ इन पाँच स्थूल तत्वों से ही बने हैं। मनुष्य का स्थूल देह अन्नमय कोश कहलाता है। इस स्थूल शरीर के द्वारा ही जीव जाग्रतावस्था का अनुभव करता है।

पञ्चीकरण की प्रक्रिया का प्रकार निम्नलिखित है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश, इन पाँच तन्मात्राओं में से प्रत्येक को दो समान भागों में विभाजित किया जाता है। अब इन अर्धांशों में से प्रत्येक तन्मात्रा के एक-एक अर्धांश को पुनः चार समभागों में विभाजित करते हैं। तदनन्तर प्रत्येक स्थूल तत्त्व (भूत) अपनी तन्मात्राओं के अर्धांश तथा अन्य चारों तन्मात्राओं में से प्रत्येक के आठवें भाग के योग से बनता है। इस भाँति स्थूल ब्रह्माण्ड तथा भौतिक शरीर की रचना होती है।

अब हम सूक्ष्म जगत् के विकास का वर्णन करते हैं। ईश्वर की इच्छानुसार तमोगुण के दो विभाग हुए- आवरण-शक्ति और विक्षेप-शक्ति । इस आवरण-शक्ति के कारण ही मनुष्य अपने वास्तविक स्वरूप - सत्, चित्, आनन्द को पहचानने में असमर्थ रहता है। वह यह नहीं जान पाता कि वह कोश नहीं है वरन् उसका स्वरूप तो सच्चिदानन्द है। विक्षेप-शक्ति ने ही इस ब्रह्माण्ड की रचना की है। विक्षेप-शक्ति से सूक्ष्म आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल तथा जल से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई । ये पाँच सूक्ष्म तत्त्व अपञ्चीकृत हैं और इन्हें तन्मात्रा कहते हैं । इन तन्मात्राओं में सत्त्व, रज और तम - ये तीन गुण होते हैं। आकाश के सात्विक अंश से श्रवणेन्द्रिय कान, वायु के सात्विक अंश से स्पर्शेन्द्रिय त्वचा, अग्नि से चाक्षुषेन्द्रिय नेत्र, जल से रसनेन्द्रिय जिह्वा और पृथ्वी से घ्राणेन्द्रिय नासिका बनते हैं। इन पाँचों तन्मात्राओं के सात्विक अंशों के योग से अन्तःकरण बनता है। अन्तःकरण चतुविध है- मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार। इनमें चित्त की गणना मन के अन्तर्गत और अहङ्कार की बुद्धि के अन्तर्गत होती है।

सांख्य दर्शनकार कपिल मुनि के अनुसार सत्त्व, रज तथा तमोमयी त्रिगुणात्मिका प्रकृति इस संसार का कारण है। न्याय दर्शन के अनुसार ईश्वर (नित्य ज्ञान इच्छा प्रयत्नवान्) इस जगत् का निमित्त कारण है। कणाद विचारधारा के वैशेषिकों का मत है कि परमाणु इस जगत् का उपादान कारण है। पातञ्जल योग-दर्शन के अनुसार क्लेश, कर्म, विपाक तथा आशय से असंस्पृष्ट विशेष पुरुष (ईश्वर) ही इस विश्व का निमित्त कारण है। जैमिनि (मीमांसकों) के अनुसार धर्म और अधर्म रूप कर्म ही संसार का कारण है। वेदान्त के अनुसार शुद्ध चैतन्य का माया में प्रतिबिम्ब ही ईश्वर है। माया-सबलित चैतन्य इस संसार का अभिन्न-निमित्तोपादान कारण है।

कालवादियों का कथन है कि इन सभी के मूल में काल ही है। काल ही सर्वस्व है, काल ईश्वर है। काल ही वास्तव में इस सृष्टि का बीज है। काल ही पुनः इन सभी को अपनी इच्छानुसार अपने में लीन कर लेता है। परन्तु काल जड़ है। काल अनन्त में बिन्दु के समान है। अनन्त तो ब्रह्म ही है।

क्षणिक विज्ञानवादी कहते हैं सब-कुछ विज्ञान ही है। संसार विचारमात्र ही है। विचार ही पदार्थ के रूप में प्रतिभासित होता है । शून्यवादी पदार्थ और विज्ञान दोनों का ही निषेध करते हैं।

पृथ्वी, जल तथा अग्नि- ये तीन तत्त्व मूर्त और वायु तथा आकाश अमूर्त कहे जाते हैं।

ग्रीष्म ॠतु की उष्णता के कारण पृथ्वी झुलस जाती है। वह सूखकर बंजर बन जाती है; परन्तु पेड़-पौधों की जड़ें भूगर्भ में पड़ी रहती हैं। वर्षाकाल में वे सब जड़ें पुनः पूर्ण ओज के साथ अंकुरित हो उठती है। ठीक इसी भाँति जब प्रलयाग्नि से सृष्टिं भस्मीभूत हो जाती है, तब संसार-वृक्ष की जड़ें अव्यक्त (प्रकृति) के गर्भ में बनी रहती हैं। जब आगामी कल्प प्रारम्भ होता है, वे जड़ें पुनः अंकुरित हो उठती हैं, सृष्टि आरम्भ होती है और इस अखिल विश्व का पुनः प्रसार होता है।

सृष्टि दो प्रकार की होती है- युगपत् सृष्टि और क्रम सृष्टि । युगपत् सृष्टि में पञ्चभूत, महत्, अहङ्कार आदि तथा संसार के अन्य सभी पदार्थ एक ही समय में उत्पन्न होते हैं। क्रम सृष्टि में तत्त्व क्रमशः एक-एक करके उत्पन्न होते हैं। अव्यक्त से महत् की उत्पत्ति होती है और महत् से अहङ्कादि की, आकाश से वायु उत्पन्न होता है और वायु से अग्नि इत्यादि । इस प्रकार क्रमा-नुसार सृष्टि बनती है।

वसिष्ठजी ने श्रीरामजी से कहा कि इस ब्रह्माण्ड की रचना किसी कल्प में शिवजी, किसी कल्प में ब्रह्माजी, किसी कल्प में विष्णुजी और किसी कल्प में मुनि लोग करते हैं। इसी भाँति सृष्टि रचने का यह क्रम चलता रहता है। ब्रह्माजी कभी कमल में, कभी जल में, कभी हिरण्यगर्भ में और कभी आकाश में उत्पन्न होते हैं। किसी सृष्टि में इस संसार में केवल शक्तिशाली वृक्ष ही वृक्ष, किसी में केवल पृथ्वी ही पृथ्वी, किसी में केवल पाषाण ही पाषाण, किसी में केवल मांस ही मांस और किसी में केवलं स्वर्ण ही स्वर्ण होगा। इस भाँति यह सृष्टि विभिन्न रूपों में. होती है। अनेक सृष्टियों में कभी आकाश सर्वप्रथम उत्पन्न होता है और कभी वायु, कभी अग्नि, कभी जल तथा कभी पृथ्वी सर्वप्रथम उत्पन्न होती है। हे राम ! यहाँ पर मैंने तुमसे केवल ब्रह्मा की सृष्टि का संक्षेप में वर्णन किया है। सभी कल्पों में सृष्टि के विकास का क्रम एक ही नहीं होता, वरन् कल्पानुसार वह परिवर्तित होता रहता है। कृत तथा अन्य युग बारम्बार आते रहते हैं। इस संसार में ऐसा कोई पदार्थ नहीं जो अनेक वार चक्कर न काटता हो ।

जिस प्रकार दहकते हुए अङ्गार से एक ही समय सहस्रों चिनगारियाँ निकलती हैं, उसी प्रकार अविनाशी ब्रह्म से विभिन्न जीव उत्पन्न होते और उसी ब्रह्म में पुनः विलीन हो जाते हैं।

जैसे मकड़ी से जाला निकलता है तथा अग्नि से छोटी-छोटी चिनगारियाँ निकलती हैं. उसी प्रकार एक ही आत्मा से सभी प्राण, सारे लोक, समस्त देवता तथा सारे जीव उत्पन्न होते हैं ।

(वृहदारण्यक उपनिषद् २-१-२०)

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम् ।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तु मर्हति ।।

परन्तु तू उसको नाश रहित जान कि जिससे यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है, क्योंकि उस अविनाशी का विनाश करने को कोई समर्थ नहीं है।

(गीता, अध्याय २-१७)

इन सारे परिवर्तनों में संतार कभी भी ब्रह्म से पृथक् नहीं होता है। घास भूमि से उत्पन्न होती और पुनः उसी में लीन हो जाती है। इसी प्रकार यह सृष्टि भी ब्रह्म से उत्पन्न होती, ब्रह्म में अवस्थित रहती और अन्त में 'ब्रह्म में ही विलीन हो जाती है।

आत्मा सम रूप है। संसार (प्रकृति) में विषमता है। आत्मा एक है। दृश्य (प्रकृति) अनेक हैं। एक (आत्मा) ही अनेक (दृश्य) में परिणत हो गया है। एक ही सत्य है। अनेक मिथ्या और भ्रामक हैं।

आप एक शक्तिशाली दूरबीन की सहायता से चन्द्रमा को पचहत्तर मील की दूरी पर ला सकते हैं तथा २०,००० फीट की ऊँचाई पर दृष्टिगोचर होने वाले पर्वतों के फोटो खींच सकते हैं । दूसरे नक्षत्रों का तापमान लिया जा सकता है। इस प्रकार के प्रयोग अत्यन्त रोचक हैं। ज्योतिष शास्त्र का अध्ययन तथा व्यावहारिक अनुसन्धान बहुत ही प्रेरणात्मक होते हैं। इनसे विद्यार्थी स्रष्टा परमात्मा से सम्बन्ध स्थापित कर लेता है; परन्तु इन सभी से कहीं अधिक प्रेरणात्मक है आत्मा का अध्ययन । ये सभी ग्रह, नक्षत्र और तारे उस रहस्यमय आत्मा में ही परिभ्रमण करते हैं। वही इस समस्त सौर-मण्डल की योनि है। उस परम प्रभु की जय हो !

यदि आप आत्मज्ञान प्राप्त कर लें तो जीवों की उत्पत्ति में भगवान् का क्या उद्देश्य है- यह आपके लिए पहेली नहीं रह जायगा। आप यह सुस्पष्ट रीति से समझ जायेंगे कि इस संसार की रचना क्यों और कैसे हुई? संसार की सभी वस्तुओं में जो व्यवस्था तथा योजना पायी जाती है, उसका उद्देश्य तथा उसके विकास का क्रम भी आपको विदित हो जायगा। सभी अतीन्द्रिय विषयों का रहस्य आपको हस्तामलकवत् अवगत हो जायगा ।

सृष्टि-रचना से पूर्व ब्रह्म में स्पन्दन था। यह स्पन्दन ही ब्रह्म का सङ्कल्प है। ब्रह्म ने इच्छा की- 'एकोऽहम् बहुस्याम्'- मैं एक हूँ, अनेक बन जाऊँ । भूमि में बोया हुआ बीज जल से तर किये जाने पर प्रस्फुटित हो उठता है। यह स्पन्दन भी उस बीज के स्फुटन के समान ही है। इसके अनन्तर सृष्टि व्यक्त हुई ।

ब्रह्म अपनी लीला के लिए अपनी त्रिगुणात्मिका माया की विक्षेप-शक्ति से इस अकल्पनीय विश्व की रचना करता है; परन्तु उसमें इन क्रियाओं का किञ्चित् भी स्पर्श नहीं होता। वह आकाश की भाँति असङ्ग और निलिप्त है। सागर में काष्ठ-बल्ली के समान यह संसार ब्रह्म में हिलोरें लेता रहता है।

जब एक साधारण-सा जादूगर अपने इन्द्रजाल या सम्मोहन-विद्या से आम, फल, रुपया, मिठाई तथा कल्पित महल आदि उत्पन्न कर सकता है तो क्या वह सर्वशक्तिमान् तथा सर्वज्ञ भगवान् अपनी लीला के लिए इस तुच्छ जगत् को नहीं रच सकता ? जब कि एक मर्त्यधर्मा राजा अपने राजप्रासाद को अनेक गृह-प्रसाधन, चित्र, कलात्मक मूत्ति, उद्यान, जल-प्रभात आदि से सुसज्जित बना सकता है, तो क्या वह परमात्मा इस संसार को रमणीय हरे-भरे मैदानों से, प्रकाशमान् सूर्य, चन्द्र और तारों से तथा विशाल सरिताओं और महासागरों से नहीं सजा सकता ?

यदि आप अगणित स्वप्न-चित्रों का निर्माण कर सकते हैं और उन्हें स्वप्न में प्रकाश और जीवन भी प्रदान कर सकते हैं, यदि आप इतनी शक्तियाँ रख सकते हैं तो क्या ईश्वर सर्वशक्तिमत्ता और सर्वज्ञता इत्यादि शक्तियाँ नहीं रख सकता ?

हार्ले स्ट्रीट के प्रसिद्ध विशेषज्ञ प्रो० ए० एम० लौ ने एक तरल पदार्थ की खोज की है। उनका दावा है कि इस पदार्थ के द्वारा किसी भी बालक के जन्म से पूर्व ही उसके लिङ्ग का निश्चय किया जा सकता है। उनका कहना है कि उन्हें अपने इस प्रयोग में ९० प्रतिशत परिणाम सफल प्राप्त हुए हैं। उन्होंने इस सिद्धान्त पर अपना शोध कार्य आधारित रखा है कि प्रत्येक माता-पिता में बालक अथवा बालिका के जनन की प्रवृत्ति होती है। प्रो० लौ के अनुसार बालक अथवा बालिका के जन्म को निश्चित रूप देने में उनने वर्षों के श्रम से खोजा हुआ यह तरल पदार्थ इन प्रवृत्तियों को प्रभावित करता है। यह आविष्कार वास्तव में बहुत ही आश्चर्यजनक है; परन्तु इससे कहीं अधिक आश्चर्यकर है यह शाश्वत आत्मा । यही इन आविष्कारों तथा अनुसन्धानों का सिद्धान्त तथा अनुमानों का आधार है। यही इन वैज्ञानिकों की शक्ति तथा जीवन का आधार है और यही विश्वशक्ति का भी आधार है। अपने शाश्वत आत्मा के प्रकाश से ही वैज्ञानिक अपनी प्रयोगशाला में कार्य करने में सक्षम होता है। आत्मा के बिना न उसका मस्तिष्क कार्य कर सकता है और न उसकी आँखें देख ही सकती हैं। यह आत्मा मन का मन, प्राणों का प्राण, कानों का कान तथा नेत्रों का नेत्र है। अच्छा हो कि प्रो० लौ अब इस शाश्वत आत्मा की खोज करें।

उपनिषद् अथवा श्रुति प्रामाणिक हैं। वे आपका मार्ग-प्रदर्शन करेंगी, आपको प्रेरणा देंगी तथा उन्नत बनायेंगी। उनकी शिक्षाओं में आपको अविचल श्रद्धा होनी चाहिए। तभी आप माया अथवा मृत्यु के चंगुल से सुरक्षित रह सकते हैं। अपने तुच्छ तर्कों से श्रद्धा को नष्ट न कीजिए। बुद्धि एक कमजोर तथा सीमित उपकरण है। केवल अपनी बुद्धि पर ही निर्भर न रहिए। यदि आप ऐसा करेंगे तो आपके अमरत्व-प्राप्ति की कोई आशा नहीं है।

इस संसार को उत्पन्न करने में ईश्वर का क्या उद्देश्य है-यह एक अति-प्रश्न है। ईश्वरीय चैतन्य प्राप्त करने पर ही आप इस उद्देश्य को समझ सकेंगे। देश, काल और मरण से परिच्छिन्न सीमित मन अतीन्द्रिय विषय-सम्बन्धी प्रश्न के उत्तर नहीं दे सकता ।

ईश्वर ने सृष्टि की रचना बयों की ? यह संसार सत् है अथवा असत् ? इन प्रश्नों के आवेशपूर्ण वाद-विवाद में पड़ कर आप अपनी शक्ति और समय व्यर्थ ही नष्ट करते हैं। संसार सत्य है अथवा असत्य - इससे आपको कोई प्रयोजन नहीं। इस प्रकार के वाद-विवादों में पड़ने से आपको कोई ठोस लाभ नहीं होगा । परमात्मा में विश्राम पाने के लिए आपको अपने मन तथा बहिमुखी इन्द्रियों को अन्तरस्थ कर अपने हृदय के गहन तल में प्रवेश करना होगा। अतः इन व्यर्थ के विवादों को तिलाञ्जलि दे आत्मानुसन्धान तथा आत्म-साक्षात्कार में सीधे संलग्न हो जाइए ।

जैसा कि पहले कहा जा चुका हैं कि यदि आप आत्मज्ञान प्राप्त कर लें तो जीवों की उत्पत्ति में भगवान् का बया उद्देश्य है, यह आपके लिए पहेली नहीं रह जायगा। आप यह सुस्पष्ट रीति से समझ जायेंगे कि इस संसार की रचना क्यों और कैसे हुई ? संसार की सभी वस्तुओं में जो सुव्यवस्था तथा योजना पायी जाती है, उसका उद्देश्य तथा उसके विकास का क्रम भी आपको विदित हो जायगा । अतः नियमित आध्यात्मिक साधना के द्वारा आत्मज्ञान को प्राप्त कीजिए ।'

(२) यह संसार क्या है

मन ही नारङ्गी को आकार, रूप-रङ्ग तथा स्वाद प्रदान करता है। वैज्ञानिकों के लिए नारङ्गी अणु अथवा विद्युत्कणों का ढेर है । वैशेषिक मतावलम्बियों के लिए वह अणु का ढेर है। अप्रत्यक्षदर्शी के लिए वह तन्मात्राओं का समुच्चय है औरजीवन्मुक्त अथवा ऋषि के लिए वह ब्रह्म है। आपके नेत्र की पुतलियों में कुछ दोष होने के कारण ही आप बाह्य वस्तुओं को देखते हैं। यदि आपको अन्तह ष्टि की प्राप्ति हो जाय तो वही नारङ्गी आपको ब्रह्म-रूप दृष्टिगोचर होने लगेगी, यह संसार केवल ब्रह्ममय प्रतीत होगा। यह संसार भ्रान्ति मात्र है। रज्जु में सर्प की भाँति यह प्रतीति मात्र है। यदि संसार सत्य हो तो प्रगाढ़ निद्रा में भी वह आपको दिखलायी पड़ना चाहिए।

इन्द्रियजन्य यह विशाल संसार आत्म-सङ्कल्प के रूप में विभासित हो रहा है। मन के अस्तित्व से ही संसार का अस्तित्व रहता है। घन सुषुप्ति में मन नहीं रहता, अतः उस समय संसार भी नहीं रहता । विषय-पदार्थों के विषय में आप जितना ही चिन्तन करेंगे, यह संसार उतना ही सत्य प्रतीत होगा। यदि आप विषय-पदार्थों के सम्बन्ध में बारम्बार विचार करते रहेंगे तो संसार की सत्यता की भावना आपमें हढ़तर होती जायेगी ।

जाग्रतावस्था में ही हमें सृष्टि का भान होता है। जाग्रतावस्था केवल हमारे मन का विस्तार है। अतः यह सृष्टि माया ही है। यदि सृष्टि शाश्वत होती तो सुपुप्ति-काल में भी हमें उसके अस्तित्व का अनुभव होना चाहिए था। जब मन सङ्कल्प-रहित होता है तो उस समय सृष्टि नहीं रहती है। घन सुषुप्ति में सृष्टि नहीं रहती है।

निद्रावस्था में आपको संसार की प्रतीति नहीं होती है; क्योंकि उस समय मन नहीं रहता। इससे यह स्पष्ट प्रकट है कि केवल मन की सत्ता से ही संसार की सत्ता है और मन ही इस संसार की रचना करता है। यही कारण है कि श्रुतियाँ इस संसार को मनोमात्र जगत्, मनः कल्पित जगत् आदि कहती हैं।

काल मन की एक अवस्था है। काल मन की सृष्टि है। काल मन की ही एक चाल है। काल भ्रान्ति है। ब्रह्म काल से परे है। वह शाश्वत है। काल स्थानीय होता है। यदि मद्रास में १२ बजे हैं तो कलकत्ते में १२-२३, रंगून में १, सिंगापुर में १-३०, लन्दन में ६-३०, शिकागो में १२-३० (रात्रि) और न्यूयार्क में १-३० बजता है। यह सब क्या है? इनमें कोई समरूपता नहीं है। क्या इससे यह प्रकट नहीं होता कि काल मन की ही कल्पना है ? काल की सीमा से परे जाइए और काल-रहित शाश्वत, अविनाशी ब्रह्म में विश्राम कीजिए ।

भावी कल आज में परिणत होता है और आज अतीत कल में। भविष्य वर्तमान बनता है और वत्तंमान भूत। यह सब क्या है ? यह सब मन की कल्पना ही है। ईश्वर में देश-काल की परिच्छिन्नता नहीं है। ब्रह्म कालातीत है।

सूर्य में न दिन है न रात्रि, न भूत है न भविष्य। मन ने ही देश-काल की कल्पना कर रखी है। जब आप प्रसन्न हों तो समय जाते देर नहीं लगती; परन्तु जब आप दुःखी होते हैं तो समय कठिनाई से कटता है। संसार सापेक्ष है। आइंस्टीन का सापेक्षता का सिद्धान्त इस विश्व और इसकी मायात्मक प्रकृति पर प्रचुर प्रकाश डालता है।

जादूगर आकाश में रस्सी फेंकता है। उस रस्सी के सहारे वह आकाश में चढ़ता है और अदृश्य हो जाता है। पाँच मिनट के पश्चात् वह मृतक हो क्षत-विक्षत अङ्गों से भूमि पर आ गिरता है। इस घटना के पाँच मिनट के अनन्तर वही जादूगर आपके सामने आ उपस्थित होता है। आपने स्वयं अपनी आँखों से इस दृश्य को देख लिया। अब आप ही बतलायें कि उस जादूगर की मृत्यु वास्तविक थी अथवा मिथ्या ? इन तत्त्वों तथा इन्द्रिय-विषयों की ऐसी ही निस्सारता है।

यदि आप एक महीने के लिए इलाहाबाद चले जाते हैं तो आप अपने जन्मस्थान मद्रास तथा अपने मित्र और सम्बन्धियों को बिलकुल भूल जाते हैं। इलाहाबाद में आप अपना एक नया संसार रच लेते हैं। जब आप मद्रास वापस जाते हैं तो इलाहाबाद के विषय में सब-कुछ भूल जाते हैं। यह मन ही संसार की सृष्टि करता है। यदि आप भ्रम उत्पन्न करने वाले इस मन को मार डालें तो आपके लिए संसार नहीं रहेगा।

मन की चालबाजी से एक फर्लाङ्ग भी बहुत दूर मालूम पड़ता है और तीन मील की दूरी बहुत थोड़ी मालूम पड़ती है ? इस बात का तो आपको अपने दैनिक जीवन में अनुभव हुआ ही होगा।

समाधि की अवस्था में, जब कि मन का तिरोभाव हो जाता है, संसार नहीं रहता है। जिस प्रकार दीपक के प्रकाश में रज्जु में अध्यस्त सर्प अहश्य हो जाता है, उसी प्रकार जब मनुष्य आत्म-ज्ञान प्राप्त कर लेता है, जब ज्ञानरूपी सूर्य उदय होता है, तब यह प्रतीयमान जगत् नहीं रहता ।

यह संसार लिङ्ग और अहङ्कार-भावना के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं। अहङ्कार ही मुख्य वस्तु है। यही आधार है। लिङ्ग-भावना भी अहङ्कार पर ही आश्रित है। यदि 'मैं कौन है' के विचार द्वारा अहङ्कार नष्ट कर दिया जाय तो लैङ्गिक भावना स्वयमेव नौ-दो-ग्यारह हो जायगी। मनुष्य अपने भाग्य का स्वयं ही स्वामी है। अज्ञानवश उसने अपना दिव्य वैभव खो दिया है और लिङ्ग तथा अहङ्कार का दास, उनके हाथों का यन्त्र बन गया है। लिङ्ग और अहङ्कार अविद्या के परिणाम हैं। आत्मज्ञान का प्रकाश आत्मा के इन दोनों शत्रुओं को नष्ट कर डालेगा। ये ही दो डाकू असहाय, अज्ञानी क्षुद्र जीव को लूट रहे हैं।

संसार परिणामी नित्य है। ब्रह्म कूटस्थ नित्य है। संसार सत्य है (सापेक्षिक भाव में)। ब्रह्म- 'सत्यस्य सत्यं'- सत्य का भी सत्य (परम सत्य) है। संसार की व्यावहारिक सत्ता है। ब्रह्म को पारमार्थिक सत्ता है। स्वप्न-जगत् के पदार्थों की प्रातिभासिक सत्ता है।

परिच्छिन्न वस्तु सदा अनित्य होती है। क्या आपके दिन-प्रतिदिन के जीवन का अनुभव ऐसा नहीं है? ब्रह्म अथवा आत्मा ही मन, शरीर तथा इन्द्रियों का सार है। वही अपरिच्छिन्न तथा नित्य है। अतः ॐ के गायन द्वारा आत्मा का साक्षात्कार कीजिए । इससे आपके समस्त क्लेशों का आत्यन्तिक नाश हो जायगा और आप भगवान् दत्तात्रेय अथवा शङ्कराचार्य के समान बन जायेंगे ।

यह संसार अत्यन्त मिथ्या नहीं है। हां, मिथ्या अवश्य है। परन्तु यह किन अर्थों में मिथ्या है ? क्या यह ऐसा ही असत्य है जैसा कि शशक-शृङ्ग, बन्ध्या-पुत्र अथवा आकाश-कुसुम ? नहीं, यह उतना ठोस नहीं जितना कि ब्रह्म । ब्रह्म की तुलना में यह असत्य है। यह प्रतीति मात्र है अर्थात् मिथ्या है। प्रिय चन्द्र ! अब तो आप इस बात को स्पष्टतया समझ गये होंगे। भविष्य में मिथ्या शब्द के विषय में भूल न कीजिएगा। मिथ्या शब्द के अशुद्ध अर्थ ने हिन्दुओं के मन में गम्भीर उथल-पुथल उत्पन्न कर दी है। इसने भारतीय जनता तथा अधिकांश संन्यासियों के मन में भी अशोभनीय प्रमाद तथा शैथिल्य को जन्म दिया है।

ससार को सत् मान कर भी आप निश्चय ही शङ्कर के केवला-द्वैत सिद्धान्त में अपनी निष्ठा बनाये रख सकते हैं। आपको उससे रञ्चमात्र भी विचलित होने की आवश्यकता नहीं है। स्मरण रहे कि जैसे उष्णता और प्रकाश अग्नि में द्व'त नहीं उत्पन्न करं सकते हैं, वैसे ही यह संसार भी ब्रह्म में द्वैत नहीं ला सकता है। प्रतीति भला सत्य को क्योंकर प्रभावित कर सकती है !

यह संसार अनादि है। कर्म भी अनादि है। कर्म की गति गहन है। आत्मज्ञान प्राप्त कीजिए, कर्म का रहस्य आपको प्रकट हो जायगा ।

कुछ लोग संसार को बुरा बताते हैं, क्योंकि इसमें कष्ट, शोक तथा प्रलोभन अधिक हैं; परन्तु यदि आप शाश्वत आनन्द प्राप्त कर सकते हैं तो उस अवस्था में यह संसार आपके लिए मधुर एवं रमणीय स्वर्ग बन जायगा । संसार को दोष न दीजिए; वरन् अपने मन को ही दोष दीजिए। अपने मन को सुसंस्कृत तथा सुशिक्षित बनाइए । उससे संसार के प्रति आपका दृष्टिकोण बदल जायगा ।

एक ही सत् है और वह है ईश्वर। उसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी सत् नहीं । यह संसार उस ईश्वर की ही अभिव्यक्ति है। सारी क्रियाएँ, सारी घटनाएँ तथा सारे कर्म उस ईश्वर के ही हैं। ईश्वर ही सब-कुछ है। यह संसार तो क्षण-भंगुर तथा चलचित्र के दृश्य-सा प्रतिक्षण परिवर्तनशील है। कोई व्यक्तिगत सत्ता नहीं है। व्यक्तित्व तो कोरी कल्पना तथा मन का व्यामोह है।

संख्या एक होने के कारण ही संख्या दो का अस्तित्व है। यदि आप कनिष्ठा उँगली से गिनना आरम्भ करें तो अँगूठे की संख्या पाँच होगी, परन्तु यदि आप अँगूठे से गिनना प्रारम्भ करें तो अँगूठे की संख्या एक और कनिष्ठा उंगली की संख्या पाँच हो जायगी। एक पाँच बन जाता है और पाँच एक। एक, दो, तीन आदि सापेक्षिक संख्याएँ हैं। इस दृश्य का कोई अपरिवर्तनशील, सत्य तथा स्थायी आधार होना चाहिए। वह आधार ब्रह्म अथवा आपका अपना आत्मा है। वास्तव में न तो दो है, न तीन, केवल सत् अथवा ब्रह्म ही है।

कल्प और प्रलय अथवा दिन और रात्रि के रूप में संसार में सक्रियता तथा निष्क्रियता के काल का सदा प्रत्यावर्तन होता रहता है। वास्तव में किसी वस्तु की मृत्यु नहीं होती। प्रस्तर-खण्ड तथा काष्ठ में भी सक्रिय जीवन है। अणु, परमाणु तथा विद्युत्-कण बड़े तीव्र वेग से कम्पन करते तथा घूमते रहते हैं।

निरीश्वरवादी तथा नास्तिक में भेद है। निरीश्वरवादी ईश्वर की सत्ता को अस्वीकार करता है। कपिल मुनि के अनुयायी निरीश्वरवादी हैं। नास्तिक कहता है कि शरीर से स्वतन्त्र आत्मा का कोई अस्तित्व नहीं है। यह शरीर ही आत्मा है। वह यह भी कहता है कि आत्मा ताम्बूल और चूने के मिश्रण से बना है। चार्वाक इस मत के अनुयायी हैं। उनका कथन है कि मृत्यू-परान्त आत्मा नष्ट हो जाता है।

ईश्वरीय ज्ञान को अस्वीकार करने वाले भी नास्तिक नहीं हैं; वे तो केवल यह कहते हैं कि ईश्वर का ज्ञान असम्भव है। वह अज्ञेय है।

नीहारिकावाद के अनुसार, प्रारम्भ में प्रत्येक सौर-मण्डल अनिलों (गैस) से भरा हुआ एक ठोस पदार्थ था जो सारे आकाश को भर देता था और अपनी धुरी पर घूमता था। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, केन्द्रीय भाग क्षीण होता गया। वह ठोस 'पदार्थ बहुत जोरों से घूमता रहा और कई वर्तुल छोड़ता गया जो क्रमशः ठण्ढे हुए और नक्षत्रों के रूप में परिणत हो गये । ये नक्षत्र तरल-रूप में कुछ लम्बे समय तक बने रहे। क्रमशः वे ठण्ढे हुए और ठोस बने ।

यह संसार एक योगी के लिए ब्रह्म-स्वरूप दृष्टिगत होता है, भक्त के लिए प्रभु के रूप में और वैज्ञानिकों के लिए शक्तिया विद्युत् परमाणुपुञ्ज के रूप में अवगत होता है।

बाहर जो-कुछ दृष्टिगत होता है, वह सारी विद्युत् की लहरें हैं। इस संसार में केवल विद्युत्-परमाणु ही हैं। सब-कुछ विद्युत् ही है। उसके रूप अनेक हैं। उसके कम्पन की तरङ्गों की लम्बाई विभिन्न हैं। यह वैज्ञानिकों का सिद्धान्त है।

मुट्ठीभर धूल में इतनी शक्ति भरी पड़ी है कि उसको यदि तोड़ा जाय तो उससे एक पर्वत को उड़ा दिया जा सकता है। यह आधुनिक वैज्ञानिकों का सिद्धान्त है। इसे प्रयोगों द्वारा प्रत्यक्ष करके वे दिखाने का प्रयत्न कर रहे हैं।

वैज्ञानिक अणुओं का विस्फोट करते हैं । प्रयोगशालाओं में उन परमाणुओं की गतिविधि का परीक्षण-निरीक्षण करते हैं। वे जड़ पदार्थ और शक्ति के रहस्य तथा उसके स्वभाव को जानने के लिए सारा जीवन लगा देते हैं। कई चीजों की शोध करते हैं, प्रकृति के नियमों का अध्ययन करते हैं; पर फिर भी इस सृष्टि के रहस्य को वह हृदयङ्गम नहीं कर पाते हैं और न उस स्रष्टा को ही समझ पाते हैं। वे स्वयं अपना अध्ययन करना नहीं चाहते । वे कुछ गहराई में जा कर, अपने ही हृदय की ओर मुड़ कर, यह खोज करना नहीं चाहते कि उनके अन्दर वह कौन अतिमानव है, वह अन्तर्वासी कौन है जो उनके व्यबितत्व के या झूठे अहं के पीछे है वह कौन अदृश्य शास्ता है, वह कौन गुप्त योगी है जो उन परमाणुओं को गति देता है, उनमें प्राण-सञ्चार करता है ? कौन विश्वव्यापी शक्ति का खजाना है ? जब तक वे अपनी बुद्धि, भावना और उनके परमाणुओं को प्रकाश देने वाले उस गुप्त प्रकाश का साक्षात्कार करने को तैयार नहीं हो जाते हैं, तब तक वे इसी प्रकार अँधेरे में भटकते और टटोलते ही रह जायेंगे।

वैज्ञानिकों ने जो-कुछ प्राप्त किया है और उनके संशोधनों का जो परिणाम आया है, उसका उपयोग आज अमानवीय उद्देश्यों की पूत्ति के लिए किया जा रहा है। विज्ञान ने मानव की वास्तविक शान्ति के लिए कुछ भी

योग नहीं दिया है। उसने जीवन को अधिक जटिल और विलासी बना दिया। कई प्रकार की विलासिताएँ आज जीवन की आवश्यकताएँ बन गयी हैं। आइए, फिर से उस प्रकृति की तरफ लौट चलें। अपार शक्ति और ध्यान के साथ ऐसा शान्तिपूर्ण तथा परितृप्त जीवन व्यतीत करें जिसमें बहुत कम आवश्यकताएँ हों। विज्ञान, बस, काफी हो चुका । संशोधन बहुत हो चुके। ऐ वैज्ञानिको, अपने मन को अन्दर की तरफ मोड़ो । आत्मा का संशोधन करो और उस आत्मा के अन्दर निहित अमूल्य निधि को खोलो ।

वह कौन-सी वस्तु है जिसके जान लेने से बाकी सब-कुछ जान लिया जाता है ? वह कौन-सी चीज है जिसके प्राप्त होने से और कुछ भी प्राप्त करने को अवशिष्ट नहीं रह जाता ? वह कौन-सा पदार्थ है जिसकी अनुभूति हो जाने पर व्यक्ति अमर हो निर्भय और निष्काम हो जाता है तथा शाश्वत शान्ति और आनन्द में लीन हो जाता है ? वह है ब्रह्म या आत्मा अथवा परम सत्य जो कि जीवन का चरम लक्ष्य है। इस भूमा या परमात्मा को प्राप्त करने पर ही तुम्हें वास्तविक आनन्द प्राप्त हो सकेगा ।

(३) पुनर्जन्म के सिद्धान्त

मनुष्य की तुलना एक पौधे से की जा सकती है। वह एक पौधे की तरह पैदा होता है और बढ़ता है; परन्तु अन्त में पूर्ण-तया मर नहीं जाता । पौधा भी पैदा होता है, बढ़ता है तथा अन्त में मर जाता है। पौधा अपने पीछे बीज छोड़ जाता है जो एक नया पौधा उत्पन्न करता है। मनुष्य मृत्यु के पश्चात् अपने पीछे अपने कर्मों को - जीवन के अच्छे तथा बुरे कर्मों को छोड़ जाता है। उसका भौतिक शरीर भले ही मर जाय और बिखर जाय; परन्तु उसके कर्मों का प्रभाव मरता नहीं है। उन कर्मों का फल भोगने के लिए मनुष्य को पुनः जन्म लेना पड़ता है। कोई भी जीवन प्रथम जीवन नहीं हो सकता है; क्योंकि वह जीवन पिछले कर्मों का फल है; और न ही वह अन्तिम जीवन हो सकता है, क्योंकि इस जीवन के कर्मों का फल भोगने के लिए उसे पुनः आना ही है। अतः संसार अथवा दृश्य-जगत् के अस्तित्व का न आदि है, न अन्त । लेकिन एक जीवन्मुक्त के लिए अथवा अपने निजी सच्चिदानन्द-स्वरूप में लीन रहने वाले सिद्ध योगी के लिए कोई संसार नहीं है।

मनुष्य जब मरता है तो वह अपने साथ स्थायी लिङ्ग शरीर ले जाता है। यह लिङ्ग शरीर पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच प्राण, मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार के अतिरिक्त कर्माशय से बना होता है। कर्माशय जीवात्मा के नानाविध कर्मों का, उसकी क्रियाओं का आधार है और यही जीव के अग्रिम जीवन को निश्चित करता है।

आलन्दी (महाराष्ट्र) के प्रसिद्ध योगी सन्त ज्ञानेश्वर ने अपनी सोलह साल की अवस्था में ही गीता पर ज्ञानेश्वरी टीका लिखी । वे जन्मजात सिद्ध थे। यदि आप भी सच्ची निष्ठा से प्रयत्न करें तो सिद्ध बन सकते हैं। एक व्यक्ति के लिए जो सम्भव है, वह दूसरे के लिए भी सम्भव हो सकता है।

एक नव-जात शिशु ने इस जन्म में कोई भी दुष्कर्म नहीं किया है, फिर भी वह महान् कष्ट अनुभव करता है। इससे यह स्पष्ट है कि यह उसके उन दुष्कर्मों का फल है जो उसने अपने पिछले जन्म में किये थे। यदि आप यह प्रश्न करें कि वैसे दुष्कर्म करने की प्रेरणा उसे कहाँ से मिली, तो उसका उत्तर यह है कि उसने अपने पिछले जन्म में जो कुछ असत्कर्म किये थे, उनका वह फल था और इसी प्रकार यह परंम्परा अनादि काल से चली आयी है।

कई बुद्धिमान् व्यक्तियों के लड़के मन्दबुद्धि निकलते हैं। पिछले जन्म में जब आप भूख से मर रहे होंगे तब किसी गड़रिये के बालक ने आपको कुछ अन्न और जल दिया हो तो इस जन्म में वह बालक आपका मन्दबुद्धि पुत्र बन कर पैदा होगा जिससे कि आपकी सम्पत्ति का उपभोग कर सके।

जब जीव जन्म लेते हैं, स्तन-पान की इच्छा प्रकट करते हैं तथा भय की प्रवृत्ति को बतलाते हैं। अतः इससे स्पष्ट होता है कि वे अपने पूर्व-जन्म के स्तन-पान तथा दुःखानुभूति को स्मरण करते हैं। इससे प्रकट होता है कि पुनर्जन्म है।

एक बालक भी हर्ष, शोक, भय, क्रोध, सुख तथा दुःख के भाव व्यक्त करता है। वर्तमान जन्म के धर्माधर्म-संस्कार इसका कारण नहीं हो सकते हैं। पूर्व-जन्म के संस्कारों का कुछ-न-कुछ आश्रय अवश्य होना चाहिए। इससे हम स्पष्टतया इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि पूर्व-जन्म में जीवात्मा का अस्तित्व रहा है। जीव अनादि है। यदि आप यह स्वीकार न करें कि जीव अनादि है तो कृतनाश (किये हुए कर्मफल का नाश) और अकृताभ्यागम (न किये हुए कर्म के फल का भोग) ये दो दोष उपस्थित होते हैं। पिछले जन्म में किये हुए सत्कर्मों का सुख और दुष्कर्मों का दुःख बिना भोगे रह जायेंगे; यही कृतनाश-दोष कहलाता है। इसी प्रकार उसे उन अच्छे-बुरे कर्मों के फल-रूप सुख-दुःखों को भोगना पड़ेगा जो उसने पहले नहीं किये हैं, इसे अकृताभ्यागम-दोष कहते हैं। इन उभयविध दोषों से मुक्त होने के लिए हमें यह मानना होगा कि जीव अनादि है।

कुछ योगिकविद्यार्थी मुझसे पूछते हैं कि कुण्डलिनी को जाग्रत करने के लिए शीर्षासन या पश्चिमोत्तानासन कितने समय तक करना चाहिए अथवा कुम्भक या महामुद्रादि कब तक करनी होती है ? योगशास्त्र के किसी भी ग्रन्थ में इस पर कुछ प्रकाश नहीं डाला गया है। कोई भी विद्यार्थी अपनी साधना को उस बिन्दु से या उस स्थिति से प्रारम्भ करता है जहाँ उसने अपने पूर्व-जन्म में उसे छोड़ा था। यही कारण है कि भगवान् श्रीकृष्ण अजुन से कहते हैं- "हे कुरुनन्दन ! अथवा वह किसी बुद्धिमान् योगी के घर में जन्म लेगा; वहाँ अपने पूर्व-शरीर से सम्बन्धित गुणों को अर्जित कर लेगा और उनके आधार पर पूर्णता प्राप्त करने का प्रयत्न करेगा” (अ० ६, श्लोक ४२-४३)। कहने का भाव यह है कि यह सब-कुछ उसकी बुद्धि के परिमाण पर, विकास की अवस्था पर, नाड़ियों और प्राणमय कोशों की शुद्धता पर तथा वैराग्य की मात्रा और मोक्ष की उत्कटता पर निर्भर है।

कुछ लोग पूर्व-जन्म में आवश्यक यम-नियमों का पालन कर चुके होते हैं, अतः इस जीवन में उत्पन्न होने के साथ ही वे शुद्धता और आत्मज्ञान के लिए आवश्यक गुणों को भी ले कर आते हैं। वे जन्मजात सिद्ध पुरुष होते हैं। गुरुनानक, आलन्दी के ज्ञानदेव, नामदेव एवं अष्टावक्र आदि सभी बाल्यकाल से ही ज्ञानी थे । गुरुनानक जब

अल्पवयस्क थे, तभी स्कूल में उन्होंने अपने शिक्षक से ॐ का अर्थ पूछा था। वामदेव ने माता के गर्भ में रहते समय ही वेदान्त पर प्रवचन दिये थे।

मनुष्य फल-प्राप्ति की कामना से कार्य करता है और इसीलिए उन कर्मों का फल भोगने के लिए पुनः जन्म लेता है। आगामी जन्म में वह कुछ और कर्म करता है और उनका फल भोगने के लिए पुनः जन्म लेता है। इस प्रकार यह संसार-चक्र सदा के लिए घूम रहा है। जब कोई आत्मज्ञान प्राप्त कर लेता है, तब वह इस जन्म-मृत्यु के चक्कर से मुक्त हो जाता है। कर्म अनादि है, संसार भी अनादि है। परन्तु जब मनुष्य फल-प्राप्ति की कामना छोड़ कर निःस्वार्थ भाव से कर्म करता है तब उसके कर्म के सारे बन्धन शिथिल हो जाते हैं।

जीने के लिए मरो। इस छोटे 'मैं' को खतम करो और अमरत्व को प्राप्त करो। ब्रह्म में जीओ। तुम शाश्वत काल तक जीओगे। आत्मा को प्राप्त कर लो। तुम्हें परम जीवन मिलेगा। अपनी आत्मा के साथ अपने-आपको जोड़ दो। मृत्यु- सागर या संसार से पार हो जाओगे। अपने सत्-चित्-आनन्द-स्वरूप में विश्राम करो। तुम्हारा जीवन अमर हो जायगा।

जोंक एक घास की पत्ती की धार पर चलती है और जब धार के छोर पर पहुँच जाती है तब पहले अपने अगले पैरों को फैला कर दूसरी घास को पकड़ती है, फिर शरीर के पिछले भाग को ले आती है। इसी प्रकार जीवात्मा मृत्यु के समय इस वर्तमान शरीर को छोड़ कर विचारों के द्वारा भावी शरीर की योजना बनाता है, तब फिर उस शरीर में प्रवेश करता है।

शुभ या अशुभ कर्म का फल भी शुभ या अशुभ होता है। महाभारत में आप देखेंगे - "जिस प्रकार एक बछड़ा हजार गायों के बीच में अपनी माँ को पहचान लेता है, उसी प्रकार पूर्व-जन्म में किये गये कर्म उस कर्म के कर्ता को पहचान लेते हैं और उसका अनुगमन करते हैं.।"।

"यादृशं क्रियते कर्म तादृशं भुज्यते फलम्।
यादृशं वप्यते बीजं तादृशं प्राप्यते फलम्।।"

जिस प्रकार फल वही प्राप्त हो सकता है जैसा कि बीज बोया गया हो; उसी प्रकार जिस तरह का कर्म हमने किया है, उसी तरह का फल हमें मिलेगा। यह निसर्ग का अटल नियम है। आम का बीज बो कर नारङ्गी की आशा नहीं की जा सकती। जीवनभर जिसने दुष्कृत्य किये हों, वह अगले जन्म में सुख, शान्ति तथा स्मृद्धि की कभी आशा नहीं कर सकता।

"पहले भी हम सब कई बार एक साथ रहे हैं और अलग हुए हैं; आगे फिर यही क्रम चलने वाला है। जैसे अनाज के ढेरों को खलिहान से खलिहान में बदलते रहने से दानों का संयोग और व्यवस्था बदलती रहती है, उसी प्रकार इस विशाल ब्रह्माण्ड में इन जीवों की (मनुष्य की) भी स्थिति है" (योगवासिष्ठ)।

(४) मृत्यु और उस पर विजय

मृत्यु केवल एक रूप-परिवर्तन है। भौतिक शरीर और अदृश्य तत्त्वों के विभाजन का नाम ही मृत्यु है। प्रिय विश्वनाथ ! आप मृत्यु से इतना क्यों घबराते हैं ?

निद्रा के बाद जाग्रति की तरह मरण के अनन्तर जनन भी है। पिछले जीवन में आपने जो कुछ अष्ट्वरा छोड़ा है, उसे पुनः आपको पूरा करना ही है, इसलिए मृत्यु से डरने की आवश्यकता नहीं ।

धर्म और धार्मिक जीवन में मृत्यु का विचार हमेशा एक प्रबल प्रेरणा-स्रोत रहा है। मनुष्य मृत्यु से डरता है। वृद्धावस्था में वह भगवान् का चिन्तन करने लगता है। यदि वह अपने बाल्य-जीवन से ही भगवान् का चिन्तन करने लगे तो वृद्धावस्था में बहुत बढ़िया आध्यात्मिक फल प्राप्त कर सकता है। मनुष्य मरना नहीं चाहता है। वह सदैव जीवित रहना चाहता है। यहीं से दर्शन आरम्भ होता है। दर्शन का काम है जिज्ञासा और शोध । दर्शन बड़े जोरों से दावे के साथ कहता है- "हे मानव ! मृत्यु से मत डरो; तुम्हारे लिए एक अमर आधार है और वह है 'ब्रह्म । वही तुम्हारी आत्मा भी है जो तुम्हारे हृदय-गह्वर में निवास करती है। तुम अपने हृदय को शुद्ध करो और उस परि-'शुद्ध, अमर और अपरिवर्तनीय आत्मा का चिन्तन करो। तब तुम्हें अमरत्व की प्राप्ति होगी।"

हे मनुष्यो ! आपको मृत्यु से बिलकुल डरने की आवश्यकता नहीं। आप अमर हैं। मृत्यु जीवन का विरोधी नहीं है। वह जीवन का ही एक रूप है। जीवन का प्रवाह अनन्त रूप में बहता ही जाता है। फल का नाश भले हो, पर उसके बीज में जीवन भरा रहता है। इसी प्रकार बीज जब नष्ट होता है तब उसमें से विशाल वृक्ष पैदा होता है। वृक्ष विनष्ट होता है और कोयला बनता है। उस कोयले में जीवन भरा है। पानी अदृश्य होता है, पर वह अवश्य भाप बनता है जो कि नये जीवन के बीजरूप में होता है। पत्थर समाप्त हो जाता है, किन्तु नये जीवन से भरा हुआ चूना बन जाता है। भौतिक शरीर-रूपी म्यान फेंक दिया जाता है; परन्तु जीवन स्थायी रहता है।

क्या कोई कह सकता है कि इस धरती पर मृत्यु से न डरने वाला कोई एक भी व्यक्ति है? क्या कोई ऐसा व्यक्ति है, जब वह स्वयं बड़े कष्ट में हो या उसकी पत्नी के प्राण छटपटा रहे हों या वह अपार वेदना भोग रहा हो तब भगवान् का नाम न ले ? तो फिर यह क्या सनक है कि आप भगवान् के अस्तित्व को अस्वीकार करते हैं जबकि दुःख में होने पर आप ही उसके अस्तित्व को स्वीकार करते हैं? विपरीत बुद्धि तथा सांसारिक उन्माद के कारण आप एक नास्तिक बन चुके हैं। क्या यह महान् मूर्खता नहीं है? गम्भीरतापूर्वक सोचें। विवाद छोड़ें। भगवान् का स्मरण करें तथा इसी क्षण अमरत्व तथा शाश्वत शान्ति प्राप्त करें।

गरुड़पुराण तथा आत्मपुराण में यह वर्णन किया गया है कि मृत्यु का कष्ट ७२,००० बिच्छुओं के डङ्क की अपेक्षा अधिक होता है। इस प्रकार भयानक वर्णन केवल इसलिए किया है कि श्रोताओं तथा पाठकों के मन में भय उत्पन्न हो और वे मोक्ष के लिए प्रयत्नशील हों । अध्यात्मवाद में सभी ज्ञानी पुरुषों का निरपवाद मन्तव्य है कि मृत्यु के समय रत्तीभर भी दुःख नहीं होता है। वे मृत्यु की स्थिति का स्पष्ट वर्णन करते हैं। वे कहते हैं कि 'मृत्यु के

कारण इस भौतिक शरीर के भार से मुक्त हुए हैं और स्थूल शरीर का विघटन होते समय उन्होंने अत्यन्त शान्ति और समाधान अनुभव किया है। ऊपर से देखने वालों के मन में शरीर के अचानक टूट जाने की विलक्षण कल्पना पैदा करके माया व्यर्थ का भय पैदा कर देती है। माया का यह स्वभाव है, प्रकृति है। तुम मृत्यु-दुःख से मत डरो। तुम अमर हो।'

जप, कीर्तन, गरीबों की सेवा तथा ध्यान के द्वारा परमेश्वर में ही निरन्तर निवास करने का प्रयास करें। तभी आप काल तथा मृत्यु पर विजय प्राप्त कर सकेंगे।

जब आपका प्राण लेने के लिए यमदूत आयें उस समय यदि आप क्षमा-याचना करें कि 'मेरे पास अपने जीवन में भगवान् की - पूजा करने के लिए समय नहीं था', वे आपकी क्षमा-याचना को नहीं मानेंगे।

हमें अज्ञान की ग्रन्थियों तथा मृत्यु से बचा सकने वाला एकमात्र ब्रह्मज्ञान ही है। यह ज्ञान ध्यान के द्वारा प्रत्यक्ष अनुभव से प्राप्त होना चाहिए। केवल पाण्डित्य से, बुद्धिशक्ति से या धार्मिक ग्रन्थों के अध्ययन से उस परमपद की प्राप्ति नहीं हो सकती। वह तो प्रत्यक्ष अनुभव की वस्तु है, न कि तर्क या विवाद की।

सूक्ष्म समस्याओं का निरन्तर अध्ययन करने से हम अपर-संसार में पहुँचते हैं जहाँ सूक्ष्म विचार करने की शक्ति भली प्रकार विकसित होती है। जब एक विषय से दूसरे विषय पर भागने वाले विक्षिप्त विचार हों तो परिणाम यह होगा कि आगामी जन्म में हमारा मन अशान्त और अनियन्त्रित रहेगा।

आत्मसाक्षात्कार मनुष्य के दुःखों का मूल कारण विद्या अथवा अज्ञान को नष्ट करेगा तथा आपमें आत्मा की एकता का ज्ञान उत्पन्न करेगा जो दुःख, भ्रान्ति तथा संसार-चक्र-रूपी जन्म-मृत्यु की भयानक व्याधि के उन्मूलन का साघन है।

आपके हृदय-स्थल में शुद्ध ज्ञानरूपी सूर्य प्रकाशित हो रहा है। यह आध्यात्मिक सूर्यो का सूर्य स्वयं-प्रकाश है। वाणी और मन को प्रकाशित करने वाला यह आत्मा प्राणीमात्र का आत्मा है। यदि आप इसे प्राप्त कर लेते हैं तो आप पुनः इस मर्त्यलोक को नहीं लौटेंगे।

यह संसार मायानटी का एक नाटक है। इसमें जन्म और मृत्यु-रूप दो दृश्य हैं। वास्तव में न तो कोई आता है और न कोई जाता है। केवल आत्मा ही सर्वदा रहता है। आत्मानुसन्धान द्वारा मोह और भय का नाश करें तथा शान्ति में विश्राम करें।

"मैं उस सर्वशक्तिमान् पुरुष को जानता है जो सूर्यवत् ज्योतिर्मय है, अज्ञानान्धकार का विनाशक है। केवल उस आत्मा को जान कर मृत्यु पर विजय पाते हैं। मुक्ति का अन्य कोई मार्ग नहीं है" (यजुर्वेद ३१-१८१)।

योग की दिशा में कोई भी प्रयत्न विफल नहीं होता है। अत्यल्प योगिक साधना से भी आपको फल प्राप्त होगा। यदि आपने इस जन्म में योग के यम, नियम तथा आसन, इन तीन अङ्गो पर सफलता प्राप्त कर ली है तो आगामी जन्म में चतुर्थाङ्ग अर्थात् प्राणायाम से आपकी साधना आरम्भ होगी। जो वेदान्ती इस जीवन में विवेक और वैराग्य इन दो साधनों को प्राप्त कर लेता है, वह आगामी जन्म में शम, दमादि षट्-सम्पत्ति से अपनी साधता आरम्भ करेगा। अतः इस जीवन में यदि आप कैवल्य या मुक्ति अथवा अन्तिम असम्प्रज्ञात समाधि को प्राप्त करने में असफल होते हैं तो आपको थोड़ा भी हताश नहीं होना चाहिए ।

थोड़े समय का अत्यल्प अभ्यास भी आपको अधिक शक्ति, शान्ति, सुख और ज्ञान प्रदान करेगा ।

आप मर नहीं सकते; क्योंकि आप कभी पैदा नहीं हुए। आप अमरात्मा हैं। माया के इस मिथ्या नाटक में जन्म और मृत्यू ये दो असत्य दृश्य हैं। उनका सम्बन्ध केवल भौतिक कोश से है जो पञ्चतत्त्वों के मिश्रण से बना हुआ है। जन्म और मृत्यु का विचार केवल अन्ध-विश्वास है।।

यह भौतिक शरीर, जो कि मिट्टी का पुतला है, उस परमेश्वर की लीला का क्रीड़ामृग मात्र है। ईश्वर सूत्रात्मा है। जब तक उसकी इच्छा होती है, तब तक वह इस क्रीड़ामृग को दौड़ाता रहता है। अन्ततोगत्वा वह इस क्रीड़ामृग को तोड़ देता है। दो का खेल समाप्त होता है। एकत्व मात्र अवशिष्ट रहता है। यह जीवात्मा उस परमात्मा में विलीन हो जाता है।

आत्मा का बोध होने पर मृत्यु का भय जाता रहता है। लोग व्यर्थ ही मृत्यु से चौंकते हैं। मृत्यु निद्रा के समान है। प्रातः निद्रा से जैसे जागते हैं, वैसे ही जन्म है। जिस प्रकार आप नये वस्त्र पहनते हैं, उसी प्रकार मृत्यु के बाद नया शरीर धारण करते हैं। मृत्यु इस प्रक्रिया की एक स्वाभाविक घटना है। आपके विकास के लिए वह आवश्यक है। जब इस जीवन की भावी प्रवृत्तियों के लिए यह शरीर असमर्थ तथा अनुपयोगी हो जाता है तब भगवान् रुद्र इसका नाश करते तथा दूसरा नया शरीर देते हैं। मृत्यु के समय कोई कष्ट नहीं होता। अज्ञानी लोगों ने मृत्यु के सम्बन्ध में अत्यन्त भय और आतङ्क पैदा कर दिया है।

सत्य एक ही है- ब्रहम। यह संसार और यह शरीर ब्रहम में उसी प्रकार आरोपित हैं जिस प्रकार रज्जु में सर्प का आरोप किया जाता है। जब तक रज्जु का ज्ञान नहीं होता और सर्प की भ्रान्ति दृढ़ रहती है, तब तक आप भय से मुक्त नहीं होते हैं। उसी प्रकार आपके लिए इस संसार की ठोस वास्तविकता तब तक है जब तक आपको ब्रहम का साक्षात्कार नहीं हो जाता है। जब आप प्रकाश से रज्जु को देखते हैं, सर्प का भ्रम तथा भय नष्ट हो जाता है। इसी तरह जब आपको ब्रहमज्ञान हो जाय तो आपके लिए इस संसार का लय हो जायगा और जन्म तथा मृत्यु के भय से मुक्ति होगी ।

कभी-कभी आप स्वप्न में देखते हैं कि आपकी मृत्यु हो गयी है और आपके सगे सम्बन्धी रो रहे हैं। उस कल्पित मरणावस्था में भी आप उनको रोते हुए देखते और सुनते हैं। इससे स्पष्ट विदित होता है कि प्रत्यक्ष मृत्यु के अनन्तर भी जीवन का अस्तित्व रहता है। वह अस्तित्व ही आत्मा या महान् 'अहं' है।

यदि अपने हृदय में छिपे हुए इस अमर आत्मा को आप जानते हैं तो अविद्या, काम तथा कर्म-रूप त्रिविध ग्रन्थियाँ सुलझ जायेंगी। यदि अविवेक, अहङ्कार, राग-द्वेष, कर्म, शरीर आदि के अज्ञान की शृङ्खला तोड़ दी जाय तो आप जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्त होंगे तथा अमर लोक में प्रवेश प्राप्त करेंगे।

(५) मोक्ष

मोक्ष जीवन का परम लक्ष्य है। जीवन के उद्देश्य की पूर्णता मोक्ष है। मोक्ष की प्राप्ति अर्थात् जन्म-मृत्यु के बन्धन से मुक्ति पाने पर इस मर्त्यलोक का जीवन समाप्त होता है। अपने जीवन का वास्तविक लक्ष्य जान लेना ही मुक्ति या मोक्ष कहलाता है। मोक्ष से शाश्वत जीवन, अखण्ड आनन्द और अनन्त सुख प्राप्त होता है। मोक्ष विनाश नहीं है। मोक्ष तो तुच्छ और दम्भपूर्ण अहङ्कार का नाश है। जीवात्मा का परमात्मा के साथ ऐक्य ही मोक्ष है। जब इस तुच्छ अहं का नाश होता है तब सम्पूर्ण और यथार्थ विश्वात्मा प्राप्त होती है और शाश्वत जीवन मिलता है।

मुक्ति आत्मज्ञान के द्वारा प्राप्त होती है। ज्ञान प्राप्ति के लिए एकाग्रता की आवश्यकता होती है। एकाग्रता के लिए उपासना करनी होती है। उपासना चित्तशुद्धि से सिद्ध होती है। चित्तशुद्धि निष्काम्य कर्मयोग से होती है। निष्काम्य कर्म करने के लिए इन्द्रियों को नियन्त्रण में रखना आवश्यक है। इन्द्रियजय के साधन हैं विवेक और वैराग्य ।

मोक्ष ऐसी बस्तु नहीं है जो पहले नहीं रही हो और नये से कुछ बनना पड़ता हो। मोक्ष कोई प्राप्तव्य पदार्थ नहीं है। वह तो प्राप्त है ही। समी कुछ उस परब्रह्म के साथ एकरूप है। प्राप्त करने का पदार्थ तो यह है कि उस परब्रह्म के साथ हमारी पार्थक्य-भावना का. दूत की भावना का, विनाश हो । मोक्ष उस पदार्थ के प्रत्यक्ष साक्षात्कार का नाम है जो चिरन्तन काल से रहा है, पर अज्ञानावरण के कारण अब तक हमसे अज्ञात था । परमानन्द की प्राप्ति तथा दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति ही मोक्ष है। जन्म और मृत्यु से छुटकारा ही मोक्ष है।

मुक्ति अथवा मोक्ष आपका वास्तविक स्वरूप है। इस सत्य का ज्ञान प्रत्यक्ष अनुभव से प्राप्त किया जा सकता है। आत्मचिन्तन के द्वारा अज्ञान के आवरण को विदीर्ण कर देना होगा। तभी आपमें आपकी मौलिक शुद्धता और दिव्य आनन्द का प्रकाश दीखेगा ।

ब्रह्म, आत्मा, पुरुष, चैतन्य, बोध, भगवान्, अमरत्व, मुक्ति, पूर्णता, शान्ति, आनन्द, भूमा ये सारे शब्द पर्यायवाची हैं। आत्मानुभूति प्राप्त करने पर ही जन्म-मृत्यु के चक्र तथा उससे सम्बन्धित अन्यान्य विपत्तियों से

छुटकारा मिलेगा। जीवन का ध्येय है परमानन्द अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति । निःस्वार्थ सेवा तथा जप के द्वारा हृदय को परिशुद्ध तथा स्थिर करके निरन्तर ध्यान में लगे रहने पर ही मोक्ष प्राप्त हो सकता है।

मोक्ष परम प्रयोजन है। ज्ञान अवान्तर प्रयोजन है। जिस प्रकार केले का फल उसका परम प्रयोजन है और उसके पत्ते आदि परम प्रयोजन से पूर्व प्राप्त होने वाले अवान्तर प्रयोजन हैं; उसी प्रकार मोक्ष परम प्रयोजन है बौर शज्ञान उस मोक्ष से पूर्व प्राप्त होने वाला अवान्तर प्रयोजन है। शान तो उस परमानन्द की प्राप्ति का एक साधन मात्र है।

जीव शरीर तथा अन्यान्य वस्तुओं का अपने ऊपर आरोप कर लेता है और उनके साथ अपनी एकरूपता मान कर चलने लगता है। यह एकरूपता ही बन्धन निर्माण करती है। इन असत् वस्तुओं के साथ की एकरूपता से मुक्त होने का नाम ही मोक्ष है। इस एकरूपता का कारण है अविद्या या अज्ञान। उस एकरूपता को दूर करने वाली वस्तु विद्या है। आत्मज्ञान की प्राप्ति से यह अविद्या और इसके प्रभाव दूर होते हैं। मोक्ष का स्वरूप ही परमानन्द की प्राप्ति और सभी प्रकार के दुःखों से आत्यान्तिक निवृत्ति है।

वस्तुतः ब्रह्मज्ञान यही है कि ब्रह्म और अपनी आत्मा दोनों एक हैं। जीव और ब्रह्म के बीच जो अन्तर दीखता है, उसका कारण उपाधि है। यद्यपि जीव तत्त्वतः ब्रह्म ही है, तो भी अन्तः-करण से सम्बन्धित उपाधियों के साथ अपना सम्बन्ध वह जोड़ लेता है; इसलिए सांसारिक दुःखों तथा कष्टों का शिकार बन जाता है। वास्तव में उन दोनों के बीच कोई अन्तर नहीं है। इसलिए यह समझ लेना चाहिए कि आत्मा ही ब्रह्म है। अतः जिन्होंने वास्तविक सत्य को पहचान लिया है, वे जानते हैं कि ब्रह्म और जीव एक ही है। उपनिषदों में कुछ महावावय हैं जिनमें भी यही बात कही गयी है। वे वावय हैं- 'अहं ब्रह्मा-स्मि' (मैं ब्रह्म है), 'श्रयमात्मा ब्रह्म' (यह आत्मा ही ब्रह्म है)। वे अपने शिष्यों को यही बात इन शब्दों में समझाते हैं कि 'तत् त्वम् असि' (तू वह है)। इसलिए यह समझना चाहिए कि ब्रह्म और जीव एक हैं।

ब्रह्म को जानने वाला स्वयं ब्रह्म बन जाता है। है। जीवित अवस्था में ही जो ब्रह्मरूप हो गया है, वह जन्म-मरण के चक्र से मुक्त हो जाता है। मोक्ष का एकमात्र साधन ब्रह्मज्ञान है।

द्वितीय अध्याय: हिन्दुत्व

(१) हिन्दुत्व

जो हिन्दुस्तान में रहता है, वह हिन्दू है। यह एक प्रकार की परिभाषा है। हिन्दू वह है जो सनातन धर्म में विश्वास रखता हो एवं पुनर्जन्म-सिद्धान्त, आत्मा की अमरता, वेद की प्रक्रियाओं और वर्णाश्रम-धर्म को मानता हो। हिन्दुओं का सामान्य धर्मग्रन्थ गीता है और गायत्री सर्वसामान्य मन्त्र है। भगवान् के सर्वमान्य नाम हैं ब्रह्म, परमात्मा, भगवान् अथवा ईश्वर।

वास्तविक अर्थ में हिन्दू-धर्म आर्य-धर्म अथवा मानव-धर्म है। हिन्दू-धर्म अन्य सभी धर्मों का मूल स्रोत है। भगवान् बुद्ध हिन्दू-धर्म में पैदा हुए और पले। उन्होंने हिन्दू-धर्म में इधर-उधर कुछ संशोधन करके तत्कालीन जनता का विकास-स्तर और भावनाओं के समुपयुक्त बौद्ध-धर्म के नाम से एक नया धर्म प्रवतित किया। बौद्ध-धर्म हिन्दू-धर्म की ही एक प्रशाखा है। प्रभु ईसामसीह ने कश्मीर और वाराणसी में तपस्या की तथा हिन्दू-धर्म की शिक्षाओं और सिद्धान्तों को आत्मसात् करके फिलस्तीन के मछुओं के उपयुक्त एक नया धर्म प्रस्तुत किया। महावीर ने भी ऐसा ही किया। उन्होंने हिन्दू-धर्म में ही जहाँ-तहाँ कुछ परिवर्तन करके जैन-धर्म की स्थापना की जो कि बौद्ध-धर्म की ही एक उपशाखा है। पारसी-धर्म, ईसाई-धर्म आदि सभी धर्म वस्तुतः हिन्दू-धर्म की ही शाखा-प्रशाखाएँ हैं।

हिन्दू-धर्म केवल एक सामान्य धर्म नहीं है, अपितु वह एक दर्शन है। वह सागर के समान है। जिस प्रकार सभी नदियाँ 'सागर में जा मिलती हैं, उसी प्रकार सभी धर्म हिन्दू-धर्म में जा मिलते हैं। अन्य सभी धर्म हिन्दू-धर्म से ही उत्पन्न हुए हैं। कोई भी मनुष्य चाहे उसकी भावना कैसी भी हो, उसकी सामर्थ्य कितनी भी हो; पर अपनी मुक्ति का सरल मार्ग वह हिन्दू-धर्म में पा सकता है। प्रत्येक प्रकार के मनुष्य को अन्तिम लक्ष्य की ओर ले जाने के लिए हिन्दू-धर्म में कई मार्ग हैं। यही हिन्दू-धर्म की विशेषता है। प्राचीन ऋषियों के उपदेश केवल हिन्दुओं तक ही सीमित नहीं है। उनकी व्याप्ति सार्वत्रिक है, सार्वभौम है। वह विश्वभर के लोगों के लिए है। गीता और उपनिषद् ग्रन्थ संसार के समस्त मानवों के लिए हैं।

हिन्दू धर्म-ग्रन्थों में दर्शन है, कर्म-काण्ड है और कथाएँ हैं। ये तीनों विषय आवश्यक हैं। वेदों के अन्तर्गत कथाओं और काव्यों का उद्देश्य है धर्मों की सत्यता के प्रति मन में रुचि पैदा करना। प्राचीन भारतीय योगी लोगों के मन में नैतिक सिद्धान्तों या धार्मिक तत्त्वों को दृढ़ करने के लिए वैसी कथाओं और काव्यों का सदा ही प्रयोग करते थे। आपको भी गहराई में प्रवेश करके सत्य और ज्ञाभ-रूपी मोतियों को उन सीपियों से अलग करना होगा जिनमें कि वे सन्निहित हैं। कथाओं और काव्यों को विहङ्गम दृष्टि से देखने वाले व्यक्ति ही विचार-शून्य विश्लेषण एवं अविवेकपूर्ण तथा अन्यायपूर्ण आलोचना करते हैं।

आप अपना दृष्टिकोण बदल डालिए । तब प्रत्येक सांसारिक कर्म योगिक क्रिया बन जायगा। सेवा और समर्पण के द्वारा एक गरीब व्यक्ति भी लक्ष्य तक पहुँच सकता है। उसके लिए धन की आवश्यकता नहीं है। हिन्दू-दर्शन सर्वव्यापी है। एक भङ्गी भी निष्काम भाव से अपना कर्म करते हुए मोक्ष पा सकता है। हमारे प्राचीन ऋषियों ने हर प्रकार के मनुष्यों के लिए उनकी रुचि, भावना और सामर्थ्य के अनुसार विभिन्न मार्ग बतलाये हैं।

वेदान्त और उसके सिद्धान्तों को ठीक तरह समझ लें और दैनिक जीवन में उनका अभ्यास करें तो युद्धों, साम्प्रदायिक दङ्गों, छोटे-छोटे झगड़ों और धार्मिक सङ्घर्षों से त्रस्त इस संसार में शान्ति, समाधान और सुख की स्थापना हो सकेगी।

(२) वास्तविक धर्म

सही अर्थ में सच्चा आध्यात्मिक जीवन ही धर्म है। धर्म और जीवन कोई दो भिन्न वस्तु नहीं हैं। अंग्रेजी का रिलीजन शब्द लैटिन के 'रि' और 'लिगर' - इन दो मूल-धातुओं से बना है। 'रि' का अर्थ है पुनः वापस और 'लिगर' का अर्थ है बाँधना; अतः रिलीजन का अर्थ हुआ कि जो मन इस प्रापन्चिक विषय-वासना के पीछे भटक रहा है, उसे फिर से वापस आत्मा के साथः बांधना, मूल-स्रोत या आधार की ओर ले जाना। धर्म के अभाव में वास्तविक जीवन कुछ भी नहीं रहता है। अब हम धर्म के विषय में अधिक विचार न करके उसकी साधना के विषय में विचार करें।

अमर आत्मा में शाश्वत जीवन व्यतीत करने का नाम धर्म है। धर्म पूर्णत्व या साम्यता है। धर्म एकत्व है। धर्म मन और इन्द्रियों के परे है। धर्म आचार-विधियों और कर्मकाण्डों से भिन्न है। धर्म भगवान् के साथ एकरसता का नाम है। दिव्य चेतना या दिव्य ज्ञान की प्राप्ति का नाम धर्म है। अज्ञान, भ्रम, संशय, भय, दुःख और मोह से मुक्ति ही धर्म है। धर्म-युद्ध कराने और आत्माभ्युदय के साथ श्रेय या मोक्ष की ओर ले जाने वाले प्राचीन धर्मों की स्थापना के लिए आध्यात्मिक क्षेत्र में कुछ कार्य करने की प्रेरणा ही धर्म है।

धर्म वह आस्था या श्रद्धा है जो भगवान् को जानने और उसकी उपासना के लिए प्रेरित करे। वह चर्चा-गोष्ठियों में वाद-विवाद करने का विषय नहीं है। वह तो वास्तविक आत्मा का ज्ञान है, मनुष्य के अन्दर निहित शाश्वत जिज्ञासा की पूत्ति है।

इसलिए धर्म को जीवन का उच्चतम मूल्य मानना चाहिए । अपने जीवन का प्रत्येक क्षण उसी की अनुभूति के लिए होना चाहिए। जिस जीवन में धर्म की साधना नहीं है, वह जीवन जीवन नहीं, वस्तुतः मृत्यु है।

धर्म एक है। सच्चा धर्म व्यावहारिक है। सच्चा धर्म वह आध्यात्मिक जीवन है जो सभी वासनाओं से परे है। सच्चा धर्म आत्मानुभूति है। ईश्वर का अनुभव, ईश्वर का दर्शन और ईश्वर के साथ सम्भाषण ही सच्चा धर्म है।

मित्रो ! लोगों का धर्म-परिवर्तन करने का प्रयत्न क्यों करते हैं ? इस धरती पर एक ही धर्म है। वह है प्रेम-धर्म । धर्म-परिवर्तन एक बड़ा सामाजिक दोष है। साम्प्रदायिक विपत्तियों और झगड़ों का यह एक प्रमुख और प्रचल कारण है। धर्म-परिवर्तन करने के लिए प्रयत्न करने वाला मनुष्य मूर्ख है। वह सङ्घर्ष का बीज बोता है और देश की शान्ति में बाधा डालता है।

विभिन्न सम्प्रदायों की तुच्छ रूढ़ियों के पीछे क्यों लड़ते हो ? वस्तुतः सभी धर्मों के मूल-तत्त्व एक ही है। जो मूल-तत्त्व नहीं हैं, उनके लिए बयों लड़ते हो ? धर्म के सार को मत भूलें। फल का रस ग्रहण करें, छिलका और रेशा फेंक दें। गिरी को लें और छिलका छोड़ दें। आत्यन्तिक सहिष्णुता को विकसित करें। सहिष्णुता के बिना उत्नति नहीं कर पायेंगे। सभी सम्प्रदायों तथा साम्प्रदायिकों को गले लगायें, तब आपको अपरिमित आनन्द, शान्ति और शक्ति प्राप्त होगी।

अहङ्कार, राग-द्वेष का त्याग, आत्मानुभूति, प्राणीमात्र के प्रति प्रेम, आत्मभाव के साथ मानवमात्र की निःस्वार्थ सेवा-यही सच्चे धर्म का सार है।

धर्म व्यावहारिक है। धर्म आपके नित्य जीवन का अङ्ग बन जाना चाहिए । थोड़ी जिज्ञासा, थोड़ा उद्रक, बालिश उत्साह और भावोद्वेग से आपके आध्यात्मिक विकास और उन्नति में कोई सहायता नहीं मिलेगी । निरन्तर सङ्घर्ष और सतत प्रयास की पूरी आवश्यकता है।

धर्म जीवन का विज्ञान है। वह हमें ईश्वरमय हो कर जीने और अमरत्व पाने की सीख देता है। शाश्वत आनन्द और अक्षय शान्ति के लोक में प्रवेश करने में वह सहायक होता है। वह अज्ञान का आवरण हटा कर आत्मा की एकता की अलौकिक दृष्टि प्रदान करता है।

कुछ लोग कहते हैं कि धर्म एक विलासिता है। ऐसा कहने वाले अज्ञान और सांसारिकता में फंसे हुए हैं। मनुष्य धर्म के बिना कैसे जी सकता है ? दुःख, शोक, पीड़ा और मृत्यु से बचने का एकमात्र उपाय धर्म है और अमरत्व का जो अन्तिम लक्ष्य है, उसे पाने का मार्ग दिखाने वाला भी धर्म ही है। धर्म के सहारे ही मनुष्य पूर्णत्व और निर्दोषिता को प्राप्त कर सकता है।

(३) भारत माता का वैभव

भारत एक आध्यात्मिक देश है। भारत ने उपनिवेशों या पड़ौसी राष्ट्रों पर कभी आक्रमण नहीं किया। उसको सैनिक विजय की महत्त्वाकांक्षा कभी न थी। उसने हमेशा अपनी प्रजा के लिए आत्मस्वराज्य चाहा है। उसने अपनी प्रजा को दूसरों पर शासन करने के लिए कभी प्रेरित नहीं किया। वह अपने पुत्रों से यही अपेक्षा रखती है कि वे अपनी आन्तरिक और बाह्य प्रकृति पर विजय पायें । वह चाहती है कि उसकी सन्तान आत्मज्ञान से उत्पन्न

सुन्दर और दिव्य गुणों, नैतिक शक्तियों और आध्यात्मिक अन्तर्बल से परिपुष्ट हो। दूसरों के मन को जीतने और आध्या-त्मिक विजय प्राप्त करने का एकमात्र साधन अहिसा है।

भारतीयों का अन्तिम लक्ष्य आत्म-साक्षात्कार है। उनको भौतिक समृद्धि तथा भौतिक प्रगति की चिन्ता नहीं है। उनको योग प्रिय है। वे अहिंसा, सत्य तथा ब्रह्मचर्य की साधना करते हैं। अनन्त आत्मा के शाश्वत आनन्द को पाने की वे इच्छा रखते हैं। वे अन्तरात्मा या ब्रह्म का साक्षात्कार करने तथा सांसारिक सम्पत्ति का त्याग करने के लिए हमेशा तैयार हैं। अविनाशी आत्मा की प्राप्ति के निमित्त वे अपना सर्वस्व न्यौछावर कर डालते हैं। उनका चित्त सर्वदा अध्यात्ममय रहता है।

भारत योगियों, ऋषियों तथा मुनियों का देश है। हिमालय पर्वत का दृश्य कितना रमणीय है ! गङ्गा माता कितनी मधुर हैं ! हे गङ्गे ! आपकी तरङ्ग कितनी मनोहर और स्फूत्तिदायिनी हैं ! योगियों का सान्निध्य कितना आत्मप्रेरक है ! इन योगियों तथा गङ्गा और हिमालय से युक्त ऋषिकेश कितना सुन्दर और प्रिय है ! यदि आपकी इच्छा योगाभ्यास करने की है तो भारत आइए और ऋषिकेश में ठहरिए । एकान्तवास की शान्ति प्राप्त कीजिए । आत्मानन्द का अनुभव कीजिए । मौन ध्यान कीजिए । अखण्ड मौन में प्रवेश कीजिए । आप योगी बनें !

महात्मा संसार के हर देश में जन्म लेते हैं; परन्तु विश्व के अन्य देशों की तुलना में भारत में महात्माओं भी संख्या अधिक है। यह भारत की विशेषता है। इसीलिए भारत को ऋषि-मुनियों का देश कहा जाता है।

भारत योगियों, ऋषियों, मुनियों और आत्मदशियों का देश है। भारत ने शङ्कर, रामानुज जैसे कई आचार्यों; कबीर, रामदास, तुकाराम, गौराङ्ग महाप्रभु आदि कई सन्तों; ज्ञानदेव, गोरखनाथ जैसे कई योगियों और दत्तात्रेय, सदाशिव ब्रह्म जैसे कई मुनियों को जन्म दिया है। आज भी यहाँ बहुत से योगी और महात्मा रहते हैं। ।

चन्दन के वृक्ष सभी जङ्गलों में नहीं होते हैं। मोती सभी समुद्रों में नहीं मिलते हैं। सुवर्ण भूमि के हर किसी प्रदेश में नहीं रहता है। योगी भी दुनिया के हर स्थान में नहीं रहते हैं।

भारत धन्य है, जिसकी सुन्दर धरती पर योगो हैं, सन्त हैं, ऋषि हैं; जहाँ गङ्गा, यमुना, नर्वदा, गोदावरी, सिन्धु और कावेरी नदियाँ प्रवाहित होती हैं, जहाँ विशाल काय हिमालय पर्वत है। वह भारतवर्ष धन्य है जिसका अतीत अत्यन्त वैभव-शाली है, जहाँ की धरती पर राम, कृष्ण, व्यास, शङ्कर, दत्तात्रेय, पतञ्जलि आदि पवित्र पुरुषों के चरण पड़े हैं। आर्यावर्त धन्य है जहाँ आज भी योगाभ्यास और तपस्या में लीन रहने वाले असंख्य ऋषि, मुनि और योगी रह रहे हैं। हे मातृभूमि ! तुम धन्य हो जहाँ देवता और जीवन्मुक्त निवास करते हैं, सुन्दर वनों और नैमिषारण्य, झूसी, उत्तरकाशी, ऋषिकेश आदि एकान्त प्रदेशों से जो विभूषित है, जहाँ कुरुक्षेत्र जैसा पवित्र स्थान है जिसमें भगवान् कृष्ण ने अपने प्रिय शिष्य अर्जुन को गीता के अमर गीतों के द्वारा अपना स्फूर्तिदायी सन्देश सुनाया था। भगवान् आपकी सन्तान का भला करें और उसे सम्यक् ज्ञान, आत्मानुभूति आध्यात्मिक शक्ति प्रदान करें जिससे कि वह आपकी सेवा करे और आपकी कीति पताका को उन्नत करे ।

नाजीवाद, फैसिज्म, निरंकुश सत्तावाद आदि सारे वाद मानव को शान्ति प्रदान करने में असफल होंगे। मनुष्य को यदि कोई शाश्वत शान्ति प्रदान कर सकता है तो वह है पवित्र भारत का साधुवाद या ऋषिवाद या उपनिषद्वादे ।

यह साधुवाद बया है ? आत्मसंयमपूर्वक भगवान् में लीन रहना ही साधुवाद है। ऋषिवाद क्या है ? चित्तशुद्धि, निःस्वार्थ सेवा, समर्पण और ध्यान के द्वारा अमरत्व की प्राप्ति का नाम है ऋषिवाद । उपनिषद्वाद क्या है? आत्म-विश्लेषण, जिज्ञासा, श्रुति का श्रवण, आत्मविचार और आत्मध्यान के द्वारा उस औपनिषदिक आत्मा या ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त करना ही उपनिषद्वाद है जो आत्मप्रकाशी है, सार्वभौम है, अविभाज्य है, कालदेशातीत है और मृत्युरहित है।

भारत ही नहीं वरन् कोई भी देश सच्चा स्वराज्य तभी प्राप्त कर सकेगा जबकि राजनैतिक प्रवृत्तियों के साथ-साथ आध्यात्मिक साधना भी चलेगी । कार्यकर्ताओं को यह मान कर चलना होगा कि प्रत्येक क्रिया योग और ईश्वर-पूजा का साधन है। उन्हें स्वार्थ, लोभ, काम और घृणा से मुक्त होना चाहिए तथा उनमें सत्यता, सहनशीलता, आत्मसंयम, विश्वप्रेम, उदारहृदयता के साथ-साथ पूर्ण सहिष्णुता और भगवान् के अस्तित्व के प्रति दृढ़ विश्वास होना चाहिए ।

कई पवित्र सरिताओं और शक्तिशाली आध्यात्मिक स्पन्दनों से सम्पन्न यह भारत पावन देश है। यह धवल हिमगिरि संसार के सभी लोगों को आकृष्ट कर लेता है। दिव्य चिन्तन और योगाभ्यास के लिए यह देश विशेष रूप से उपयुक्त है। प्रत्येक देश की अपनी-अपनी आकर्षक विशेषताएँ होती हैं। भारत योगियों और ऋषियों का देश है। भारत की यह एक विशेष आकर्षक विशेषता है। इसीलिए अमरीका, इंगलैण्ड तथा संसार के सभी प्रदेशों से योगाभ्यास के लिए लोग भारत आते हैं। भारत की जय हो और भारत के ऋषि और मुनियों की जय हो !

भारत सर्वोत्कृष्ट देश है। गङ्गा सर्वोत्तम नदी है। हिमालय सर्वोच्च पर्वत है। सत्य सर्वोत्तम गुण है। साक्षात्कार-प्राप्त गुरु सर्वश्रेष्ठ पुरुष है। आत्मा ही सर्वाधिक प्रिय वस्तु है। इसलिए भारत में आ कर गङ्गा के तट पर निवास कीजिए । सत्य बोलिए । साक्षात्कार-प्राप्त गुरु की शरण लीजिए और आत्मा-नुभूति प्राप्त कर मुक्त बनिए ।

तृतीय अध्यायः गुरु और शिष्य

(१) गुरु की आवश्यकता

सद्गुरु की कृपा से ही आत्म-ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। ज्ञान गुरु से शिष्य में सञ्चारित होता है।

चित्त को शुद्ध करने तथा ब्रह्मनिष्ठ गुरु की सेवा करने और उनसे उपदेश प्राप्त कर निदिध्यासन करने से अज्ञेय (ब्रह्म) का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

वैद्यक शास्त्र के विद्यार्थियों को एक वैद्य की, प्राध्यापक की तीव्र आवश्यकता होती है। नये वकील को मार्गदर्शन के लिए वरिष्ठ एडवोकेट की आवश्यकता रहती है। नये रसोइये को एक अनुभवी रसोइये की सहायता की आवश्यकता होती है। सांसारिक विषयों की ही जब यह स्थिति है, तब अव्यक्त एवं सूक्ष्म आत्मा से सम्बन्धित आध्यात्मिक विषयों के सम्बन्ध में कहना ही क्या ? साधक को मार्गदर्शन के लिए पहुँचे हुए सद्गुरु के मार्गदर्शन की नितान्त आवश्यकता है, अन्यथा वह अज्ञान-रूपी अन्धकार के घने वन में भटकता रहेगा।

साधक को सदा प्रारम्भ में कुछ वर्षों तक किसी सिद्ध गुरु के मार्गदर्शन में रहना चाहिए। उन्हें उनके अधीन रहना चाहिए । उन्हें पूर्ण आज्ञाकारिता और नम्रता सीखनी होगी । यदि वे अपना मार्ग स्वयं खोजमे लगेंगे तो उनमें अहङ्कार और स्वच्छन्दता आ जायगी । वे अध्यात्म-मार्ग में तिल-भर भी प्रगति नहीं कर पायेंगे ।

प्रकृति में कोई भी दो वृक्ष एक जैसे नहीं होते, कोई दो पत्ते एक समान नहीं होते, कोई दो व्यक्ति एक समान नहीं होते, कोई दो स्पन्दन एक जैसे नहीं होते, कोई दो स्वभाव एक समान नहीं होते और न दो मन एक सरीखे होते हैं। इसलिए विभिन्न स्वभावों के अनुसार प्रत्येक के मन को नियन्त्रित करने के मार्ग भी विभिन्न हैं। प्रत्येक व्यक्ति की साधना का अपना मार्ग होता है। यदि आप अपना मार्ग नहीं खोज पायें तो गुरु की सहायता से खोज 'सकते हैं। किसी गुरु के अधीन रह कर योग सीखिए, तभी योग के गूढ़ तत्त्वों को आप समझने के योग्य होंगे। जब आप हताश होंगे तब वे आपमें स्फूत्ति का सञ्चार करेंगे, आपके मार्ग में आने वाली संशय-रूपी सभी बाधाओं को दूर करेंगे और आपको सही मार्ग दिखायेंगे; क्योंकि वे पहले ही ये सारे मार्ग तय कर चुके होते हैं। यदि आप निष्ठावान् और आस्थावान् हैं तो आप पर उनकी कृपा तैलधारा की तरह अखण्ड बरसेगी। यदि आपमें सच्ची ग्रहणशीलता, अडिग श्रद्धा तथा उनके प्रति समर्पण-भाव-हो तो वे आपमें शक्ति, प्रेम, ज्ञान और आध्यात्मिक प्रवाह का सञ्चार करेंगे। अब एक गुरु और एक मार्ग पर दृढ़ रहिए । चञ्चलता त्यागिए, धैर्य रखिए और निष्ठावान् बनिए । साधकों के मन में अपने गुरु और श्रुतियों के प्रति अटल और स्थिर श्रद्धा होनी चाहिए। प्रायः साधकों की श्रद्धा अष्ट्वरी अथवा चञ्चल होती है। इसीलिए योग-सिद्धि अथवा ज्ञान-प्राप्ति के प्रयत्न में वे असफल हो जाते हैं।

ईश्वर और गुरु दोनों एक ही हैं। अपने गुरु में ईश्वर का दर्शन करने का प्रयत्न कीजिए। तभी आप अपने आध्यात्मिक मार्ग में प्रगति कर पायेंगे। तभी आपके लिए आत्मानुभव सम्भव होगा । यदि आप अपने गुरु के दोषों और कमियों को देखने लगेंगे तो इससे आपको रत्तीभर भी लाभ न मिलेगा। गुरु आपके पिता हैं, माता हैं, संरक्षक हैं और आपके एकमात्र शरण और आधार हैं; इसलिए अपने गुरु को साक्षात् भगवान् ही समझिए ।

सच्चे साधक को चाहिए कि अपने गुरु का चरणामृत सेवन करे, गुरु का उच्छिष्ट ग्रहण करे, गुरु का ध्यान करे मानो वे स्वयं ब्रह्म हैं और अपने गुरु-मन्त्र का निरन्तर जप करे । तब वह सुगमता से आत्म-साक्षात्कार कर सकेगा ।

अपने सेनाध्यक्ष की आज्ञा का अक्षरशः पालन करना एक सैनिक का कर्तव्य है। उसे किसी प्रकार का प्रश्न पूछना नहीं चाहिए । इसी प्रकार साधक का यह कत्त्तव्य है कि अपने गुरु की आज्ञा का अक्षरशः पालन करे। तभी आध्यात्मिक मार्ग में वह शीघ्र उन्नति कर सकेगा ।

जिसने गुरु की शरण ली हो धौर उपासना की हो वही वेदान्त के उपदेशों की गहराई तक प्रवेश पा सकेगा। श्वेता-श्वतरोपनिषद् (९-२३) में कहा है "जिसके मन में ईश्वर के प्रति परम प्रेम हो तथा गुरु के प्रति भी उतना ही प्रेम हो जितना कि ईश्वर के प्रति, ऐसे महात्मा को ही यहाँ पर बतलाये हुए उपदेश पूर्णतः प्रकट होते हैं।"

इस संसार में तीन प्रकार के गुरु माने जाते हैं : आदेशदाता, ज्ञानदाता और मुक्तिदाता। आदेशदाता मार्ग दिखाते हैं, ज्ञान-दाता परम धाम के बारे में समझाते हैं और मुक्तिदाता परम सत्य का उद्घाटन करते हैं जिसके जानने से अमरत्व की प्राप्ति होती है।

एक बार दश व्यक्तियों ने नदी पार की और उधर जा कर यह जानना चाहा कि सब-के-सब जीवित पहुँच गये या नहीं। जो भी गिनता, शेष नौ को गिन लेता, अपने को छोड़ देता । सबने यही समझा कि एक व्यक्ति मर गया है और सब उसकी मृत्यु पर रोने लगे। अन्त में बाहर से कोई सज्जन.. आया और समझाया कि कोई मरा नहीं है, गिनने वाला स्वयं ही वह दशाँ व्यक्ति है जिसे मर गया समझ रहे हैं। इस प्रकार उनकी भ्रान्ति दूर हो गयी ।

चुम्बक के पास रहने से लोहे के टुकड़े में भी चुम्बक के गुण आ जाते हैं, उसी प्रकार साधक जब अपने गुरुओं के निकट-सम्पर्क में रहते हैं, तव गुरु के गुण उनमें सञ्चारित होते हैं। जिस प्रकार पारस पत्थर के स्पर्श से लोहा भी स्वर्ण बन जाता है, उसी प्रकार दुर्जन भी योगियों और मुनियों के सम्पर्क में आने पर पूजनीय सन्त बन जाते हैं।

जब गुरु सशरीर रहते हैं तब वे साधकों और शिष्यों की अधिक सहायता कर सकते हैं। यदि गुरु में सच्ची आस्था रही तो उनके इस शरीर के छूट जाने के बाद भी गुरु का मार्ग-दर्शन साधक पा सकता है। अद्वैत दर्शन के संस्थापक श्री शङ्कराचार्य, श्री दत्तात्रेय और आलन्दी के श्री ज्ञानदेव अभी भी अपने उन शिष्यों को, जिनकी श्रद्धा और आस्था सच्ची है, मार्ग दिखा रहे हैं। आपके अतिरिक्त उनका कोई अपना न तो शरीर ही है, न हाथ-पाँव ही।

आपकी ही आँखों के द्वारा वे इस विश्व को देखते हैं और संसार का कल्याण करने के लिए आपके ही पाँवों द्वारा वे भ्रमण करते हैं ।

(२) गुरु और शिष्य

सच्चे गुरु वे हैं जिन्होंने वेदाध्ययन किया. हो, जो ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त कर चुके हों, जिनका मन सन्तुलित हो, जो कृपानिधि हों और साधकों के संशयों, बाधाओं और आवरणों को दूर कर सकते हों ।

सच्चे सद्गुरु में काम, क्रोध, स्वार्थ, लोभ, द्वेष और अहङ्कार नहीं होते हैं। वे सांसारिक प्रलोभनों से दूर होते हैं। जन साधारण के अज्ञान को वे मिटा सकते हैं। किसी भी प्रकार के संशय का वे निराकरण कर सकते हैं। मन और वासनाओं पर नियन्त्रण पाने के लिए सुगम और व्यावहारिक उपाय वे सुझा सकते हैं। उनके समाधान प्रभावशाली होते हैं। महान् अहङ्कारी मनुष्य भी उनके सामने नत-मस्तक हो जाता है। वे अपने शिष्यों को मोक्ष के द्वार तक पहुँचा सकते हैं। मार्ग में आने वाली बाधाओं, अड़चनों और प्रलोभनों को वे हटा सकते हैं। वे वेदों के अध्येता होते हैं, निष्पाप होते हैं, कृपा-सिन्धु और सर्वबन्धु होते हैं।

आज कुछ सात्त्विक आत्माएँ अवश्य हैं; परन्तु ब्रह्मदर्शी ज्ञानी बहुत बिरले हैं। ये सात्त्विक पुरुष ब्रह्म के प्रत्यक्षदर्शी नहीं होते, परः भूल से वे जीवन्मुक्त समझे जाते हैं। जो सात्त्विक साधक हैं, सत्यान्वेषी हैं, जिनमें सद्गुण हैं, वे.. भी वन्दनीय हैं । ऐसे साधक भी बहुत बिरले हैं। कुछ सात्त्विक पुरुष अपने को जीवन्मुक्त होने का दम्भ करते हैं। यह उचित नहीं है। उनके शिष्य उनकी पूजा करने लगते हैं तथा आदर, सत्कार एवं पूजा के वे दास बन जाते हैं और इस प्रकार शनैः शनैः उनका पतन होता है। इस प्रकार से उनको माया घेर लेती है। माया की गति-विधि को जानना बहुत कठिन है।

इसमें सन्देह नहीं कि योग्य गुरुओं का अभाव है; पर उससे भी अधिक अभाव है सच्चे शिष्यों का ।

साधकों का परिवाद (शिकायत) रहता है- "इन दिनों हमें सच्चे गुरु नहीं मिलते हैं।" गुरु भी परिवाद (शिकायत) करते हैं- "हमें अच्छे शिष्य आज-कल नहीं मिलते हैं।" कौन सही है और कौन गलत ? निम्न न्यायालय में इसका निर्णय नहीं हो 'सकता । 'यह विषय ज्ञानियों की अन्तःपरिषद् में प्रस्तुत करना होगा। क्या कोई रोगी वैद्य के कमरे में प्रवेश करते ही उस वैद्य की योग्यता को ग्रुप सकता है ? अज्ञानी शिष्य, जो कि आध्या-त्मिक मार्ग का रञ्चमात्र भी अनुभव नहीं रखते, तुरन्त ही अपने गुरु की जाँच-पड़ताल करने लग जाते हैं। इस भाँति वे उनके जीवन के बाह्य रूप एवं गति-विधि को देख कर बड़ी गम्भीर आलोचना करते, गलत धारणाएँ बना लेते तथा गलत निर्णय पर पहुंच जाते है। परमहंसों की जीवन-पद्धति में कई प्रकार के रहस्य होते हैं। उनके साथ अत्यन्त घनिष्ट सम्पर्क रहते हुए बारह वर्ष भी बिता दें, तब भी उनके हृदय के भावों और ज्ञान की गहराइयों को समझ पाना दुष्कर है। ज्ञान और आध्यात्मिक अनुभव पूर्णतः आन्तरिक अवस्था है। मूर्ख चेले एक के बाद दूसरा गुरु खोजते फिरते हैं। कितनी दयनीय अवस्था है यह !

जल की आवश्यकता है तो जहाँ-तहाँ उथले खड्डे खोदते मत फिरो । वे खड्डे बहुत जल्दी सूख जाते हैं। किसी एक स्थान पर गहरा कुआ खोदो । अपने सारे प्रयत्नों को वहाँ केन्द्रित करो । हमेशा अच्छा पानी मिला करेगा। इसी प्रकार एक ही गुरु के द्वारा आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करने का सम्पूर्ण प्रयत्न करो। एक ही गुरु की सेवा करो। कुछ वर्षों तक उनके चरणों में पड़े रहो । शीघ्र ही श्रद्धा खो कर कुतूहलवश एक से दूसरे के पास भागते फिरने में कोई लाभ नहीं। वेश्या की तरह नित्य चलायमान मन से काम नहीं चलेगा ।

एक दीपक से अनेक दीपक जलाये जा सकते हैं, इसी प्रकार एक आत्मदर्शी पुरुष अनेक व्यक्तियों को आत्मदर्शन करा सकता है। हाँ, यदि वे उससे प्रकाश पाने के अधिकारी हों। अतः अपने गुरु की सेवा अत्यन्त श्रद्धापूर्वक किया करो। आप पर करुणा-सिक्त हो कर एक न एक दिन गुरु आपको प्रकाश देंगे। आपका उद्धार करेंगे। धैर्य और शान्ति के साथ प्रतीक्षा करो। अपने को सम्पूर्णतया उनकी शरण में सर्पित कर दो ।

आत्मदर्शी गुरु के चरण-कमलों की जो उपासना करता है और जो शास्त्रीय ज्ञान का अच्छा अध्येता है, वह सत्य ग्रहण करने की योग्यता रखता है। गीता में श्रीकृष्ण ने भी कहा है-"उस (ज्ञान) को समझने के लिए गुरु की शरण में जा, परिप्रश्न कर और सेवा कर। वे तत्त्वदर्शी ज्ञानी गुरु तुझे ज्ञान का उपदेश देंगे" (गीता अ०४-३४) ।

निष्काम भाव वाले शिष्यों के हृदय में ही ब्रह्मज्ञान के गूढ़ रहस्य फलदायी होते हैं और ज्ञान का सम्पादन कराते हैं।

कोयले को जलने में पर्याप्त समय लगता है, पर बारूद पलक मारते ही जल उठती है। इसी प्रकार जिसका हृदय अशुद्ध हो, उसमें ज्ञानाग्नि को प्रज्वलित करने में समय लगता है; परन्तु शुद्ध हृदय वाले साधक के हृदय में पलक झपकते ही ज्ञानाग्नि प्रज्वलित हो सकती है। हाथ के फूल मसलने में जितना समय लगता है, उतना भी समय उसे ज्ञान-प्रकाश पाने में नहीं लगता है।

जब तक आप स्वयं परिशुद्ध नहीं होंगे, तब तक जीवन्मुक्त की सच्ची महत्ता का अनुमान आप नहीं कर सकते। वे जब सामने आयेंगे, तब आपको एक साधारण मनुष्य ही लगेंगे और आपको कोई लाभ नहीं मिलेगा। आप अपनी ही दोष-दृष्टि के कारण उनके अन्दर भी दोषों को ही खोजने का प्रयत्न करेंगे। भले ही साक्षात् श्रीकृष्ण या श्री शङ्कर ही आपके साथ रहें, किन्तु जब तक आप उनको ग्रहण करने योग्य नहीं बनते और उनकी आध्यात्मिक शिक्षा को ग्रहण करने के लिए उद्यत नहीं होते, तब तक वे भी आपका कुछ उपकार नहीं कर सकते।

यह बिलकुल ठीक है कि गुरु की एक कृपा, उनका स्पर्श, उनकी दृष्टि अथवा उनका एक सङ्कल्पमात्र भी अद्भुत चमत्कार कर सकता है; पर इसका यह अभिप्राय नहीं कि शिष्य निष्क्रिय बैठा रहे। गुरु मार्ग दिखाते तथा बाधाओं और अड़चनों को दूर करते हैं। शिष्य को योग-साधना के सोपान पर अपने पैरों से चलना होगा ।

गीता कहती है-

"उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसावयेत् ।"

- मनुष्य को चाहिए कि अपने द्वारा (संसार-सागर से) अपना उद्धार करे और अपने आत्मा को अधोगति में न पहुंचावे (अध्याय ६-५) ।

शिष्य को गुरुकृपा की आवश्यकता तो है ही; परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि शिष्य निष्क्रिय बैठा रहे और अपेक्षा करे कि गुरु अपने चमत्कार से मुझे सीधे समाधि में पहुँचा दें। गुरु शिष्य के लिए थोड़े ही साधना कर सकते हैं। वे तो शिष्य को मार्ग दिखा सकते, संशय निवारण कर सकते, मार्ग प्रशस्त कर सकते, अड़चनों को दूर कर सकते, पतन के स्थानों में सचेत कर सकते और मार्ग में प्रकाश दे सकते हैं। शिष्य को आध्यात्मिक पथ पर स्वयं ही एक-एक पग रख कर चलना होता है। योग के प्रत्येक सोपान पर उसे स्वयं ही अपने पैर जमाने होते हैं।

आध्यात्मिक पथ पर अथवा योग के सोपान पर अपना प्रत्येक पग स्वयं ही रखना होगा। आपको निविकल्प समाधि में सीधे पहुँचाने के लिए कोई चमत्कार नहीं होने वाला है। गुरु तो केवल आपको प्रेरणा देंगे और आपकी शङ्काओं और बाधाओं को दूर करेंगे । अन्तनिरीक्षण कीजिए, दोषों को ढूंढ़ निकालिए और उन्हें दूर कीजिए। नियमित रूप से ध्यान कीजिए। ऐसा करने से आप शीघ्र ही लक्ष्य तक पहुँच जायेंगे ।

कोई भी शिष्य गुरु के चमत्कार के परिणामस्वरूप साक्षात्कार नहीं प्राप्त कर सकता है। भगवान् बुद्ध, ईसा मसीह, स्वामी रामतीर्थ आदि सबने आध्यात्मिक साधना की थी। भगवान् श्रीकृष्ण वैराग्य और अभ्यास का सुझाव देते हैं। अजुन को उन्होंने कभी नहीं कहा कि मैं तुम्हें सीधे मुक्ति दूंगा।

जब आध्यात्मिक मार्ग की ओर निश्चित कदम बढ़ाने के लिए अन्दर से तीव्र उत्कण्ठा जाग्रत होती है, तब कठोर साधना भी करनी पड़ती है। साधना सुव्यवस्थित और क्रमिक होनी चाहिए। जैसे विषम ज्वर में ताप चढ़ता जाता है. सोपान पर चढ़ते समय जिस प्रकार पग-पग बढ़ा जाता है, वैसे ही योग-मार्ग में भी पग-पग बढ़ना होता है।

गुरु और शिष्य के बीच स्थान की दूरी रही तो भी हानि नहीं है। प्रमुख बात तो दोनों के आन्तरिक सामीप्य की है। गुरु और शिष्य के बीच पूर्ण एकता होनी आवश्यक है। तभी शिष्य को पूर्ण लाभ मिल सकता है।

सूर्य कमल से बहुत दूर रहता है तो भी प्रातःकाल सूर्योदय होते ही कमल खिल उठता है। अपने से बहुत दूर रहने पर भी चन्द्रमा के उदय के साथ ही साथ उसे देख कर कुमुदिनी प्रफुल्लित हो जाती है। मोर से बहुत दूर मेघ रहते हैं, फिर भी मेघ को देखते ही मोर हर्ष से नाच उठते हैं। इसी प्रकार, दो आप्त मित्र भले ही परस्पर कितनी ही दूर रहें, फिर भी अपनी मैत्री और स्नेह-सूत्र में वे आवद्ध ही रहते हैं। दूरी कोई बन्धन या वाधा नहीं है। गुरु और शिष्य भले बहुत दूर-दूर रहें तब भी गुरु अपनी बलवती आध्यात्मिक विचार-लहरियों के द्वारा शिष्यों का मार्ग-दर्शन कर सकते हैं।

यह संसार बड़ा विचित्र है। यहाँ हमें बहुत-सी बातें सीखनी होती हैं। जो शिष्य आज अपने गुरु का परम भक्त है, वही आगे चल कर, हो सकता है, अपने गुरु को ही हानि पहुँचाने का प्रयत्न करे। प्रगतिशील साधक के सामने पग-पग पर कई बाधाएँ उपस्थित होती हैं। इनसे उनकी आत्मशक्ति विकसित होती और उनका मनोबल तथा उनकी सहिष्णुता हढ़ होती है। जब कभी विपरीत स्थिति उत्पन्न होती है, तब साधक को अपनी अन्तःशक्ति से काम लेना पड़ता है। उसे इस प्रकार रहना होता है मानो कुछ हुआ ही नहीं।

आपका कोई गुरु नहीं है तो भगवान् को, कृष्ण, शिव या राम को ही अपना गुरु मानिए। उनका ही भजन, ध्यान और स्मरण कीजिए। वे आपके पास योग्य गुरु भेज देंगे। प्रारम्भ में किसी सशरीर गुरु की आवश्यकता होती है। भगवान् ही गुरुओं के गुरु हैं। वही आपको भगवत्प्राप्ति का मार्ग बतलायेंगे तथा मार्ग की बाधाओं और अड़चनों को दूर करेंगे ।

(३) साधक की योग्यता

अमरत्व की प्राप्ति का साधक कौन हो सकता है ?

जिसने सांसारिक विकारों को हटा दिया है, प्रापञ्चिकता और सर्व प्रकार की ऐहिक आसक्तियों को दूर कर दिया है, वही योग-पथ पर चलने का अधिकारी है। उसमें प्राकृतिक शुद्धि और जीवन की शुचिता होनी चाहिए ।

जिसने प्रचुर तपस्या द्वारा सारे पापों को धो दिया हो, जो शान्त और वीतराग पुरुष हो तथा जिसमें जन्म-मरण-रूपी संसार-चक्र से मुक्त होने की उत्कटता हो, वही वेदान्त-ग्रन्थों और आत्म-ज्ञानपरक पुस्तकों का अध्ययन कर सकता है। ज्ञान प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि आध्यात्मिक साधक विभिन्न तपस्याओं के द्वारा निष्पाप हो जाय, शान्त चित्त बने, समस्त आसक्तियों से मुक्त हो, इन्द्रियों पर पूर्ण नियन्त्रण करे, गुरु और बेद के प्रति प्रबल निष्ठा रखे और मुक्ति के लिए छटपटाहट अनुभव करे । ऐसा व्यक्ति ही किसी ब्रह्मनिष्ठ गुरु के पास जा कर मार्ग-दर्शन प्राप्त करने का अधिकारी है।

संसार और सांसारिक विषयों के प्रति वैराग्य और परमेश्वर तथा आध्यात्मिक साधना के प्रति प्रेम बढ़ने दीजिए ।

ज्ञानी पुरुष का मार्ग पाप-रहित है। मोक्ष या पूर्ण आनन्द की प्राप्ति और शाश्वत शान्ति का मार्ग भी चित्त-शुद्धि, सत्क्रिया, शुद्ध चरित्र, पवित्र जीवन, आत्म-संयम और मनोजय का है; शुद्ध आत्मप्रकाशी, अव्यक्त तथा सर्वव्यापक आत्मा के निरन्तर ध्यान का है।

किसी नवयुवती के चेहरे पर श्वेत कुष्ठ का छोटा-सा भी दाग रहे तो उसका सौन्दर्य निश्चय ही कलङ्घित हो जाता है; इसी प्रकार साधक के अन्दर भी कोई छोटी-सी न्यूनता रह जाय तो उसके सारे चरित्र और जीवन को ही वह

बिगाड़ देती है। प्रत्येक 'प्रकार की दुर्बलताओं और दोषों से साधक को बचना चाहिए । उसे सर्वगुणसम्पन्न एक आदर्श व्यक्ति होना चाहिए ।

आत्मा का साक्षात्कार मुबित का साधन है। साधन-चतुष्टय से सम्पन्न व्यवत ही आत्म-साक्षात्कार पा सकता है। वे चार साधन हैं-विवेक, वैराग्य, षड्सम्पत् और मुमुक्षुत्व । इनकी प्राप्ति अपने-अपने वर्णाश्रम-धर्मों का पूर्ण पालन करने, तपस्या, निःस्वार्थ सेवा, अपने इष्टदेव की आराधना तथा किसी प्रतीक या गुरु की सेवा से होती है।

कैचौ, सूई और धागे के बिना कपड़ा-सिलाई का काम नहीं होता, फावड़े के बिना भूमि नहीं खुदती; इसी प्रकार विवेक, बैराग्य, शम, दमादि षड्सम्पत्ति तथा मुमुक्षुत्व-रूपी चार साधनों को अपनाये बिना ब्रह्मज्ञान प्राप्त नहीं किया जा सकता है। निःस्वार्थ सेवा अथवा निष्काम्य कर्मयोग के द्वारा हृदय को शुद्ध किये बिना वेदान्त के उपदेशः मन में प्रवेश नहीं कर सकते ।

साधक की निम्नलिखित योग्यताओं को प्राप्त किये बिना किसी को कोई अवतारी पुरुष भी सहायता नहीं कर सकता । वे योग्यताएँ हैं – सन्तोष, वीतरागता, निस्पृहता, सर्वसङ्ग-परित्याग, आस्तिवय, सदाचार, जितेन्द्रियत्व, सच्चा और स्थायी वैराग्य, दृढ़ निश्चय, समाधान, विचारशीलता, विधेयता, नम्रता आदि ।

वेदान्त का अध्ययन करने वाले विद्यार्थी की सर्व-प्रथम योग्यता यह है कि उसमें सत्य के अन्वेषण की उत्कट अभिलाषा हो। सत्य के साक्षात्कार की यह अभिलाषा उसे सतत जीवित रखनी चाहिए। साधक के लिए यही मूलभूत योग्यता है। यह एक गुण उसमें आ जाय तो फिर बाकी सारे गुण अपने-आप आ जायेंगे। सभी भली योग्यताएँ स्वयं प्राप्त होंगी। उसके बाद ही वह सत्य-मार्ग का अनुयायी हो सकेगा।

मुक्ति के लिए मनुष्यत्व, मुमुक्षुत्व, सत्सङ्ग, गुरु-सेवा तथा श्रुतियों का श्रवण, मनन और निदिध्यासन आवश्यक हैं।

श्रद्धा, वैराग्य, आत्म-संयम, मन की एकाग्रता, हृदय की शुद्धि, भक्ति. मुमुक्षुत्व और ध्यान- ये साधक के लिए मुक्ति के परम साधन हैं। इन गुणों से जो सम्पन्न है, वह ज्ञान और अमरत्व पा सकता है।

साक्षात्कार के मार्ग के अनुयायी के ये कुछ लक्षण हैं-निर-हङ्कारिता, दैवी गुणों का विकास, प्रसन्नता, आत्म-समर्पण; क्रोध और उद्वेग का अभाव, सदा मन का सन्तुलित रहना, मान-अपमान के प्रति समान भाव, वैषयिक कामनाओं से विमुखता, शीत-उष्ण के प्रति समान निरपेक्षता आदि। ये गुण कोई एक-दो दिन में प्राप्त नहीं होते हैं। यह तो कई वर्षों तक अखण्ड और सुदृढ़ साधना के फल हैं।

आध्यात्मिक मार्ग में एम०ए०, पी-एच० डी० आदि विश्वविद्यालयीन उपाधियों का कोई महत्त्व नहीं है। सत्यान्वेषण के कठिन मार्ग में इन उपाधियों से कदाचित् ही कोई सहायता मिल सकेगी। इस मार्ग के लिए तो विवेक, वैराग्य, नम्रता, भक्ति, सहिष्णुता, मन और इन्द्रियों पर विजय ही मुख्य योग्यताएँ हैं। प्रतिवाद का यहाँ

कोई स्थान नहीं है। आधुनिक शिक्षा मनुष्य को अनावश्यक वाद-विवाद और कुतर्क की ओर प्रेरित करती है। व्यक्ति लक्ष्य से च्युत हो जाता है। इस शिक्षा से मनुष्य केवल एक शुष्क, वितण्डावादी पण्डित बनता है।

गुरु केवल उन साधकों को आध्यात्मिक मार्ग के उपाय सुझाता है जिन्हें मोक्ष की पिपासा है, जो पहले से शास्त्र-सिद्धान्तों में विश्वास रखते हैं, जिन्होंने अपनी वासनाओं और कामनाओं को जीत लिया है और जो अपने में दया, विश्वप्रेम, सहिष्णुता, नम्रता, धैर्य और सहनशीलता रखते हैं।

उत्तम अधिकारियों को ही केवल तीन दिनों में आत्म-साक्षात्कार हो सकता है। मध्यम अधिकारियों को अधिक समय तक कठोर साधना करनी पड़ती है।

साधक को सुमेरु पर्वत की तरह सुदृढ़, वायुमण्डल की तरह मुक्त, माधवी की तरह सर्वदा सुरभियुक्त, आकाश की तरह विशाल, घरती की तरह सहिष्णु, माता-पिता की तरह क्षमाशील, सूर्य की तरह प्रकाशमान्, सिह की तरह निर्भय तथा रन्तिदेव की तरह उदार रहना चाहिए ।

अहंभाव और आसक्ति से दूर रहिए। वासनाओं का दमन कीजिए। सदाचार के नियमों का पालन कीजिए। चित्त को शुद्ध कीजिए। सत्य को ही सुनिए और आत्मा में लीन रहिए । प्रसन्न रहिए ।

स्वार्थी मनुष्य अधार्मिक होता है। उसके अन्दर बहुत बड़ी मात्रा में आसक्ति और परायेपन का भाव होता है। वह योग के लिए आवश्यक गुणों का विकास नहीं कर पाता है। योगी बनने की या योगाभ्यास करने की इच्छा उसी व्यक्ति में पैदा हो सकती है जो निःस्वार्थ, न्याययुक्त और धार्मिक प्रवृत्ति वाला होता है। स्वार्थ मनुष्य के हृदय को संकुचित कर देता है और दूसरों को कष्ट में डाल कर भी उनकी सम्पत्ति को अनैतिक रूप से हड़पने में उसे प्रवृत्त करता है। स्वार्थ ही मनुष्य को पाप कर्म की ओर प्रेरित करता है।

महर्षि पतञ्जलि के कथनानुसार तप, स्वाध्याय, मन्त्र-जप, भगवद्भवित और ईश्वर-प्रणिधान- ये क्रिया-योग हैं। पातञ्जल-योगदर्शन के दूसरे पाद अर्थात् साधनपाद का यह पहला सूत्र है। यह एक ऐसा योग है जहाँ अनुशासन प्रमुख है। क्रिया-योग की साधना से योगिक विद्यार्थी को समाधि में प्रवेश करने की योग्यता प्राप्त होती है। इससे चित्तशुद्धि होती है और अविद्या, अस्मिता, राग, द्वष और अभिनिवेश-रूपी पञ्च-क्लेश दूर होते हैं। शुद्ध और निःस्वार्थ पुरुष ही दिव्य प्रकाश पाने और अमरत्व-प्रद अमृत-पान करने का अधिकारी है।

आप अपने जीवन में जिन विषयों से अपरिचित हैं, यदि आप उनके सम्बन्ध में जानकारी नहीं प्राप्त करते तो आप जीवनभर अज्ञानी ही रह जायेंगे ।

भावना और श्रद्धा के साथ अपने गुरु के चरणकमलों के पास बैठिए । आस्था, नम्रता और प्रेम के साथ उनकी सेवा कीजिए। सायं-प्रातः उनको प्रणाम कीजिए। अपनी शङ्काओं को दूर कीजिए। उनसे श्रुति का श्रवण कीजिए। ज्योतियों की ज्योति उस परमेश्वर की शरण जाइए । ज्ञानामृत-पान करके अमर बनिए ।

किसी गुरु के पास जाने से पहले आपको अपनी शुद्धि के लिए कुछ सामान्य साधनाएँ करनी होंगी। साधक की प्राथमिक योग्यता आपमें आनी चाहिए ।

योग के विद्यार्थी को अपना आहार सन्तुलित रखना चाहिए। आलस्य, आराम, प्रमाद की आदत और अतिनिद्रा से उसे बचना चाहिए । उसे मौन का अभ्यास करना चाहिए, समय-समय पर हलके उपवास रखने की शक्ति प्राप्त करनी चाहिए जिससे उसका शरीर सन्तुलित रह सके। अच्छी आदतों का अभ्यास करना चाहिए । सभी प्रकार की आकांक्षाओं और सांसारिक इच्छाओं से उत्पन्न विरुद्ध प्रवाह को निरीक्षण, चिन्तन और विवेक के द्वारा रोकना चाहिए। मन जब हताश हो, तब समझाना चाहिए कि 'रे मन ! तेरी चालाकी मैं जानता है। अब मैं विवेक तथा वैराग्य से सम्पन्न है। अब अपनी पूंछ न हिला। मैं निर्दयतापूर्वक उसे तोड़ कर फेंक दूंगा। मैंने बहुत कुछ सीख लिया है। अज्ञान ही के कारण मनुष्य स्थायी सुखों को छोड़ कर क्षणिक सुख के पीछे दौड़ने लगता है। अब मैं फिर से इन वैषयिक सुखों के पीछे दौड़ना नहीं चाहता है। अब वह सब-कुछ मेरे लिए वमन किये हुए पदार्थ के समान है। मैंने तय कर लिया है कि मैं योग के शाश्वत और स्वतन्त्र फलों का उपभोग करूंगा अर्थात् शाश्वत शान्ति, परमानन्द और असीम सुख प्राप्त करूंगा।'

मछली को पानी से उठा कर किनारे पर रख दिया जाय तो वह कष्ट से छटपटाने लगती है। पानी में फिर जाने के लिए वह विकल हो उठती है। किसी लड़के को गङ्गा के शीतल जल में कुछ देर बिठा रखा जाय तो उसका दम फूलने लगेगा। वह चीखने चिल्लाने लगेगा और बाहर कूद आने का प्रयास करेगा। किसी के मकान में आग लग गयी हो, तब मकान मालिक तुरन्त नगर-पालिका के कार्यालय की ओर दौड़ेगा और दमकल लाने और आग बुझाने का प्रयत्न करेगा। यह सारा काम वह तुरन्त करेगा। इसी प्रकार आपमें भी मुक्ति के लिए विकलता और उत्कटता आनी चाहिए ।

मन में से यह विचार निकाल देना चाहिए कि कुछ ही महीनों की साधना से मैं योगी बन जाऊँगा। उसके लिए कई चर्षों की सच्ची साधना तथा ब्रह्मचर्य और हिंसा के पालन की आवश्यकता होती है। विश्वविद्यालय के स्नातक बनने के लिए तथा अल्प अर्थ-सम्पादन के लिए भी कई वर्षों तक कठिन परिश्रम करना होता है, तब योगी बनने तथा अमरत्व प्राप्त करने के लिए कितनी कठिनाई हो सकती है ?

हे साधको ! दृढ़ निश्चय कीजिए कि अब भगवान् का साक्षात्कार करूंगा या मरूंगा।

यह मत कहिए कि 'अगले जन्म में साक्षात्कार कर लूंगा।' मैं छड़ी से खबर लूंगा। मैं बहुत अप्रसन्न होऊँगा। आपमें यदि एकमात्र भगवान् की ही सच्ची पिपासा है और आप सच्ची और गहन साधना करते हैं तो अगले क्षण हो आप भगवत्साक्षात्कार कर लेंगे।

(४) सञ्चित, पुरुषार्थ और प्रारब्ध कर्म

हमारे सञ्चित कर्म एक तरकश के समान होते हैं; आगामी कर्म उस बाण के समान है जो छूटने को तैयार है और प्रारब्ध लक्ष्य की ओर चलाये गये उस बाण के समान है जो लौटने वाला नहीं है तथा जिसे लक्ष्य पर जा कर ही लगना है।

सञ्चित कर्म संग्रह-कक्ष के समान है। विक्री के लिए रखे गये सामान के जैसा है प्रारब्ध कर्म । प्रतिदिन की विक्री की आय है आगामी कर्म ।

सञ्चित कर्म वे होते हैं जो हमने पहले से कमा कर सञ्चित किये हैं। प्रारब्ध कर्म वे हैं जो परिपक्व हो गये हैं, कार्य-रूप में परिणत होने को तैयार हैं और आगामी या क्रियमाण कर्म, वे हैं जो अब करने को हैं।

सञ्चित कर्म की तुलना अन्न के बड़े गोदाम से की जा सकती है। प्रारब्ध कर्म की तुलना उस अन्न-राशि से की जा सकती है जो वर्षभर के उपयोग के लिए अलग निकाल कर रख दी जाती है और जो अन्न चालू वर्ष खेत में पक रहा है, उससे आगामी या क्रियमाण कर्म की तुलना की जा सकती है।

ब्रह्मज्ञान के द्वारा सञ्चित कर्मों को समाप्त किया जा सकता है। प्रारब्ध कर्मों को (भले व्यावहारिक दृष्टि से ही सही) भोगना ही पड़ता है। क्रियमाण कर्म जैसा कोई कर्म नहीं है, क्योंकि ज्ञानी में अकर्तृत्व या साक्षित्व का भाव होता है।

भगवान् और पुरुषार्थ दोनों पर्यायवाची शब्द हैं, एक ही वस्तु के दो नाम हैं।

महाभारत से पता चलता है कि पुरुषार्थ और प्रारब्ध दोनों के मिलने पर फल की निष्पत्ति होती है।

आप विपत्ति में हैं तो आपको पुरुषार्थ करना पड़ेगा, दवा लेनी होगी और परिणाम प्रारब्ध पर छोड़ देना होगा।

समूचे योगवासिष्ठ में वसिष्ठ जी श्री रामचन्द्र को पुरुषार्थ करने का ही उपदेश देते हैं। मार्कण्डेय जी ने पुरुषार्थ के द्वारा ही मृत्यु पर विजय प्राप्त की थी। निश्चित रूप से मनुष्य अपने भाग्य का स्वामी स्वयं है।

पुरुषार्थ कार्यों को बना सकता है तथा बिगाड़ भी सकता है। मार्कण्डेय ने अपनी तपस्या से अपने भाग्य को बदल डाला। भाग्यवाद से असाधारण प्रमाद का निर्माण होता है। भगवान् उन्हीं की सहायता करते हैं जो अपनी सहायता स्वयं करते हैं। खड़े हो जाओ और पुरुषार्थ में लगो। मनुष्य स्वयं अपने भाग्य का विधाता है। प्रारब्ध तो आपके अपने विचारों और पुरुषार्थों का ही परिणाम है। अपनी विचारधारा को बदल दो। सोचो 'मैं अमर है।' आप अमर आत्मा बन जाओगे। जैसा सोचोगे वैसा बनोगे। यह अटल नियम है।

अभी तो आपका ऐसा सोचने का स्वभाव है, 'मैं शरीर हैं', 'मैं मन है', 'मैं प्राण है', 'मैं इन्द्रियाँ है।' इस आदत को छोड़ कर इस ढङ्ग से सोचो कि 'मैं ब्रह्म है', 'मैं सर्वव्यापक चेतन है।' तब भाग्य पर विजय पा लोगे। लिखते समय तिरछे अक्षर लिखने की आपकी आदत है तो उसे बदल देना सहज है। अभ्यास से सीधे अक्षर लिखने की आदत डाल सकते हो। उसी तरह सोचने की आदत भी बदल सकते हो। आदत या स्वभाव पर विजय पाने का अर्थ ही है भाग्य पर विजय पाना ।

प्रत्येक व्यक्ति का भाग्य उसके कर्मों से ही बनता है। अतः अपने भाग्य के स्वामी स्वयं आप हो। विचार करने की पद्धति बदलने मात्र की आवश्यकता है। 'मैं शरीर है' आदि अशुद्ध विचार करना छोड़ कर यह सोचने लगो कि 'मैं सर्वव्यापी आत्मा है।'

प्रारब्ध में इतनी शक्ति है कि वह किसी को बहुत ऊँचे स्तर तक, यहाँ तक कि भगवान् के समकक्ष, पहुँचा दे सकता है। इस प्रसङ्ग में जेम्स रैम्ज़ मैकडोनाल्ड की जीवनी उल्लेखनीय है। वह एक महान् पुरुषार्थी थे। वह निपट गरीब थे; पर पुरुषार्थ से धनाढ्य बन गये। कृषि कार्य करने वाले साधारण श्रमिक से ब्रिटेन के प्रधानमन्त्री के पद तक पहुँच गये। वह शुरू में लिफाफे पर पने लिखा करते थे जिनका वेतन साप्ताहिक दश शिलिङ्ग था। वह इतने गरीब थे कि चाय तक नहीं पी सकते थे। कोरा पानी पी कर रह जाते थे। कई महीनों तक प्रतिदिन थोड़े से माँस पर ही निर्वाह करते रहे जिसकी कीमत तीन पेनी होती । अपने विद्यार्थी-जीवन में ही वह कुछ वर्गों में शिक्षण-कार्य करते थे। विज्ञान और राजनीति के विषयों में वह अधिक रुचि लेते। बह पत्रकार बने, फिर धीरे-धीरे अपने उचित पुरुषार्थ से जीवन में इस पद तक पहुँच गये ।

अपने विचारों के प्रति सजग रहिए। फिर क्रियाएँ भी अपने-आप सजग रहा करेंगी; क्योंकि क्रिया विचारों पर निर्भर करती है। क्रियाओं से आदत बनती है। आंदतों से चरित्र का निर्माण होता है। चरित्र से भाग्य बनता है। इस प्रकार आपका भाग्य आपके हाथ में है। सारे कुत्सित विचारों को बन्द कर दीजिए । अच्छे विचारों को ही आने दीजिए। हम अपने विचारों की ही कृति हैं और हमारा भावी निर्माण भी हमारे विचार ही करेंगे।

आप पर कोई बन्धन नहीं है। आपमें स्वतन्त्र इच्छा-शक्ति है। आप अपने संस्कारों अर्थात् प्रारब्ध कर्म फलों को तो बदल नहीं सकते; परन्तु सद्विचार और सत्कार्य के द्वारा अपना भविष्य अवश्य परिर्वातत कर सकते हैं तथा अपने विचारों को शुद्ध और अप्रतिहत बना सकते हैं। प्रबल इच्छा-शक्ति की सहायता से आप आत्मानुभूति प्राप्त कर सकते हैं।

चावल पर भूसी का रहना और लोहे पर जंग का चढ़ना अनिवार्य है; पर प्रयत्न करने पर उसे हटाया जा सकता है। इसी प्रकार जीवात्मा के चारों ओर जो अज्ञान का आवरण है, उसे भी सतत आत्म-जिज्ञासा के द्वारा मिटाया जा सकता है.। अविद्या को नष्ट कीजिए। अपनी अनुपम हृढ़ता से आत्म-स्थित हो जाइए ।

पुरुषार्थ का समर्थन करने वाला व्यक्ति कहता है- "क्या मैं घास की पूली है जो इधर से उधर कर दिया जाऊँ ? मैं अपना .. भाग्य बदल सकता है। वेदान्त के अभ्यास से मैं उसे समाप्त कर सकता है। मेरे पास अपनी स्वतन्त्र इच्छा-शक्ति है। मैं उसे परिशुद्ध और अप्रतिहत बनाऊँगा। मैं अपनी मुक्ति का मार्ग स्वयं तय करूंगा और मुक्त हो जाऊँगा।"

दूसरा दार्शनिक कहता है-"प्रत्येक पदार्थ या घटना की भव्य योजना पूर्व-निर्धारित होती है। भगवान् को यह सब-कुछ मालूम है कि मनुष्य का विकास एक भौतिक कण से ले कर जीवन्मुक्त तक कैसे होता है। वस्तुतः यह सारा प्रारब्ध ही है। हमें तो मनुष्यों को पुरुषार्थ की प्रेरणा इसलिए देनी होगी कि वे सही निष्ठा से काम में लग सकें। नहीं तो वे प्रमाद और आलस्य में पड़े रह जायेंगे।"

जब मनुष्य अपने प्रयत्नों में सफल हो जाता है, तब उसे पुरुषार्थ कहता है। वह कहता है- "मैंने ठीक पुरुषार्थ किया और सफल हुआ ।" यदि असफल रह जाय तो वही कहेगा कि 'क्या करें भाई, सब प्रारब्ध कर्म है। भगवान् के बिना तो कुछ होता नहीं; न तो धूल का कण हिल सकता है, न एक पत्ता उड़ सकता है।'

प्रारब्ध उन पुरुषार्थों का नाम है जो हमने पिछले जन्म में किया है।

आखिर भाग्य क्या है ? वह तो प्रत्येक की अपनी करनी है। आपने जो कुछ बनाया, उसे आय मिटा भी सकते हैं। आपके सोचने का तरीका एक ही है- 'मैं अमुक अमुक हूँ, मैं ब्राह्मण है, मैं डाक्टर हूँ, मैं मोटा है, गृहस्थ है' आदि। यह प्रारब्ध है। विचार करने की इस पद्धति को आप बदल सकते हैं। सोचिए -'मैं ब्रह्म है। मैं सर्वशक्तिमान् है। मैं साक्षी है। मैं ईश्वर है। न तो मैं शरीर है, न मन। मैं विश्वव्यापी सत्य है। मैं शुद्ध प्रज्ञा है।' मह पुरुषार्थ है। तिरछे अक्षर लिखने का आपका अपना एक तरीका है। यह प्राख्ध है। इस तरीके को सीधे लिखने की आदत में आप बदल सकते हैं। यह पुरुषार्थ है।

आप काम का बीज बोते हैं और प्रवृत्ति का फल पाते हैं, प्रवृत्ति-रूपी बीज से आदत प्रस्फुटित होती है, आदत का बीज बो कर चारित्र्य-रूपी फल प्राप्त करते हैं और चारित्र्य के बोज से भाग्यरूपी फल निष्पन्न होता है, अतः भाग्य आपके अपने हाथ की वस्तु है। आदत बदलिए तो आप भाग्य के स्वामी बन जायेंगे ।

भगवान् किसी को न तो दण्ड देते हैं और न पुरस्कार ही । वे कोई न्यायदण्ड ले कर सबका निर्णय करने नहीं बैठे हैं। जीवन कुछ मूलभूत दिव्य नियमों से सञ्चालित है। वह नियम अपना काम करता है और मनुष्य अपने कर्मों का फल पाता है।

कोई मनुष्य पलभर के लिए निष्क्रिय नहीं रह सकता । प्रत्येक के अन्दर कुछ-न-कुछ करने की सहज प्रेरणा अथवा प्रवृत्ति होती है। इसीलिए गीता कहती है- "वास्तव में कोई भी व्यक्ति निष्क्रिय नहीं रह सकता। कुछ नैसर्गिक गुणों के कारण हरएक को बलात् कुछ न-कुछ कर्म करना पड़ता है।" प्रारब्धवाद को भाग्यवादी नहीं बना सकता ।

शरीर से परे हो कर जीने का अभ्यास कीजिए । तटस्थ रह कर इस शरीर और मन की सारी क्रियाओं का निरीक्षण कीजिए। खेल-कूद में जैसे निर्णायक होते हैं, वैसे आप भी केवल साक्षी या द्रष्टा रहिए । यही ज्ञान है। शरीर को ऐसे अनुशासित कीजिए कि वह सदा आपका आज्ञाकारी बना रहे। उसे सशक्त और स्वस्थ रखिए । मूर्ख मायावादी न बनिए । मायावाद क्या है ? यह स्पष्ट समझ लीजिए। शरीर के प्रति मोह न रखिए । किसी भी क्षण उसे छोड़ने को तैयार रहिए। दैवी निमन्त्रण आते ही उच्च ध्येय के लिए शरीर को छोड़ दीजिए। यह शरीर तो संसार-सागर पार करने का साधन मात्र है, एक नाव है।

भक्त का जो-कुछ भी है वह सब प्रारब्ध ही है; क्योंकि वह तो आत्म-समर्पण कर चुका होता है। उसको केवल परमेश्वर की शक्ति का ही समादर करना होता है। वेदान्ती के लिए एकमात्र पुरुषार्थ ही रहता है; क्योंकि वह आत्म-विश्वासी पुरुष है। उसे अपनी प्रबल इच्छा-शक्ति (आत्म-बल) पर ही निर्भर रहना होता है। वे दोनों अपने-अपने दृष्टिकोण से ठीक ही हैं।

प्रत्येक पुरुष को दिव्य ज्ञान प्राप्त करने के लिए दैवी नियम - कर्म का पालन करना ही पड़ता है। हरएक को द्वार पर अकेले ही बैठना पड़ता है। अन्दर खींच कर ले जाने वाला कोई नहीं है। गुरु द्वार तक ले जा सकता है; परन्तु आत्मशुद्धि, एकाग्रता और मनोनिग्रह के लिए प्रत्येक को स्वयं ही संग्राम करना पड़ता है।

एक दार्शनिक कहता है- "पुरुषार्थ किस प्रकार फलदायी होता है ? प्रारब्ध कैसे काम करता है?" यह बतलाना बहुत दुष्कर है।

लोग पूछते हैं- "इस संसार में ऐसा क्यों है कि सज्जन तो कष्ट भोगते हैं और दुर्जन बड़े आनन्द का उपभोग करते हैं ?" इसका उत्तर यह है कि इस जन्म में प्रत्येक को अपने पूर्व-जन्म के अच्छे-बुरे कर्मों का फल भोगना होता है।

जिस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति का अपना-अपना प्रारब्ध होता है, उसी प्रकार विश्व का भी प्रारब्ध होता है। वह सामष्टिक प्रारब्ध है। संसार के आन्दोलनों और सङ्घर्षों के बाद पूर्ण शान्ति और समृद्धि आती है। आपको प्राकृतिक नियमों का बोध नहीं है; अतः आप उसके कार्यों का विश्लेषण करने की योग्यता नहीं रखते हैं।

धरती पर जनसङ्ख्या का भार जब बढ़ जाता है और आवश्यकतानुसार खाद्यसामग्री उपलब्ध नहीं होती, तब देवी शक्ति अकाल, साङ्घातिक बीमारियाँ, भूकम्प, ज्वालामुखी, युद्ध आदि के द्वारा अतिरिक्त जन-भार को कम कर देती है।

चतुर्थ अध्याय: ईश्वर और अवतार

(१) ईश्वर का सगुण और निर्गुण रूप

उपनिषदों ने जिसे ब्रह्म कहा और स्मृतियों ने जिसे परमात्मा कहा, उसे भागवत में भगवान् कहा गया है।

मेरे प्रभु शिव, जिनका हृदय हरि है, उस औपनिषदिक निर्गुण ब्रह्म से अभिन्न हैं।

जिस प्रकार वायु आकार-रहित है, किन्तु वह झञ्झावात का रूप धारण कर लेता है; उसी प्रकार निराकार ब्रह्म भी साकार बन सकता है ।

ईश्वर अपने भक्तों के लिए बर्फ के समान साकार हो सकता है और ज्ञानियों के लिए वाष्प की भाँति निराकार भी हो सकता है।

पानी जिस प्रकार उदजन (Hydrogen) और प्राणवायु (Oxygen) के रूप में निराकार भी रह सकता है और बर्फ के रूप में साकार भी रह सकता है, उसी प्रकार ब्रह्म भी साकार और निराकार दोनों रूपों में रहता है। वह अवतार का रूप भी अपना सकता है ।

व्यष्टि पिण्ड है और समष्टि ब्रह्माण्ड है। समष्टि का अर्थ है सामूहिक रूप और व्यष्टि का अर्थ है अलग-अलग व्यक्ति । वृक्ष व्यष्टि है जबकि उपवन समष्टि है। दियासलाई की एक सलाई व्यष्टि है तो दियासलाई की डिबिया समष्टि है। सारे व्यष्टि कारण शरीरों में जो एक रूप है, वही ईश्वर है। समस्त व्यष्टि सूक्ष्म शरीरों में जो एक समान है, उसे हिरण्यगर्भ अथवा 'सूत्रात्मा' कहते हैं। उन सूक्ष्म शरीरों से युक्त उस हिरण्यगर्भका नाम है तैजस् । समूचे व्यष्टि स्थूल शरीरों के साथ जो एक रूप है, उसे विराट् अथवा वैश्वानर कहते हैं। उन सूक्ष्म शरीरों-सहित विराट् को विश्व कहते हैं। स्वयं ईश्वर ही सत्त्व, रजस् और तमस् गुणों के द्वारा ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र रूप धारण कर लेता है और विश्व का स्रष्टा, संरक्षक और संहारक बनता है। ब्रह्मा विराट् के, विष्णु हिरण्यगर्भ के और रुद्र ईश्वर के अन्तर्गत है।।

श्रीकृष्ण देखने वालों के अपने-अपने दृष्टिकोण और सूझ के अनुसार ऋषि-मुनियों को परब्रह्म, तो योगियों को परम तत्त्व के रूप में दिखायी पड़े, गोपियों की दृष्टि में वे परम सौन्दर्य-स्वरूप, तो योद्धाओं की दृष्टि में महान् योद्धा थे, वसुदेव और देवकी के लिए शिशु तो कंस के लिए यम-स्वरूप थे, इसी प्रकार राजाओं की दृष्टि में वे सम्राट् दीखे। एक ही पदार्थ देखने वाले के भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों के अनुसार भिन्न-भिन्न रूपों में दीखता है।

पाश्चात्य दार्शनिक जिसे 'परमात्मा' (Oversoul) कहते हैं, वह वही है जिसे उपनिषदों ने ब्रह्म कहा है या वेदान्ती जिसे आत्मा कहते हैं। सभी जीवात्माबों का आधारभूत परमात्मा ही वह 'परमात्मा' (Oversoul) है। यह वही है

जिसे स्पिनोजा 'सारतत्त्व' (Substance) कहता है या कैण्ट जिसे 'पदार्थ' (Thing in itself) कहता है। वेदान्त का सार शनैः-शनैः पाश्चात्य दार्शनिकों के मस्तिष्क में उतरने लगा है और वे भी मानने लगे हैं कि शरीर या चित्त से भिन्न एक अमर आत्मा का, एक परमतत्त्व का अस्तित्व है।

श्री रामानुजाचार्य के सिद्धान्तानुसार एक सविशेष ब्रह्म है जो सारा कार्य करता है। वह बड़ा करुणामय है। पुण्यात्माबों पर दया करने आता है। परन्तु श्री शङ्कराचार्य के अनुसार ब्रह्म निविशेष है। वह पूर्णतया उदासीन है। यह उदासीनता की स्थिति बहुत उच्चतम स्थिति है।

श्रीरामानुजाचार्य का सिद्धान्त है- "भगवान् ! मैं तेरा है; तू मुझसे भिन्न है (तू में नहीं है)। तरङ्ग समुद्र की हैं; परन्तु समुद्र तरङ्ग नहीं है।" यह विशिष्टाद्वैत है।

ईश्वर को मानवाकारता में मानने वालों (Anthropomorphic) को धारणा के अनुसार ईश्वर में मानवीय गुण-धर्म का आरोप किया जाता है। मुसलमानों का धर्म इस्लाम ऐसा ही है।

निगुण-निराकार रूप को ब्रह्म कहा जाता है। उसे ही हर्बर्ट स्पेन्सर 'अज्ञेय' (Unknowable) और शोपनहावर 'इच्छा' (Will) कहते हैं। कोई उसे 'सम्पूर्ण रूप से अज्ञात' (Absolute Noumenon) कहता है तो स्पीनोजा उसे 'सारतत्त्व' (Substance) कहते हैं।

सगुण साकार रूप के कई नाम हैं - जैसे ईश्वर, अल्लाह, हरि, जुहोवा, स्वर्गपिता, बुद्ध, शिव आदि ।

भगवान् का परात्पर और अव्यक्त रूप वैसे ही निराकार है जैसे भाप निराकार होती है। वह अपने भक्तों को सन्तोष देने के लिए रूप धारण करता है। अपने भक्तों की उपासना करने के लिए कुछ आकार ग्रहण करता है। उसके भक्त जिस रूप में उसका ध्यान करते हैं, उसी रूप में वह उनको दर्शन देता है। प्रेम-निष्ठ भक्त के लिए किसी-न-किसी रूप की आवश्यकता होती है। उसके अन्दर जब पराभक्ति विकसित होती है, तब वह रूप तिरोहित हो जाता है और वह उस सर्वव्यापी चिन्मय शुद्ध ब्रह्म के साथ एकरूप हो जाता है ।

ईश्वर के प्रेम का स्वरूप ही श्रीकृष्ण है। श्री शिव उस (ईश्वर) का ज्ञान-स्वरूप है और देवी शक्ति-स्वरूपिणी है। ईश्वर का साकार रूप ही विराट् है।

ईश्वर का अन्तःस्थ स्वरूप है हिरण्यगर्भ । भगवान् शिव का रुद्र-स्वरूप हनुमान् है । ईश्वर (त्रिमूत्ति) का संयुक्त रूप दत्तात्रेय है। ईश्वर का स्रष्टा-स्वरूप ब्रहमा है, संरक्षक-स्वरूप विष्णु है और संहारक-रूप शिव है। आपको जो भी रूप पसन्द आवे, उसी रूप में ध्यान कीजिए और भगवान् के साथ एकरूपता साधकर संसार-सागर को पार कीजिए ।

विमलकुमारी पहली बार ससुराल आयी। उसके भाई का नाम था चन्द्र । उसके पड़ोसी के पास एक कुत्ता था। उसका नाम भी चन्द्र था। उसके पति के पास भी एक कुत्ता था । उसका नाम मोती था। विमलकुमारी के भाई का कोई शत्रु था जिसका नाम भी मोती था। दोनों कुत्ते- मोती और चन्द्र लड़ रहे थे। विमलकुमारी का पति पड़ोसी के कुत्ते चन्द्र को डाँटने लगा और अपने कुत्ते की प्रशंसा करने लगा। विमलकुमारी को लगा कि उसका पति उसके भाई चन्द्रः को गाली दे रहा है और उसके भाई के शत्रु मोती की प्रशंसा कर रहा है। विमल-कुमारी अपने पति से चिढ़ गयी। चूंकि वह अपने पति को ठीक समझ नहीं पायी थी, इसलिए पति के उस व्यवहार से उसके हृदय पर आघात पहुँचा। उसे उन नामों के कारण भ्रम हो गया था। इसी प्रकार विष्णु-पुराण में शिव की निन्दा को देख कर शैवों को तथा शिव-पुराण में विष्णु की निन्दा पढ़ कर वैष्णवों को बड़ा दुःख होता है। शैव साधकों की श्रद्धा शिव में जमाने के हेतु से शिव-पुराण में विष्णु की हीनता का वर्णन है और विष्णुपुराण में शिव की हीनता के वर्णन का हेतु भी यही है कि साधकों के मन में विष्णु के प्रति आस्था दृढ़ हो। इसका और कोई दूसरा कारण नहीं है। नाम और शब्द के कारण आज अनेक भ्रम फैले हुए हैं और प्रतिदिन किसी-न-किसी निमित्त झगड़े होते रहते हैं। बुद्धिमान् वह है जो इन नाम-रूपों से ऊँचा उठे, अनाम और अरूप ब्रह्म में लीन रहे।

यदि आप सगुण ब्रह्म के उपासक हैं तो आप अपने ही अन्दर विश्व को देखेंगे। सारा विश्व उस ईश्वर के अन्दर है। उसके बाहर कुछ भी नहीं है। जीवात्मा में अहङ्कार पैदा होता है और इससे वह अपने को ईश्वर से अलग मानने लगता है, तब विश्व भी बाहर दीखने लगता है। चूंकि आप विश्व को अपने से भिन्न देखते हैं, इसीलिए वहाँ विषयों के प्रति आकर्षण भी है। यदि अपने ही अन्दर सारा विश्व देखें तो फिर किसी भी विषय का आकर्षण शेष नहीं रहेगा।

एक शुष्क वेदान्ती-पण्डित भक्ति की उपेक्षा करता है। भक्ति की वह निन्दा करता है। वह कहता है- "भक्ति से मानव को दुःखों से मुक्ति नहीं मिलने वाली है। भक्ति से मोक्ष कैसे मिलेगा ?" यह निरी मूर्खता है। भक्ति से सभी मानवीय दुःख दूर हो सकते हैं और क्रम-मुक्ति प्राप्त हो सकती है। जो साम्प्रदायिक भक्त होते हैं, वे अद्वत, निर्गुण, निराकार ब्रह्म को नहीं मानते हैं। वे ज्ञान की निन्दा करते हैं। वे कहते हैं- "मुझे कोई रस-हीन शुष्क ब्रह्म नहीं चाहिए। मुझे लीलामय कृष्ण ही पसन्द है। गोलोक से उत्कृष्ट कुछ भी नहीं है।" यह भी महामूर्खता है। दोनों के हृदय संकुचित हैं। गोलोक और लीलामय कृष्ण से परे निगुण, निराकार, अद्वैत ब्रह्म का अस्तित्व भी है जो इस लीलामय कृष्ण का आधार या सार है। ब्रह्माण्ड का प्रलय होने पर ये कृष्ण भी उस ब्रह्म में लीन हो जायेंगे।

यद्यपि श्री शङ्कराचार्य ने सर्वोच्च अद्वैत की, निर्गुण ब्रह्म की अनुभूति प्राप्त कर ली थी, तब भी वे स्पष्ट कहते हैं-"भगवान् श्रीकृष्ण के चरण-कमलों में अपना मन स्थिर करने की मेरी इच्छा तथा उनके दयालु चरणों को अपने अश्रुजल से प्रक्षालन की उत्कट कामना अभी दूर नहीं हुई है।"

उल्लू चाहे प्रकाश की उपस्थिति को माने या न माने, प्रकाश तो सदा है ही। आप परमात्मा के अस्तित्व को मानें या न मानें, वह सदा है ही। वह भूत, भविष्य और वत्तं मान- तीनों कालों में निरन्तर भासमान है। आपके खोजने से पहले ही वह आपके सामने है। वह आपकी साँस से भी, आपके हाथ-पैरों से भी आपके अधिक निकट है।

किसी किसान ने महाराजा को नहीं देखा होगा, परन्तु वह इतना तो जानता ही है कि कोई महाराजा है जो अपने व्यवस्था-तन्त्र के द्वारा देश पर शासन कर रहा है। इसी प्रकार भले ही आपने भगवान् को प्रत्यक्ष नहीं देखा हो, फिर भी विश्व में जो एक नियम और क्रम दिखता है, उससे उसके नियामक ब्रहम के अस्तित्व को समझ सकते हैं।

मन, वाणी, कान, आँख और अन्यांन्य इन्द्रियाँ जब सोयी रहती हैं, तब अकेला प्राण जागता रहता है। प्राणों का यह कम्पन कहाँ से आता है ? इस प्राण का कौन आधार है ? वह ब्रहम ही है। वह पदार्थ और प्राणिमात्र की योनि या आधार है।

मिट्टी से बने हुए इस भौतिक शरीर को विभिन्न तरीकों से कौन नचा रहा है ? इस शरीर का सूत्रधार कौन है ? उसे खोज निकालिए।

प्रत्येक अनुभव यह कहता है कि 'मैं है।' इसी से स्पष्ट हो जाता है कि भगवान् है। अस्तित्व (सत् मात्र) का नाम ही है भगवान् अथवा ब्रहम । हर प्रकार के सुख, समृद्धि और सुविधाओं के अतिरिक्त आप अनुभव करते हैं कि आपको किसी पदार्थ. का अभाव खटक रहा है. पूर्णता का अनुभव नहीं हो रहा है। बह पूर्णता तभी आयेगी जब आप अपने को सर्वात्मना उस पूर्ण पुरुष भगवान् के साथ जोड़ लें। जब कभी आप कोई दुष्कृत्य करते हैं तब आपको भय लगता है। आपका ही अन्तःकरण आपको धिक्कारता है। यह सारा भगवान् के अस्तित्व का ही प्रमाण है और इस बात का समर्थन करता है कि भगवान् आपकी प्रत्येक क्रिया का और विचारों का साक्षी है।

मथुरा के पास दघेटा नामक एक ग्राम है। १० अक्तूबर, १६३४ की रात को वहाँ पर श्री स्वामी कृष्णानन्द जी और उनकी मण्डली का कीत्तंन चल रहा था। उस कीत्तंन में रुचि रखने वाली एक भक्त महिला ने, उस रात को अपनी बच्ची को घर में ही छोड़ दिया और घर में ताला लगा कर वह कीर्तन में चली आयी। बच्ची की देख-भाल करने वाला घर में कोई दूसरा न था। घर लौटने पर वह देखती है कि बच्ची मजे में हँस रही है और खेल रही है। माँ ने पूछा- "किसके साथ खेल रही हो?" "इसी बूढ़े के साथ तो खेल रही है।" यही वाक्य उस बच्ची ने तीन बार दोहराया। माता को कोई बूढ़ा नहीं दिखायी दे रहा था। वह बूढ़ा अन्तर्धान हो गया। वह भगवान् कृष्ण के सिवा कोई दूसरा नहीं था। जहाँ भक्ति और श्रद्धा हो, वहाँ भगवान् हमेशा रहते हैं। जहाँ काम (कामना) है, वहाँ राम नहीं।

मेरठ में एक शङ्कर-कुटिया है जहाँ संन्यासी लोग प्रायः ठहरते हैं। उसके सामने एक वकील श्री शङ्करदयाल जी का मकान है। उनकी एक लड़की है। वह एक भक्त बालिका है। वह प्रतिदिन भगवान् श्रीकृष्ण की पूजा करती है। इस सबका एकमात्र कारण उस लड़की के पूर्व-जन्म के संस्कार ही हैं। वह पूजा के लिए बगीचे से रोज फूल तोड़ लाया करती थी। एक दिन जब वह इसी तरह फूल तोड़ रही थी, उसके पास एक बच्चा आया। उसके मस्तक पर मोर के पङ्ख थे। उसने कहा- "बच्ची, इस मन्त्र का जप कर!" वह जप करने के लिए कुछ मन्त्र का उपदेश दे कर

अदृश्य हो गया। वह लड़का साक्षात् भगवान् कृष्ण ही था। यह घटना ५ अक्तूबर, १६३४ की है। यदि आपके मन में रञ्चमात्र भी श्रद्धा और भक्ति हो तो भगवान् कृष्ण इस कलियुग में भी दर्शन दे सकते हैं।

१४ नवम्बर, १६३४ को मैं शिकोहाबाद जखुशन से हो कर फरुखाबाद गया था। वहाँ मैं १६ साल के एक लड़के से मिला । वह भगवान् शिव का भवत था। कुछ महीनों से वह 'ॐ नमः शिवाय' का जप कर रहा था। । उसे भगवान् के. दर्शन नहीं हुए थे। इससे वह बड़ा दुःखी था। एक दिन उसने निश्चय कर लिया कि किसी प्रकार जीवन समाप्त कर देना चाहिए। कुछ हिंसक उपाय उसने अपनाये । तुरन्त भगवान् शिव दमकते हुए नीले आकाश के मध्य प्रकट हो गये और तुरन्त तिरोहित हो गये । लड़के को एक आवाज सुनायी दी, "बच्चे ! तुझे क्या चाहिए ?" लड़के ने उत्तर दिया- "मैं दोबारा आपका दर्शन करना चाहता है।" किन्तु भगवान् दोबारा प्रकट नहीं हुए। फरुखाबाद में आज भी वह लड़का वत्तंर्तमान है। डेप्युटी कलेक्टर श्री भगवत्प्रसाद जी एक भक्त हैं। उन्होंने ही सरस्वती-भवन में मुझसे उस लड़के को मिलाया था ।

भागवत दो प्रकार के होते हैं। (१) अप्रतीकालम्बी वे हैं जो किसी प्रतीक के बिना ही ईश्वर-पूजा करते हैं और किसी प्रतीक का सहारा नहीं लेते हैं। (२) प्रतीकालम्बी वे हैं जो प्रतीक का सहारा लेते हैं। पहले प्रकार के भागवत हैं देवता आदि, जो भगवान् को सर्वव्यापी के रूप में देखते हैं। सभी देवता एक सौ ऋषि और एक सौ गन्धर्व इस कोटि के अधिकारी हैं। प्रतीका-लम्बी दो प्रकार के होते हैं- (१) देहालम्बी, और (२) प्रतिमा-लम्बी। अपने शरीर में ही भगवान् का दर्शन करने वाले देहा-लम्बी हैं। इस कोटि में गिने जाने वाले ऋषि मध्यम अधिकारी माने जाते हैं। वे आत्मा को शरीर के अन्दर देखते हैं। प्रतिमा-लम्बी वे हैं जो मूत्ति के अन्दर भगवान् को देखते हैं। किसी रूप के अभाव में भगवान् की कल्पना नहीं कर सकते। सर्व-साधारण लोग इस कोटि के होते हैं।

श्रीकृष्ण का शरीर नीला क्यों है ? इसलिए कि नीला रङ्ग भगवान् की सर्वव्यापकता का द्योतक है। नीला रङ्ग व्यापक है। श्री हरि के चार हाथ क्यों हैं? चारों हाथ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के प्रतीक हैं। चार हाथों का अभिप्राय है कि भगवान चारों ओर से सभी को अपनाने वाले हैं। उनका स्वभाव सबको अपनाने का है।

लिङ्ग या भगवान् शिव इस बातके द्योतक हैं कि ब्रह्म निराकार है। वह मानो अंगुलि से सङ्केत कर रहा है कि ब्रह्म एक है, अद्वितीय है।

शक्ति या देवी की उपासना भी ब्रह्म की ही उपासना है। शक्ति या शाक्त दोनों एक हैं। ब्रह्म और देवी अभिन्न हैं। दोनों एकरूप हैं। श्री राम की पूजा में ही श्री सीता जी की पूजा भी निहित है। राधा की पूजा भी कृष्ण को भी पहुँचती है। शैव लोग केवल शिव की पूजा करते हैं, शाक्त केवल देवी की पूजा करते हैं; परन्तु कुछ लोग शिव और पार्वती दोनों की पूजा करते हैं।

जव भगवान् के साथ योग सघ जाता है, तब पलक का लगना और खुलना बन्द हो जाता है; श्वास-निश्वास रुक जाता है; मन के सङ्कल्प-विकल्प समाप्त हो जाते हैं। इसे उन्मनी-अवस्था कहते हैं। राजयोगियों की यह

उच्चतम अवस्था है। आध्यात्मिक ज्ञान के लिए, शाश्वत जीवन के लिए, अनन्त आनन्द और अखण्ड तृप्ति के लिए राम-नाम एक अक्षुण्ण भण्डार है, अनन्त निधि है। राम-नाम परम पवित्र है; पावनों का पावन है। कलियुग में मानव के पापों का वह विनाशक है। भगवत्साक्षात्कार के लिए प्रयत्नशील साधकों के आध्यात्मिक मार्ग में राम-नाम प्रत्येक पग पर आध्यात्मिक पोषण देने वाला आहार है।

भगवान् हरि का चिन्तन कीजिए। वह परमेश्वर हैं; गुरु हैं, 'विश्व के प्रमुख (अभिन्ननिमित्तोपादान) कारण है, संसार-रूपी अन्धकार को मिटाने वाले हैं। वह विश्वव्यापी है। उनका दूसरा कोई मूल नहीं है। वह सारे विश्व के मूल हैं। वह आदि कारण है। जीवमात्र के हृदय में वह अवभासित होते हैं। वह शुद्ध चैतन्य हैं। विश्व के वही ताना-बाना है। वही सत्य हैं, वही शाश्वत हैं, असीम हैं, सर्वोत्कृष्ट हैं और अज्ञात हैं। प्रतिदिन उनका ध्यान कीजिए। उनके गुणों का चिन्तन कीजिए । उनका नाम-गायन कीजिए । आपको अमरत्व और शाश्वत शान्ति प्राप्त होगी।

इस ब्रह्माण्ड के स्रष्टा और सञ्चालक भगवान् हैं। वह घट-घट वासी हैं। वह इस संसार के आधार हैं। इस विश्व के रक्षक वही हैं और संहारक भी वही है। वह आन्तरिक शासक हैं। वह पालक है, त्राता है और मुक्तिदाता है। वह अखण्ड शान्ति और अमरत्व के दाता हैं। ओज, तेज, बल, ऐश्वर्य, यश, आरोग्य, दीर्घायुष्य, पुष्टि, तुष्टि, शान्ति, श्रेय, विद्या और मोक्ष के प्रदाता हैं।

(२) भगवान के गुण

भगवान् कार्य-कारण भाव से दूर है, देशकालातीत हैं और वाणी तथा मन की पहुँच से परे हैं।

फिर भी वह निकटतम से निकटतम है, हृदय के अन्तस्तत में है और प्राणीमात्र के चेतन है।

आत्म-साक्षात्कार के लिए प्रयत्लशील साधकों को उन्हें अपने ही हृदय-गहवर में खोजना चाहिए। इसी गुफा में वह आनन्द-पूर्ण परमात्मा निवास करते हैं।

भगवान् गुप्त प्रेम है, गुप्त शक्ति है, गुप्त सौन्दर्य है, गुप्त प्रकाश हैं। ब्रहम देवताओं का देवता है। ब्रहम ही ज्ञान है। आप भी उस गुप्त परमेश्वर के अन्दर अपना गुप्त जीवन व्यतीत कीजिए।

भगवान् का विश्लेषण करने का अर्थ है भगवान् का निषेध करना। जो पदार्थ व्यक्त है, उसी की परिभाषा अथवा व्याख्या की जा सकती है। उसकी व्याख्या कैसे की जाय जो असीम है, अव्यक्त है और जो प्रत्येक पदार्थ का आदि कारण और मूल स्रोत है? भगवान् की व्याख्या करने जायें तो हम असीम को सीमा में बाँध देंगे और अपने मन की धारणाओं में उसे सीमित कर देंगे। भगवान् स्थूल मन की पहुँच से परे हैं; परन्तु शुद्ध, सूक्ष्म और एकाग्र मन के साथ ध्यान के द्वारा उनका साक्षात्कार किया जा सकता है।

भगवान् सत्य है, प्रेम है, प्रकाशों के प्रकाश हैं। वह शान्ति है, वह ज्ञान है, आनन्द की प्रतिमूत्ति है। भगवान् सत्-चित्-आनन्द है, पूर्ण सत्य है, पूर्ण ज्ञान हैं और पूर्ण आनन्द है। वहः अमरता हैं; अनन्तता है। वह अविनाशी हैं, परम बस्तु है। वह सर्वव्यापी सार या तत्त्व है। भगवान् ही एकमात्र सार वस्तु है, अनन्त सौन्दर्य है।

मेज या घड़े का कोई-न-कोई निर्माता है। इस अदभुत संसार का भी कोई निर्माता होना चाहिए। वह निर्माता स्वयं भगवान् हैं।

भगवान् ने इस विश्व की सृष्टि स्वेच्छा से की और फिर उसमें प्रविष्ट हुए। वह प्रत्येक के मन और हृदय में प्रकट होते हैं। वह देवों में प्रथम हैं। वह विश्वपालक हैं।

दुष्ट मनुष्य कोई अपराध करके अपराधी के रूप में कारागार जाता है। उसे वहाँ किसी भी प्रकार की स्वतन्त्रता नहीं रहती है। वह दास है। कभी कभी राजा भी अपने कैदियों की परि-स्थिति देखने के लिए अपनी खुशी से कारागार जाता है। उसका उद्देश्य यह होता है कि कैदियों का कुछ कल्याण हो और उनका दुःख कम हो। वह पूर्ण स्वतन्त्र है। यदि लोग पूछे कि 'राजा अब कहाँ है ?' तो राजा का सहायक कहेगा "राजा इस वक्त जेल में है।" वह अपराधी भी जेल गया है और राजा भी जेल गया है। लेकिन दोनों में आकाश-पाताल का अन्तर है। इसी प्रकार यह तुच्छ जीव अपनी वासनाओं और कर्म के बल पर इस संसार में जन्म लेता है। वह अज्ञान में रहता है। उसे किसी प्रकार की स्वतन्त्रता नहीं है। वह वासनाओं का गुलाम है। अविद्या का शिकार है। वह राग-द्वेष के प्रवाह में इधर-उधर भटकता और बहता रहता है; जबकि भगवान् इस संसार में अपनी खुशी से अवतार के रूप में प्रकट होते हैं जिससे कि धर्मपरायण साधुजनों और धर्म की रक्षा हो और दुर्जनों को दण्ड दिया जाय। वह सर्वथा स्वतन्त्र हैं। माया पूरी तरह उनके अधीन है। वह सर्वशक्तिमान् और सर्वज्ञ हैं। वह सत्यकाम और सत्यसङ्कल्प हैं।

यह शरीर एक जटिल यन्त्र है। इस शरीर के विभिन्न अङ्गों के काम को प्रख्यात वैद्य लोग भी समझ नहीं पाये । तीस साल पहले तक भी उनको यह मालूम नहीं था कि शरीर के अन्दर विभिन्न अन्तरासर्गी ग्रन्थियों (Endocrine Glands) का क्या काम है। अब वे कहने लगे हैं कि प्रकृति की व्यवस्था में उन ग्रन्थियों का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस शरीर रूपी जटिल यन्त्र के काम और गुण-धर्मों की जाँच-पड़ताल और अध्ययन अभी तक चालू हैं। जब आप इस यन्त्र के चालक को समझ पायेगे तभी इस मानव-यन्त्र को भी पूरी तरह समझ सकेंगे । वह चालक स्वयं अन्तर्यामी भगवान् हैं।

परमेश्वर सत्य हैं। वह सत्य वस्तु हैं। वह सत्यम्, नित्यम्, अविनाशी, निर्विकार, एकरस हैं। वह स्वयम्भू हैं, स्वयंप्रकाश हैं और सर्वदा स्वतन्त्र है। वह अनादि, अनन्त हैं। वह भूत, वर्त्तमान और भविष्य में स्थित हैं। बह चित्, संवित्, विज्ञान और प्रज्ञान है। वह अकारण है, देशकालातीत हैं। वह एक है, अखण्ड हैं और अपरिच्छिन्न है।

भगवान् और 'शान्ति' पर्यायवाची शब्द हैं। जो कामनारहित है, क्रोध-मुक्त है, लोभ-शून्य है और निरहङ्कारी है, भगवान् उसके अति-निकट है।

परमेश्वर स्वयं निष्काम हैं, परिपूर्ण हैं। अपनी लीला के हेतु बह इस संसार की सृष्टि करते हैं। यह उनका स्वभाव है।

: भगवान् चेतन-अचेतन, सजीव-निर्जीव आदि प्रत्येक पदार्थ-मात्र की समष्टि हैं। वह सर्व प्रकार के दोषों और सीमाओं से परे हैं। वह सर्वशक्तिमान् हैं, सर्वज्ञ हैं और सर्वव्यापी हैं। प्राणीमात्र के वह अन्तर्यामी हैं। वह अन्दर से नियन्त्रण करते हैं। परमेश्वर, अमरता, स्वतन्त्रता, पूर्णता, शान्ति, आनन्द, प्रेम - ये सारे पर्यायवाची शब्द हैं।

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम् ।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूः याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतोभ्यः समाभ्यः ।॥

(ईशावास्योपनिषद्)

वह आत्मा सर्वगत, शुद्ध, अशरीरी, अक्षत, स्नायु से रहित, निर्मल, अपापहत, सर्वद्रष्टा, सर्वज्ञ, सर्वोत्कृष्ट और स्वयम्भू है। उसी ने नित्यसिद्ध संवत्सर नामक प्रजापतियों के लिए यथायोग्य रीति से अर्थों (कत्र्तव्यों अथवा पदार्थों) का विभाग किया है।

भगवान् सर्वशक्तिमान् हैं; परन्तु वह इस बात में असमर्थ हैं कि स्वयं अपने अस्तित्व से इनकार कर सकें ।

सामान्य किसान भले ही राजा को न देख सके, परन्तु वह दीवान, कलेक्टर आदि अन्य अधिकारियों को तो रोज देखता है। इस पर से वह यह जान लेता है कि कोई एक राजा भी है जो सारे राज्य पर शासन करता है। इसी प्रकार वह परमात्मा, जो कि सबका मूल है और सबका अन्तः शास्ता है, दिखायी नहीं देता; परन्तु सूर्य, चन्द्र, तारे आदि अनेक सुन्दर पदार्थों और अद्भुत सृष्टि को देख कर उस परमेश्वर के अस्तित्व का अनुमान लगाया जा सकता है। यह सृष्टि उस परमानन्दमय और अकथनीय महिमावान् परमेश्वर का अस्तित्व सिद्ध करती है।

रङ्ग और सुगठन से भौतिक शरीर में सौन्दर्य आता है। शरीर का सौन्दर्य तो विनाशशील है। इसीलिए यह भ्रम है। परन्तु दिव्य सौन्दर्य तो नाशशील नहीं है, सत्य है। परमेश्वर सौन्दर्यों के सौन्दर्य है, सौन्दर्य के मूल-स्रोत हैं। वह सौन्दर्य की मूत्ति हैं। वह स्वयं सौन्दर्य-रूप हैं ।

आपको अपने केशों से अत्यधिक प्रेम है। प्रतिदिन आप कङ्घी करते हैं, तेल लगाते हैं, लेकिन वही बाल यदि दूध के प्याले में पड़ जाय तो उठा कर फेंक देते हैं, उसे छूना भी पसन्द नहीं करते। बालों से जो आपका प्रेम है, वह वास्तव में अपने ऊपर का प्रेम है। वह बाल आपको इसलिए सुन्दर और आकर्षक लगता है कि वह जीवात्मा के उस शरीर से जुड़ा है जिसके पीछे चैतन्य है। दूकान में एक रेशमी साड़ी उतनी सुन्दर और आकर्षक नहीं लगती जितनी की स्त्री के तन पर । वह उस समय इतनी सुन्दर और आकर्षक क्यों लगती है ? इसलिए कि वह एक चैतन्य से सम्बन्धित है। यह इस बात का सङ्घत है कि भगवान् हैं और वह सौन्दर्य की प्रतिमूत्ति हैं।

(३) परमेश्वर का प्रसाद

प्रयत्नपूर्वक या क्रियाओं द्वारा भक्ति प्राप्त नहीं होती है। वह तो परमेश्वर की कृपा से मिलती है। वह कृपा-साध्य है, क्रिया-साध्य नहीं ।

तीन चीजें दुर्लभ हैं और दिव्य कृपा से ही प्राप्त होती हैं। वे हैं- मनुष्यत्व, मुमुक्षुत्व, और महापुरुष या सद्गुरु की सङ्गति । परन्तु, पुण्यशील उच्च आत्माओं को ये सहज प्राप्य हैं। स्वामी विवेकानन्द, गोरखनाथ, भर्तृहरि और नित्यानन्द जी को ये तीनों दुर्लभ वस्तुएँ प्राप्त थीं ।

करोड़ों कल्प तक प्रयत्न करते रहने पर भी भगवान् के दर्शन नहीं होते; परन्तु यदि उनकी कृपा हो जाय तो भगवान् का दर्शन क्षणभर में हो जाता है। इसलिए अपनी सारी इच्छाओं को उनके चरण-कमलों में सर्पित कर दीजिए और हार्दिक भाव से कहिए - "हे भगवन् ! मुझ पर दया करो।"

भगवान् की कृपा से ही आपको साधन-चतुष्टय हस्तगत हो सकेंगे, मार्ग-दर्शन के लिए सद्गुरु प्राप्त होंगे और भोजन, वस्त्र, निवास आदि सुविधाएँ भी मिल सकेंगी। इसलिए भगवान् की उपासना नितान्त आवश्यक है।

परमेश्वर की कृपा सभी प्रकार के भयों को मिटाने वाली औषधि है। उस प्रभु की कृपा मिलने से प्राणी संसार-सागर को पार करने में समर्थ हो जाता है। भगवत्कृपा ही असीम आनन्द के राज्य में प्रवेश करने का अधिकार-पत्र है; अतः आत्म-समर्पण, शुद्ध प्रेम और उपासना के द्वारा भगवत्कृपा प्राप्त कीजिए ।

अग्नि के अन्दर चाहे जितना अशुद्ध पदार्थ डाल दिया जाय, अग्नि उसे शुद्ध कर देती है और उसे अपनी कान्ति और रूप प्रदान करती है; इसी प्रकार भगवान् परम पापी को भी शुद्ध कर उसे अपने समान बना देते हैं। यह उनका स्वभाव है।

परमेश्वर की सन्तान वह है जो उनसे प्रेम करे, एकमात्र उनसे खुश हो, एकमात्र उनकी उपासना करे और उनकी शरण लेता हो। वही सच्चा भागवत है। समस्त सिद्धियाँ उसी के पाँवों में लोटेंगी ।

धनी मनुष्य महल में रहता है, मोटर कार में घूमता है। उपभोग्य सामग्री उसके पास प्रचुर मात्रा में है, फिर भी वह सुखी नहीं। वह अजीर्णता से पीड़ित है; मधुमेह, रक्तचाप आदि बीमारियाँ उसे घेरे ही रहती हैं। उसके मन में चिन्ताएँ, परेशानियाँ और कामनाएँ भरी रहती हैं। वह बड़ा दुर्बल रहता है। पौष्टिक आहार वह खा नहीं सकता। वैद्य उसे अरारोट, मांड और बार्ली के पानी का पथ्य सुझाते हैं। उसके कोई सन्तान नहीं है। मजदूर गरीब है। उसका स्वास्थ्य अच्छा है, उसकी भूख तेज है, उसकी पाचन-शक्ति अच्छी है और उसके बहुत से बाल-बच्चे भी हैं। परन्तु वह बेघर है। उसके पास भोजन का भी अभाव है।

उसे फटे-पुराने चिथड़ों में रहना पड़ता है। प्रकृति की व्यवस्था में सन्तुलन बनाये रखने का यह क्रम है। आप जो-कुछ माँगें, भगवान् वह सब देते हैं। आप सम्पत्ति माँगें तो वह सम्पत्ति देते हैं। आप स्वास्थ्य माँगें तो वह स्वास्थ्य देते हैं। आप मोक्ष माँगें तो वह मोक्ष देते हैं।

मीमांसकों का मत है कि प्रत्येक क्रिया का फल देने वाला ईश्वर नहीं, कर्म है। वे कहते हैं कि भविष्य में स्वयं कर्म ही फलित होते हैं। यह मत अयथार्थ है। प्रत्येक की क्रिया का फल देने वाला तो एक ईश्वर ही है। कर्म तो जड़ है, अचेतन है और क्षणिक है। उसमें कोई सामर्थ्य नहीं है कि वह भविष्य में फल दे सके । मीमांसकों के मत के अनुसार कर्म से अपूर्व नामक एक असाधारण तत्त्व की निष्पत्ति होती है जो कि अतीन्द्रिय है। वह भी नष्ट होने से पहले तक जड़ स्वभाव का ही होता है। किसी-न-किसी चेतन (ईश्वर) के बिना वह कुछ भी नहीं कर सकता। एक ईश्वर ही हैं जो सभी प्रवृत्तियों का फल दे सकते हैं, क्योंकि प्रवृत्तिमात्र का कारण वे ही हैं।

भगवान् अपने भक्तों का हृदय देखते हैं, उनके विचारों या उनकी प्रार्थना के शब्दों को नहीं ।

बच्चा उद्दण्डता करे तो माँ उसे पीटती है। तो क्या बच्चे के प्रति माँ के मन में कोई घृणा है? नहीं। उसे सुधारने और शिक्षा देने के लिए ही वह पीटती है। भगवान् भी इसी तरह दूष्ट कर्म करने वालों को सुधारने और शिक्षा देने के लिए दण्ड देते हैं। भगवान् न तो पक्षपात करते हैं और न वह क्रूर ही हैं।

भगवान् से वैसा प्रेम कीजिए जैसे राधा ने किया। यह उपासना का सर्वोच्च स्वरूप है। राधा के पद-चिह्नों पर चलिए । राधा की तरह कृष्ण को अपने हृदय में सदा अनुभव कीजिए । इससे प्रेम क्रमशः विकसित होता जायगा, अमरत्व प्राप्त होगा और आप ईश्वरमय बन जायेंगे ।

अहल्या कहती है- "हे परम कृपानिधे राम ! आपको मैं

प्रणाम करती है। आपकी उदार कृपा से मुझे अपनी पूर्वावस्था मिली है। एकमात्र आपकी कृपा से ही शिला नारी बन सकी है। आप करुणा और प्रेम के सागर हैं। वह सर्वव्यापी निर्गुण ब्रहम, जो कि प्रत्येक वस्तु के अन्दर और बाहर व्याप्त है, जो विराट् है, शिला को मेरा असली रूप नहीं दे सकता था। मैं आपको प्रणाम करती है। हे प्रभु, मेरे पालक, मेरे रक्षक, आपकी महिमा बढ़े ! आपके नाम की कीत्ति फैले !"

आपको राम के बिना शान्ति नहीं मिलेगी। राम का स्मरण और सङ्कीर्तन करने वाला कितना भाग्यशाली है ! कितना प्रसन्न है! राम-भक्त के पास कोई चिन्ता, कोई परेशानी, भय, दुःख, पीड़ा और क्षोभ नहीं रह सकता है। उसकी शरीरयात्रा की चिन्ता श्रीराम स्वयं करेंगे। जागिए और देखिए; वह कितने दयालु हैं ! उनके चरण-कमलों में लीन हो जाइए ।

रावण ने अपने स्तोत्रों से भगवान् शिव को प्रसन्न किया । पुष्पदन्त ने 'शिवमहिम्नः स्तोत्र' नामक अपने रचे हुए स्तोत्र से शिव को सन्तुष्ट किया। आज भी सारे देश में भक्तगण इस स्तोत्र का गायन करते हैं। इससे पुष्पदन्त ने

समस्त ऐश्वर्य, सिद्धियाँ और मोक्ष प्राप्त किये। शिवस्तोत्र की महिमा अनि-वंचनीय है। आप सभी भगवान् शिव का स्तोत्र क्यों नहीं गाते ? उनकी कृपा और मुक्ति क्यों प्राप्त नहीं करते ? वह कोई अज्ञात भविष्य की बात नहीं है, इसी समय, दूसरे ही क्षण में प्राप्त हो सकती है। शिव जी को बड़ी आसानी से प्रसन्न किया जा सकता है। शिवरात्रि के दिन उपवास कीजिए । पूरा उपवास नहीं कर सकते हैं तो दूध और फल लीजिए। सारी रात जागरण रखिए और उनका स्तोत्र गाइए। आप सबको भगवान् शिव का अनुग्रह प्राप्त हो !

कूर्मपुराण में कहा है- "पानी आग बुझा सकता है; अन्धकार को दूर करने के लिए सूर्य की उपस्थिति पर्याप्त है और कलियुग में देवी का नामोच्चारण अनन्त गुने पापों को दूर कर सकता है।"

ब्रह्मपुराण कहता है : "परा-शक्ति की जो उपासना करते हैं - भले ही नियमित रूप से करें या अनियमित- वे संसार में नहीं फंसते हैं। निःसंशय वे मुक्त पुरुष हैं।"

प्रकृति अनेक प्रकार से आपको आध्यात्मिक युद्ध के लिए तैयार कर रही है। वह आपके मन और शरीर को अपनी अबाध लीला के लिए योग्य साधन बना रही है। इसका अनुभव कीजिए । उस माता के प्रति सदा कृतज्ञ रहिए ।

एकमात्र भगवान् का ही चिन्तन करें। उन परम प्रिय परमेश्वर के सिवा अन्य का चिन्तन न करें। अपने इष्टदेव के सिवा और कुछ भी न देखें। केवल भगवान् से ही प्रेम करें; उन्हीं के लिए जीएँ। सभी नामों में और सभी रूपों में उनकी सेवा करें। वह सुन्दर वृन्दावन, दिव्य और मधुर वृन्दावन, यमुना का वह छलकता जल, उसके तीर के वे कदम्ब के फूल और उपवन सब आपके अन्दर ही हैं। अन्दर देखो। आत्मा का आन्तरिक मधुर सङ्गीत सुनो, भगवान् कृष्ण की रहस्यमयी बाँसुरी सुनो और उस भगवान् के साथ एक हो जाओ।

श्रीकृष्ण की वे आँखें आपको इस संसार के उस पार, अभयत्व और अमरत्व तक पहुँचाने की नाव का काम देंगी। उनकी उन आँखों में अपना चित्त स्थिर करो ।

कृष्ण शब्द की मूल धातु है कृष् अर्थात् खींचना। कृष्ण का अर्थ है सब-कुछ अपनी तरफ खींचने वाला। वह क्या हो सकता है जो सभी को अपनी ओर मोहित कर लेता है ? वह है परि-पूर्ण प्रेम । कृष्ण पूर्ण प्रेम-रूप हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण कितने दयालु हैं ! जो पूतना उन्हें मारने आयी थी, उसके प्रति भी उन्होंने माता का भाव रखा और उसे मुक्ति दे दी ।

भगवान् कृष्ण का नाम कितना मधुर है ! उसमें कितनी शक्ति है ! श्रीकृष्ण का नाम अमृत है। वह संसार-रूपी भयानक समुद्र से पार लगाने वाला जलपोत है। मन-रूपी राक्षस का संहार करने वाला वह अमोघ शस्त्र है।

भगवान् कृष्ण सच्चिदानन्द-विग्रह हैं। वे अनादि, अनन्त हैं। सभी उपादानों के उपादान हैं। वे शरण्य हैं, आश्रय हैं और 'सबके प्रभु हैं ।

श्रीकृष्ण का वर्णन माखन चोर के रूप में किया गया है। यह इसलिए कि गोपियों से उन्हें अपार प्रेम था और इसी कारण उनके घरों में जा कर माखन चुरा कर खाते थे। वास्तव में वे अपने भक्तों के मन में जो कुविचार हैं, उन्हें चुराते हैं और वहाँ दिव्य विचार भर देते हैं। गोपियों को यह बहुत अच्छा लगता था। वे इसी प्रतीक्षा में रहती थीं कि कब कृष्ण आयेंगे और मक्खन खायेंगे। यह मक्खन चुराना तो उनके बाल्यकाल की लीला थी और इससे वे अपनी भक्त गोपियों के हृदय में प्रकाश भर देते थे। वे वास्तव में उनके मन और हृदय को चुरा कर इस संसार को भुला देते थे और अपने चरण कमलों की ओर आकर्षित कर लेते थे तथा उन्हें अखण्ड शान्ति और आनन्द का उपभोग करने देते थे। जब भक्त भगवान् के सामने कहते हैं कि "वासोऽहम्' (मैं आपका दास है), तब वह उसमें से 'दा' अक्षर चुरा लेते हैं और उन्हें 'सोऽहम्' का अनुभव करा देते हैं जो कि वेदान्त का एक महान् सिद्धान्त है अर्थात् उस परमात्मा के साथ एकरूपता का भान करा देते हैं। भगवान् कृष्ण गीता में कहते हैं- 'ददामि बुद्धियोगं तम्'- मैं उन भक्तों को विवेक का योग प्रदान करता है (९-१०) । श्रीकृष्ण कितने दयालु हैं ! उनकी और उनके नाम की जय हो !

भगवान् कृष्ण का सौन्दर्य कौन वर्णन कर सकता है ? उनकी मुख-कान्ति करोड़ों सूर्यों के तेज से भी अधिक है। वे सौन्दयों के भी सौन्दर्य हैं। वे सौन्दर्य की साकार मूत्ति ही हैं।

"जिस प्रकार वृक्ष के मूल में पानी देने से उसकी शाखाएँ और टहनियाँ हरी हो जाती हैं तथा जिस प्रकार प्राण या जीवन-शक्ति को आहार देने से सारी इन्द्रियाँ परिपुष्ट हो जाती हैं, उसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण या अच्युत की उपासना से अन्य सारे देवता सन्तुष्ट हो जाते हैं।"

(भागवत - स्कन्ध-४, अध्याय-२१, श्लोक-१२७)

भगवान् श्रीकृष्ण जब तक इस संसार में रहे, उन्होंने कई प्रकार की लीलाएँ की थीं। उन्होंने अर्जुन का रथ हाँका। वे बड़े कुशल राजनीतिज्ञ थे । वे सङ्गीत-कला में निपुण थे । उनकी सङ्गीत-कला-माधुरी से गोपी आदि सबके हृदय हिलोरें खाते थे। गोकुल में नन्द गोप के यहाँ वे एक ग्वाल थे। अपनी शैश-वावस्था में ही उन्होंने अनेक चमत्कार दिखाये; कालिय नाग का संहार किया और अपनी माँ को विश्वरूप का दर्शन कराया। उन्होंने रास रचायी जिसका रहस्य नारद, गौराङ्ग, राधा और गोपी जैसे भक्तजन ही समझ सकते हैं। उन्होंने योग और वेदान्त के परम सत्यों का उपदेश अर्जुन और उद्धव को दिया; इसीलिए वे षोडश कला वाले पूर्ण अवतार माने गये हैं ।

(४) ईश्वरावतरण का कारण

कार्यब्रह्म (हिरण्यगर्भ) अथवा ब्रह्मा, विष्णु और शिव ही अवतरित होते हैं। कारणब्रह्म (ईश्वर) सीधे अवतार नहीं ग्रहण करते ।

सभी अवतार या तो ब्रह्मा से होते हैं या विष्णु अथवा शिव से; वे सीधे ईश्वर से नहीं हो सकते ।

भक्तों की इच्छा होती है कि अपने इष्टदेव का मनुष्य-रूप में दर्शन करें। अवतार का यही कारण है। निराकार ब्रह्म को अपने भक्तों को सन्तुष्ट करने के लिए मनुष्य का रूप धारण करना पड़ता है। नैष्ठिक भवतों के आँसू पोंछना ही अवतारों की उत्पत्ति का कारण है।

मनुष्य का उद्धार हो, इसलिए भगवान् का अवतार होता है। पृथ्वी पर जब कभी आकस्मिक विपत्तियाँ या अधर्म का राज्य छा जाता है, तब धर्म-संरक्षण के हेतु भगवान् इस धरती पर अवतार ले कर आते हैं। इस भूतल पर आते समय वे मनुष्य का रूप धारण करते हैं। अवतारों के कई प्रकार हैं- पूर्ण-अवतार, अंशअवतार, आवेश-अवतार, लीला-अवतार आदि । यह सब विश्व के रक्षणार्थ उस विराट् पुरुष के ही अवतार हैं।

सर्वशक्तिमान् परमेश्वर कभी-कभी अपने पार्षदों को इस संसार में दूर-दूर तक भक्ति का प्रसार करने तथा आध्यात्मिक मार्ग की प्रेरणा भरने के लिए भेजते हैं। गौराङ्ग महाप्रभु, कबीरदास, रामदास, गोस्वामी तुलसीदास आदि सारे उनके प्रिय और सच्चे पार्षद थे। भगवान् कितने दयालु और प्रेमी हैं ! हे अविश्वासी भौतिकवादी और नास्तिको, आपके आँख और कान कब खुलेंगे ? जागो ! पलभर का भी विलम्ब मत करो ! काल आपको निगलने के लिए मुँह खोले खड़ा है। भगवान् के सामने दोनों हाथ जोड़ कर जाओ, पूर्ण भावना के साथ उनकी शरण लो और कहो - "हे भगवन् दया करो।"

कुछ लोग करते हैं- "हम कृष्ण को भगवान् कैसे मानें ? वह तो साधारण मनुष्य की भाँति पैदा हुए और मरे ! वह निरे मानव थे।" यह गलत धारणा है। यह नासमझ बच्चों की तुतली बोली है। भगवान् कृष्ण अपने समय में केवल लोक-संग्रह-कार्य के लिए (मानवों की मुक्ति या श्रेय के लिए) प्रकट हुए और तिरोधान हो गये । भगवान् कृष्ण स्वयं भगवान् हरि हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है। उनका चिन्मय शरीर था। वह रक्त-माँस का बना हुआ शरीर नहीं था। उनके प्रति पूर्ण विश्वास रखो । वे तुम्हें जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति देंगे। उनके नाम तथा उनके मन्त्र, 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' के प्रति श्रद्धा रखो और कीर्तन करो - "श्री कृष्ण गोविन्द हरे मुरारे, हे नाथ नारायण वासुदेव ।"

कारागार में पड़े हुए बन्दियों का हाल-चाल देखने के लिए कभी-कभी राजा भी जेल जाता है। उन बन्दियों की भलाई के लिए वह ऐसा करता है। वह पूरा स्वतन्त्र है और अपनी ही इच्छा से कारागार में जाता है। इसी प्रकार अवतार भी स्वेच्छा से अस्थि-माँसमय शरीर धारण करते हैं। इसका एकमात्र उद्देश्य यही है कि मानव का उद्धार हो। राजा की तरह वह भी पूर्ण स्वतन्त्र होते हैं और माया पर उनका पूरा अधिकार होता है। जीव जब तक आत्मसाक्षात्कार नहीं कर लेता है, तब तक वह विद्या का दास रहता है।

देव, यक्ष तथा प्रेतात्मा भौतिक शरीर धारण कर सकते हैं। भौतिक रूप धारण करने के तीन प्रकार हैं-पूर्ण भौतिकता, आंशिक भौतिकता जिसमें उसका रूप आँखों से दिखायी नहीं देता है, पर स्पर्श से अनुभव किया जा सकता है और तीसरे प्रकार की आंशिक भौतिकता जिसमें रूप देखा जा सकता है, पर स्पर्श नहीं किया जा सकता।

आपके किसी मित्र की दिवङ्गत आत्मा तथा सूक्ष्म जगत् के निवासी भौतिक शरीर धारण करके आपसे अच्छी तरह हाथ मिला सकते हैं।

यदि कोई देवता आपको दीखे तो आप यह देखेंगे कि उनके चरण भूमि का स्पर्श नहीं कर रहे हैं। उनके नेत्र बिलकुल स्थिर होंगे, पलक झपकती या खुलती हो, सो नहीं ।

(५) मूर्ति-पूजा

मूत्ति (विग्रह), सूर्य, अग्नि, जल, गङ्गा, शालिग्राम, लिङ्ग आदि ये सब भगवान् के प्रतीक हैं। साधकों को एकाग्रता और चित्त-शुद्धि साधने में इनसे सहायता मिलती है। मन को स्थिर करने के लिए कोई-न-कोई प्रतीक अत्यन्त आवश्यक है। ईसाई लोग भी 'क्रास' (शूली) का प्रतीक रखते हैं। स्थूल चित्त के आलम्बन के लिए कोई स्पष्ट प्रतीक चाहिए। सूक्ष्म चित्त को अव्यक्त प्रतीक चाहिए । वेदान्तियों के पास भी अपना चञ्चल मन स्थिर करने के लिए 'ॐ' का प्रतीक रहता ही है। आरम्भ में किसी-न-किसी प्रतीक के बिना धारणा या ध्यान सम्भव नहीं है।

भक्त उस मूत्ति में भगवान् और उनके गुणों का आरोप कर लेता है। उस विग्रह की वह पाद्य, अर्घ्य, आसन, वस्त्र, आचमन, गन्धलेप, पुष्पाञ्जलि, धूप, आरती, नैवेद्य आदि से षोडशोपचार पूजा करता है। इस प्रकार की उपासना से चञ्चल चित्त स्थिर होता है और धीरे-धीरे साधक को भगवान् की निकटता अनुभव होने लगती है। उसका चित्त शुद्ध होता है और अहङ्कार दूर होता जाता है।

छोटी-सी मूत्ति की पूजा करते समय भी पुरुष-सूक्त का पाठ और अनन्त शिर, असङ्ख्य आँखों, अनगिनत हाथों वाले उस विराट् पुरुष का ध्यान करना होता है जो कि ब्रह्माण्ड से भी महान् है तथा प्राणिमात्र के अन्तर्यामी आत्मा या परमात्मा का चिन्तन भी करना होता है।

भक्त या साधु के लिए इस संसार की कोई भी वस्तु जड़ नहीं है। प्रत्येक वस्तु वासुदेव या चैतन्य-युवत है- "वासुदेवः सर्वमिति ।" भवत उस मूत्ति में ही वास्तव में भगवान् को देखता है। नरसी मेहता की उस राजा ने परीक्षा ली। राजा ने कहा- "हे नरसी, यदि तुम भगवान् कृष्ण के सच्चे भवत हो और तुम जो यह कहते हो कि इस मूत्ति में साक्षात् श्रीकृष्ण रहते हैं, इस बात का मैं तभी विश्वास करूंगा जब यह मूत्ति चल पड़े ।" नरसी मेहता ने प्रार्थना की और मूत्ति चल पड़ी । शिवजी के सामने जो नन्दी (बैल) है. उसने सन्त तुलसीदास की प्रार्थना पर आहार ग्रहण किया । मीराबाई के साथ मूत्ति खेलती थी । मीरा के लिए मूत्ति जीवित और चैतन्य थी ।

हिन्दू दर्शन और हिन्दू उपासना-विधि कितनी भव्य है ! यह उपासना केवल मूत्ति की पूजा में ही समाप्त नहीं हो जाती । मूत्ति की पूजा के द्वारा साधक को एक-एक कदम भक्ति की ऊँची अवस्थितिओं में, समाधि में ले जाया जाता है। यद्यपि वह मूत्ति की ही पूजा कर रहा है, फिर भी उसे अपनी मानसिक दृष्टि के आगे सर्वव्यापी भगवान्

को रखना होता है; अपने हृदय में तथा वस्तुमात्र में भगवान् का अस्तित्व अनुभव करना होता है। हिन्दू-शास्त्रों में जो पूजा-विधि और रहस्य बताये गये हैं, वे पूर्ण रूप से वैज्ञानिक और बौद्धिक हैं। जिन्होंने शास्त्रों का गहराई से अध्ययन नहीं किया है और जो सच्चे भक्तों और महान् आत्माओं के सम्पर्क में नहीं आये हैं, वे ही मूर्ति-पूजा का उपहास करते हैं।

आंग्लभाषा जानने वाले कई व्यक्ति महात्मा के दिये हुए प्रसाद को कुछ महत्त्व नहीं देते। यह एक गम्भीर भूल है। प्रसाद बड़ा शुद्धिकारक है। पाश्चात्य जीवन-पद्धति का संस्कार मिलने के कारण उनकी भी भावना पाश्चात्यों की-सी बन गयी और वे भूल गये हैं कि वे भारत के प्राचीन ऋषि-मुनियों की सन्तान हैं। वृन्दावन, अयोध्या, वाराणसी या पण्ढरपुर में सप्ताह-भर रहो। तब उस प्रसाद की महिमा और उसका आश्चर्यजनक प्रभाव मालूम होगा। कई दुःसाध्य रोग उससे दूर होते हैं। कई निष्ठावान् भक्तों को और साधकों को केवल प्रसादमात्र से अद्भुत आध्यात्मिक अनुभव प्राप्त होते हैं। प्रसाद सर्वरोग-विनाशक औषध है। प्रसाद एक आध्यात्मिक रसायन है। प्रसाद भगवान् की कृपा है। प्रसाद सर्वपापहारी है और एक आदर्श मदिरा है। प्रसाद मूर्तिमान् शक्ति है। प्रसाद दिव्यत्व की अभिव्यक्ति है।

भगवान् कृष्ण के भक्तों को यह अनुभव करना चाहिए कि सभी रूप कृष्ण के ही हैं। कोई हत्यारा उनके सामने आ कर उन्हें मारने लगे, तब भी उन्हें अपने मन से यह भाव दूर नहीं करना चाहिए। यदि यह भाव उनके मन में सुदृढ़ रहा तो या तो उस हत्यारे का हृदय परिवर्तित हो जायगा या उसे ही दूसरा कोई समाप्त कर देगा। यदि यह भाव बदलता रहता है तो उन्हें बार-बार प्रयत्न करके इसे स्थिर करना चाहिए ।

सदा अनुभव करो कि भगवान् सामने खड़े हैं। सर्वत्र उनका अस्तित्व पहचानो । जहाँ कहीं जाओ, उनकी उपस्थिति को साथ ले जाओ । उनका सतत स्मरण करो। उन्हीं में जीओ। बहुत-सी पुस्तकें पढ़ने की आवश्यकता नहीं है। गुरु की खोज में भटकने *की आवश्यकता नहीं है। शिर के बल बारह साल खड़े होने की आवश्यकता नहीं है । कुण्डलिनी जाग्रत करने के लिए अश्विनी-मुद्रा में रहने की भी आवश्यकता नहीं है। मैंने साधना का सारतत्त्व बता दिया है। यह सारे वेदों का सार है। इसका अभ्यास करो । मुझ पर विश्वास करो । यह बहुत सरल है। मैं आपको विश्वास दिलाता है कि यह आपको अवश्य मोक्ष देगा ।

हिरण्यगर्भ की उपासना करने वाले ब्रह्मलोक या सत्यलोक को जाते हैं। वहाँ ब्रह्मा के जीवन-काल पर्यन्त प्रतीक्षा करते हैं । जब प्रलय होती है और ब्रह्माण्ड समाप्त हो जाता है, तब वे भी हिरण्यगर्भ के साथ परमात्मा या ब्रह्म में लीन होते हैं। तब जा कर उनके जीव-भाव का नाश होता है। हिरण्यगर्भ की उपासना का अर्थ है ईश्वर के जीव-रूप की उपासना ।

सगुण ब्रह्म के ध्यान से विपत्तियों का निवारण होता है। भक्त के बिन चाहे ही कई सिद्धियाँ उसके चरणों में लोटती हैं। वह उत्तरोत्तर मुक्ति की ओर अग्रसर होता जाता है। यह क्रम-मुक्ति कहलाती है। ज्ञानियों को प्राप्त होने

वाली सद्योमुक्ति से यह भिन्न है। भक्त पहले ब्रह्मलोक जाता है और फिर निगुण ब्रह्म में प्रवेश करता है। यही क्रममुक्ति है। ज्ञानी सीधे निर्गुण ब्रह्म में लीन होता है। यही इनमें अन्तर है।

सगुण उपासकों को अर्थात् परमेश्वर के किसी प्रतीक की उपासना करने वालों को जब तक स्पष्ट चित्र का अन्तर्दर्शन न होने लगे, तब तक खुली आँखों से त्राटक का अभ्यास करना चाहिए। वह चित्र मन और आँखों को बहुत प्रिय लगने वाला होना चाहिए। उसकी पृष्ठभूमि भी सुन्दर होनी चाहिए। यदि आपने सतत ध्यान के अभ्यास से एक प्रकार का मानसिक चित्र दृढ़ करने की साधना की है, तब बीच में उस चित्र को बदलना नहीं चाहिए। उसी चित्र में स्थिर रहिए। अपनी उस मानसिक कल्पना को त्राटक, मानसिक दर्शन और निरन्तर ध्यान के अभ्यास से अधिक शक्तिशाली और सम्पुष्ट कीजिए। इस प्रकार का अभ्यास हो जाने पर उस अभ्यास के बल से मानसिक कल्पना ही साकार हो कर आपके मन में स्पष्ट दीखने लगेगी। कभी आपका मन थक जाय या कुछ परिवर्तन की आवश्यकता प्रतीत हो तो आप मन्त्र को बदल भी सकते हैं; पर भाव को नहीं बदलिए।

यदि बन्द आँखों से भगवान् के चित्र का स्पष्ट अन्तर्दर्शन आप न कर पायें तो चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। अपनी साधना तीव्र और नियमित रखिए। आप सफल होंगे। केवल आवश्यकता है भगवद्-प्रेम की। इसका विकास अधिकाधिक कीजिए। इसे स्वेच्छापूर्वक अविरल गति से प्रवाहित होने दीजिए। मानसिक दर्शन से भी इसकी अधिक आवश्यकता है।

सादे सफेद या रङ्गीन कागज के टुकड़े का कोई मूल्य नहीं है। आप उसे फेंक देते हैं। यदि उस पर छाप लगी हो, राजा या बादशाह की मुहर लगी हो (वह यदि नोट हो) तो आप उसी को अपने बटुवे में सुरक्षित रखते हैं। इसी प्रकार एक पत्थर के टुकड़े की आपके पास कोई कीमत नहीं है। आप उसे फेंक देते हैं। लेकिन पण्ढरपुर में कृष्ण की जब पाषाण-प्रतिमा अथवा देवालयों में कोई मूत्ति आप देखते हैं, तब उसके सामने करबद्ध हो कर अपना शिर झुकाते हैं; क्योंकि उस पत्थर पर भगवान् की छाप लगी है। भक्त उस पत्थर की मूत्ति में अपने इष्टदेव के सारे गुणों का आरोप करता है। प्रारम्भिक साधकों के लिए प्रतीक-पूजा बहुत आवश्यक है।

प्रतिमा या मूत्ति की पूजा से भी भगवान बहुत प्रसन्न होते हैं। वह प्रतिमा पाँच धातुओं से बनायी जाती है। भगवान् का शरीर पाँच तत्त्वों से बनता है। मूत्ति तो मूत्ति ही रह जाती है, लेकिन पूजा भगवान् को पहुँच जाती है। प्रारम्भ में मूत्ति की पूजा करना कोई भूल नहीं है। आपको उस मूत्ति में भगवान् का और उनके गुणों का आरोप करना पड़ता है। आपको चिन्तन करना होगा कि उस मूत्ति में परमात्मा निहित है।

भाव-समाधि में भक्त का हृदय शुद्ध भावना और भक्ति के कारण बहुत उच्च स्तर पर पहुँच जाता है। उसका मन सर्वा-त्मना भगवान् में लीन हो जाता है।

मौन में भगवान् की दिव्य मन्द वाणी को सुनिए। श्रद्धा की शक्ति का अनुसन्धान कीजिए। ईश्वर की सतत कृपा को अनुभव कीजिए। मोक्ष का मार्ग जानिए। हृदय में प्रेम-वेदी अथवा भक्ति-मन्दिर का निर्माण कीजिए। मौन में प्रवेश कीजिए और जीवन की शान्ति का आनन्द लीजिए ।

विश्व को, शरीर को और सब-कुछ भूल जाइए। भगवान् के नाम की महिमा गाइए। उनके नाम में स्थिर रहिए। उनके नाम में लीन हो जाइए । उनका नाम लाखों लोगों को जन्म-मरण के चक्कर से बचाता है; अतः रुचि बढ़ाइए और उनके नाम से प्रेम कीजिए। आप केवल रोटी से जी नहीं सकते, पर भगवान् श्रीकृष्ण के नाम पर जी सकते हैं। उनके नाम में सारी दिव्य शक्तियाँ छिपी हुई हैं। उस नाम के सतत उच्चारण से मन्त्र-चैतन्य को जाग्रत कीजिए और उनके साथ अखण्ड एकता प्राप्त कीजिए ।

ईश्वर न्यायी है। दुष्कर्म करने वालों को वह सीधे मार्ग पर लाने, उन्हें सुधारने और शिक्षा देने के लिए दण्ड देता है। वह नहीं चाहता कि उसकी सन्तान वही भूल दोबारा करे। यह उसकी दया है, उसका प्रेम है।

भगवान् के मार्ग बहुत रहस्यमय हैं। दुःख, पीड़ा, रोग, हानि, निराशा, असफलता आदि प्रच्छन्न रूप से उसके आशीर्वाद हैं। अपनी सन्तान को बलवान् बनाने तथा उन्हें अपने साथ रखने के लिए ही वह इन्हें देता है। मेरे प्यारे राम, उसके मार्ग को सीखो और बुद्धिमान् बनो और उन्नति करो ।

भगवान् किसी को अपने चरणों में स्थान देना चाहते हैं तो उसके धन, पत्नी, पुत्र आदि को छीन लेते हैं। मेरे प्रिय प्रेम ! दुःखी न होना । हढ़ता से कहो- 'हे भगवान्, जैसी तेरी इच्छा' और खुश रहो। उस भगवान् में पूर्ण विश्वास रखो। निष्ठा से कर्म-रत रहो और शेष सब उस ईश्वर पर छोड़ दो ।

किसी भी स्थिति में हताश न होना। तपस्या के द्वारा सब-कुछ मिल सकता है। गीता के नवें अध्याय के ३१वें श्लोक में भगवान् श्रीकृष्ण महान् आश्वासन देते हैं- "कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ।” हे अर्जुन ! यह निश्चित जानो कि मेरा भक्त कभी नष्ट नहीं होता। अतः हमेशा प्रसन्न रहो। जब आप भगवान् कृष्ण के भक्त हैं तो फिर दुःख का स्थान ही कहाँ है ? वे अपने भक्तों के लिए सभी प्रकार के पुरस्कार देते हैं। अपनी साधना में तत्पर रहो। समय का सदुपयोग करो। आपकी ऋजुता और सरलता हो आपकी महान् आध्यात्मिक सम्पत्ति है। उज्ज्वल भविष्य आपकी प्रतीक्षा कर रहा है। चले चलो। परिश्रमपूर्वक साधना करो। अपनी दानशीलता बढ़ाओ। दान से पाप धुलते हैं। चित्त-शुद्धि का वह बड़ा साधन है। "यज्ञो वानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्" (गीता - १८-५) ।

आपने मेरे आध्यात्मिक सुझावों को नहीं माना, इसलिए आपकी आध्यात्मिक प्रगति बहुत दयनीय है। आपको आवश्यकता है हार्दिक प्रयत्न की। आध्यात्मिक साधना में यदि आप समय-निष्ठ और नियमित रहे होते तो भगवत्कृपा की झलक आपको किसी-न-किसी रूप में मिल जाती ।

वृन्दावन में गोपियाँ श्रीकृष्ण की परम भक्त थीं। उन्होंने अपना सर्वस्व भगवान् के चरणों में समर्पित कर दिया था। श्रीकृष्ण चाँदनी रात में वंशी बजाते। जहाँ उनके प्रिय कृष्ण होते, गोपियाँ वहीं दौड़ जातीं। उनका मन कृष्ण में लीन रहता । कृष्ण की वंशी सुनते ही वे सब-कुछ भूल जातीं ।

प्रेम-गली अति-सांकरी अवश्य है। वहाँ एक साथ दो नहीं रह सकते। वहाँ यदि 'मैं' है तो भगवान् नहीं रहते हैं और भगवान् रहें तो 'मैं' नहीं रह सकता।

(६) मानसिक पूजा

स्थूल मूर्त्ति की पुष्प आदि से की जाने वाली पूजा से मानसिक पूजा अधिक शक्तिशाली है। अर्जुन ने सोचा कि भीम किसी प्रकार की पूजा नहीं करते हैं। वे स्वयं भगवान् शिव की बाह्य पूजा करके अति-गर्व अनुभव करते थे। वे बेल-पत्र शिवजी को चढ़ाते थे । लेकिन भीम शिवजी की मानसिक पूजा करते थे। वे मानसिक रूप से संसार-भर के सारे बेल-पत्र चढ़ाया करते थे । शिवजी के पुजारी लोग उनके चढ़ाये हुए उन बेल-पत्रों को शिवजी के मस्तक पर से हटा नहीं पाते थे। अर्जुन ने एक दिन देखा कि लोग बेल-पत्र टोकरियों में भर-भर कर ले जा रहे हैं। उनको लगा कि वे जो बेल-पत्र चढ़ाते हैं, यह सारा वही होगा। उन्होंने पूछा-"भाइओ, यह बेल-पत्र आप लोग कहाँ से ला रहे हैं ?" लोगों ने उत्तर दिया, "अर्जुन, भीम अपनी मानसिक पूजा में जो बेल-पत्र चढ़ाते हैं, वही हैं यह ।" अर्जुन आश्चर्यचकित हो गये। अब उन्हें ज्ञात हुआ कि बाह्य पूजा से मानसिक पूजा अधिक प्रभावशाली है और इसलिए भीम उनसे श्रेष्ठ भक्त हैं।

मानसिक पूजा वही कर सकता है जिसने पुष्प और अन्यान्य सामग्रियों से कुछ काल तक बाह्य पूजा की हो। इस पूजा में भक्त मन से ही सभी भोगों को भेंट करता है। यह पूजा की उत्तम विधि है।

मानसिक पूजा वही कर सकता है जो साधना में कुछ प्रगति कर चुका हो । प्रारम्भिक साधकों को तो फूल, चन्दन और धूप आदि से ही पूजा करनी चाहिए। मानसिक पूजा में अधिक एका-ग्रता होती है। मन से ही भगवान् को हीरे, मोती, सङ्गमरमर आदि से जड़े हुए सिंहासन पर बैठा कर उन्हें आसन दो, अर्घ्यदान करो, मधुपर्क सर्पित करो और विभिन्न पुष्प और वस्त्र चढ़ाओ । धूप-दीप-आरती जलाओ। नानाविध फल. मिष्ठान्न और महानैवेद्य का भोग चढ़ाओ । संसारभर के फल भगवान् के उन चरणों में निवेदन करो ।

मानसिक पूजा में भी लोभ मत करो। एक व्यक्ति ने मानसिक पूजा में केवल एक केला और मुट्ठीभर चना चढ़ाया था। बेचारा कञ्जुस ! मानसिक पूजा में भी उदार नहीं हो सकता । इस संसार में ऐसे तुच्छ कञ्जुस भरे पड़े हैं। अन्त में मन में कहो :

"कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा, बुद्धधात्मना वा प्रकृतेस्वभावात् ।

करोमि यद्यत् सकलं परस्मै, नारायणायेति समर्पयामि ।।

- मैं अपने शरीर से, वाणी से, इन्द्रियों से, बुद्धि से, आत्मा से अथवा स्वभाव से जो कुछ भी करता है, वह सारा उस परम पुरुष नारायण के चरणों में समर्पण करता है", और कहो-'ॐ तत्सत् ब्रह्मार्पणमस्तु ।' इससे आपका चित्त शुद्ध होगा। यह प्रतिफल की आशा को निकाल बाहर करेगा।

पञ्चम अध्याय: भक्तियोग

(१) भक्ति क्या है ?

भक्ति शब्द 'भज' धातु से निष्पन्न होता है जिसका अर्थ है संलग्न होना । यह श्रद्धापूर्ण, शुद्ध और निःस्वार्थ प्रेम है।

भक्ति ही समस्त धार्मिक जीवन का आधार है। भक्ति से वासना और अहङ्कार का नाश होता है और हृदय अति उच्च स्तर तक पहुँचता है। यह ज्ञान का कपाट खोलने की उत्कृष्ट कुञ्जी है। भक्ति की परिसमाप्ति ज्ञान में होती है। भक्ति का आरम्भ होता है दो में और अन्त होता है एक में। जो लड़ते रहते हैं कि 'भक्ति श्रेष्ठ है या ज्ञान', वे दोनों अन्धकार में भटकते हैं। वे वास्तविक तत्त्व को नहीं पहचानते। पराभक्ति और ज्ञान दोनों एक ही हैं।

परमेश्वर के प्रति अनुराग के रूप में की जाने वाली भक्ति परम श्रेय या आत्मसाक्षात्कार तक ले जाती है। अनुराग जितना प्रबल होगा, साक्षात्कार भी उतना ही शीघ्र होगा ।

प्रह्लाद कहते हैं- "हे भगवन् ! मुझे ऐसा वर दीजिए कि सांसारिक लोग जितना प्रेम प्रापञ्चिक विषय-पदार्थों के प्रति रखते हैं, उतना प्रेम मैं आपसे कर सकू। जब कभी मैं आपका चिन्तन करू, तब वह आनन्द मेरे हृदय से दूर न हो।" भक्ति की कितनी सुन्दर व्याख्या है यह ! ये विचार प्रह्लाद के हृदय की गहराइयों से निकले हैं; तीव्र भावना और भक्ति से प्रेरित हैं।

सुन्दर वस्तु से प्रेम करना आसान है। भगवान् सौन्दयों के सौन्दयं हैं। वे समस्त सौन्दयों के मूल स्रोत और अविनाशी सौन्दयं की प्रतिमूत्ति हैं। अतः भगवान् से प्रेम करना सरल है।

पत्नी, पुत्र आदि नाशवान् और सीमित विषयों के प्रति मोह होने से उनके क्षय होने पर मनुष्य को बहुत दुःखी होना पड़ता है। इसके बदले यदि भगवान् से मोह किया जाय तो उससे शाश्वत और असीम आनन्द तथा शान्ति प्राप्त होती है। इसीलिए भक्तजन अविनाशी और अनन्त वस्तु को ही प्राप्त करने की सदा आकांक्षा रखते हैं।

प्रेम के बिना मनुष्य का जीवन खोखला है, उसका जीना व्यर्थ है। प्रेम चैतन्य है, सर्वव्यापी है, महान् शक्ति है और जीवन का सार है; अतः प्रेम दीजिए, बदले में आपको भी प्रेम मिलेगा। इस प्रेम को सेवा, जप, सत्सङ्ग और ध्यान से विकसित कीजिए ।

मानवी प्रेम खोखला है। वह निरा पाशवी आकर्षण है। वह उद्वेग है, शारीरिक प्रेम है, स्वार्थपूर्ण प्रेम है। वह सदा बदलता रहता है। वह सब दम्भ और दिखावा है। पति बेरोजगार हो गया तो पत्नी उसे प्रेम करना छोड़ देती है। उस

पर झुंझलाती रहती है। पत्नी किसी पुरानी बीमारी से अपना सौन्दयं लो बैठे तो पति उससे घृणा करने लगता है। एकमात्र भगवान् में ही आपको सच्चा और शाश्वत प्रेम मिल सकता है। उनका प्रेम बदलना नहीं जानता है।

स्वार्थी मनुष्य अपने शरीर से ही प्रेम करता है। फिर बह अपनी पत्नी, बच्चे और मित्र तक प्रेम का दायरा बढ़ाता है। इससे कुछ व्यापक हुआ तो वह अपनी जाति के लोगों से, अपने जिले के लोगों से प्रेम करने लगता है। फिर अपने ही प्रान्त के लोगों को चाहने लगता है। उसका हृदय और विशाल होता है। फिर वह अपने देश के लोगों से प्रेम करने लगता है। अन्त में जा कर वह अपनी भावना को विश्व-भ्रातृत्व तक विस्तृत कर लेता है। संसार के किसी भी प्रदेश के मनुष्य से वह प्रेम करने लगता है।

भक्ति बीज है। श्रद्धा मूल है। भागवतों की सेवा वृष्टि है। आत्म-समर्पण पुष्प है। परमेश्वर से योग फल है और यह है भक्तियोग का मार्ग !

भक्तियोग में ज्ञान या वेदों का गहरा अध्ययन आवश्यक नहीं है। इसमें तो आवश्यकता है निष्ठावान् और अनुरागी हृदय की । कोई भी भगवान् का नाम जप सकता है और गा सकता है। तुकाराम तो अनपढ़ किसान थे। वे अपना हस्ताक्षर तक करना नहीं जानते थे । केवल भक्ति और श्रीकृष्ण की कृपा से उन्हें सर्वोच्च अन्तर्ज्ञान प्राप्त हुआ था। उनके अभङ्ग बम्बई विश्व-विद्यालय के एम० ए० के विद्यार्थियों के पाठ्य-विषय में हैं। श्री रामकृष्ण परमहंस भी अपढ़ थे। दक्षिणेश्वर में रहते समय काली माता की तथा अर्द्धत गुरु श्री स्वामी तोतापुरी जी की कृपा से उन्हें दिव्य ज्ञान की प्राप्ति हुई। इन दोनों महापुरुषों की जीवनी पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि आत्मज्ञान का मूल स्रोत प्रत्येक के अपने हृदय में ही निहित है और सच्ची भक्ति के द्वारा कोई भी व्यक्ति उस स्रोत का द्वार खोल सकता है।

'मैं भगवान् नारायण या भगवान् शिव या भगवान् कृष्ण की शरण जाता है', यह भबितयोग है। मैं सबकी आत्मा हैं', यह ज्ञानयोग है।

मनुष्य अपने सामाजिक और कौटुम्विक सम्बन्धों में प्रेम, आसक्ति, प्रीति, सराहना, मान, भय आदि अन्यान्य भावनाओं का विकास करते हैं। इससे जीवन का हेतु सिद्ध नहीं हो सकता । वह तभी सम्भव है जब हृदय में भगवान् के प्रति भक्ति का विकास किया जाय । उपयुक्त सारे भावों की पूर्णता भक्ति में है।

कुछ लोगों का कहना है कि उपासना में प्रत्याहार समाविष्ट नहीं होता । उपासक प्रयत्नपूर्वक अपने को परमेश्वर के प्रेम में डुबो देना चाहता है। वह भगवान् के चरण कमलों में या उनके मनोहर मुख पर अपना मन स्थिर करने का प्रयत्न करता है। इसके अनुषङ्ग में प्रत्याहार भी सिद्ध होता चलता है। राजयोगी प्रत्या-हार का प्रयत्नपूर्वक अभ्यास करता है। ज्ञानयोगी प्रत्याहार का अभ्यास नहीं करता है; परन्तु प्रत्येक पदार्थ में छिपी हुई आत्मा के साथ अपनी आत्मा को एक-रूप देखने का प्रयत्न करता है। वेदान्तोबत निदिध्यासन के द्वारा वह उस आवरण

को हटा देना : चाहता है जो प्रत्येक पदार्थ में आत्मा पर पड़ा हुआ है। वह बाहरी नाम-रूपों का निषेध कर सर्वान्तर्यामी आत्मा के साथ एकत्व स्थापित करने का प्रयास करता है।

एक ऋषि कहता है- "यह संसार आनन्द से निकला है, आनन्द में स्थित है और आनन्द में ही लीन होने वाला है।" एक भक्त कहता है- 'सारा विश्व प्रेम से निकला है, प्रेम में स्थित हैं "और प्रेम में ही लीन होने वाला है।" आनन्द में प्रेम का समावेश है। ऋषि अपनी आत्मा से प्रेम करता है। वह अपनी आत्मा का भक्त है। प्रेम में आनन्द छिपा हुआ है। भक्त अपने इष्टदेव से प्रेम करता है और आनन्द-विभोर हो नाच उठता है।

दर्शन की सीढ़ी में द्वैत और विशिष्टाद्वत भिन्न-भिन्न स्तर हैं। उच्चतम शिखर है अद्वत । द्वत और विशिष्टाद्वत सिद्धान्त के अनुयायी भी अपने-अपने दृष्टिकोण से बिलकुल सही हैं। कुछ $ अधिक साधना और ज्ञान के द्वारा वे शुद्ध अद्वैत की अनुभूति प्राप्त कर सकते हैं।

भक्तियोग में तीन बातें हैं- प्रेमी, प्रिय और प्रेम । जब प्रेमी को पता चलता है कि वह और उसका प्रिय एक है तो वह भक्ति समाप्त हो जाती है और ज्ञान का उदय होता है। द्वत. मिट जाता है । अब कौन किससे प्रेम करे ?

अद्वतियों के अनुसार इस विचार का सतत चिन्तन ही भक्ति है कि 'मैं वह है' अथवा मैं ब्रह्म है।'

भक्त कहता है- "पहले परमेश्वर का ज्ञान प्राप्त करो। उसके बाद ही उसके प्रति प्रेम या भक्ति कर पाओगे।" ज्ञानी दूसरे शब्दों में कहेगा- "ज्ञान ही भवित का अन्तिम फल है।"

शुद्ध ज्ञान केवल प्रेम है। शुद्ध प्रेम केवल ज्ञान है।

जिस प्रकार भोजन से शरीर की पुष्टि, तुष्टि और क्षुधातृप्ति होती है, उसी प्रकार भक्ति से एक साथ ही ज्ञान और वैराग्य दोनों पैदा होते हैं ।

जिस प्रकार अग्नि लकड़ी को जला देनी है, उसी तरह भक्ति अहङ्कार और वासनाओं को भस्म कर देती है। भक्त मुक्ति तक की चिन्ता नहीं करते हैं। वे भगवच्चर्या करना, गरीबों और रोगियों की सुश्रूषा करना, भगवान् के गुणों और महिमाओं को गाना, भगवान् को प्रणाम करना, उनके लिए सब-कुछ त्याग देना, उन्हीं को अपना अन्तिम ध्येय स्वीकार करना और उनके चरणों में निःशेष आत्मसमर्पण कर देना पसन्द करते हैं। मुक्ति तो बिना माँगे उनके पास आ जाती है। मोक्ष तो उनके हाथ की वस्तु है। ऋद्धि, सिद्धि आदि भगवान् की विभूतियाँ भी बिन चाहे ही भक्तों की चरण-दासियाँ बन जाती हैं।

परमेश्वर में अव्यभिचारिणी भक्ति और भागवतों की सङ्गति परमानन्द के साधन हैं।

पूजा भगवान् की उपासना है। यह उपासना भक्त को भगवान् के पास बैठने अथवा उनका सान्निध्य प्राप्त करने में 'सहायता करती है। इससे चित्त शुद्ध और मन स्थिर होता है। यह भक्त के मन में शुद्ध भावों और भगवत्प्रेम को स्थापित करती है। यह धीरे-धीरे मनुष्य को देवत्व में परिणत करती है।

भगवान् कृष्ण के नाम में घनिष्ठ प्रेम रखो। आपकी सारी विपत्तियाँ समाप्त हो जायेंगी। महान् विपत्ति में पड़ने पर द्रौपदी ने भगवन्नाम की ही शरण ली थी। भगवान् ने उसकी रक्षा की।

भगवान् के प्रति श्रद्धा या भक्ति से ही मोक्ष प्राप्त हो सकता है। अपने हृदय में स्वर्ण-मन्दिर बनाओ। भगवान् कृष्ण हार्दिक भक्ति ही चाहते हैं।

ईश्वर प्रेम है। प्रम बचाता है, एकता लाता है और उन्नत करता है।

प्रम की अभिव्यक्ति उपहार के द्वारा और आनन्द की अभि-व्यक्ति गायन द्वारा होती है।

प्रम से बढ़ कर सद्गुण दूसरा नहीं है। प्रेम से बढ़ कर कोई निधि नहीं है। प्रम से बढ़ कर कोई धर्म नहीं है; क्योंकि प्रम ही भगवान् है और भगवान् ही प्रम। प्रेम शुद्धि-कारक है। प्रम वचाता है और नम्र बनाता है। इसलिए, हे मेरे प्रम । अपने हृदय में प्रम की ज्योति जगाओ ।

प्रेम से बढ़ कर कोई दूसरी शक्ति नहीं है। इस प्रम के ही कारण निराकार ब्रहम अपने भक्तों को सन्तोष देने के लिए चतुर्भुज नारायण का रूप लेता है। अपने भक्तों के पीछे अन्न-जल ले कर जङ्गलों तक में जाता है। भगवान् बुद्ध, प्रभु ईसा, एकनाथ आदि अनेक सन्तों को जनता के बीच शास्त्र-सार का प्रचार करने की प्ररणा देने वाला यही प्रमथा। भक्त के हाथ में यह प्रम जादू की छड़ी है। वे इसी के चमत्कार से सारे विश्व को अपनी ओर मोहित कर लेते हैं। जो शुद्ध प्रेम पा चुका है, वह तीनों लोकों का सम्राट् है।

भगवान् के प्रति शुद्ध और घनिष्ठ प्यार का नाम ही प्रम है। एकनिष्ठ और अनन्य प्रीति ही प्रम है। प्रेम के कारण भक्त अपने भगवान् का साक्षात् दर्शन करता है। भक्ति की पराकाष्ठा प्रेम है। प्रेम दिव्यामृत है। प्रम से सारे दुःख और पीड़ाएँ दूर होतो हैं और वह भक्त को अमर, आनन्दयुक्त और शान्त करता है। प्रम के स्वरूप का वर्णन करना बहुत कठिन है। प्रत्येक व्यक्ति अपने अनुभव से ही उसे जान सकता है। उसको विकसित करने के लिए जप, स्मरण, कीर्तन, सत्सङ्ग, प्रार्थना, भक्तों की सेवा, रामायण, भागवत इत्यादि ग्रन्थों का पारायण आदि करना चाहिए।

धर्म में प्रम एक विज्ञान है। उसका आशय है कि भक्त अपने इष्टदेव के प्रति अपना हृदय खोल कर रख देता है। भक्त के अपने मल और विक्षेप-रहित मन की सहज अभिव्यक्ति ही प्रेम है। प्रेम में आनन्द है। प्रम. एक अद्भुत दिव्य शक्ति है जिससे मनुष्य में दिव्यत्व आ जाता है। प्रेम के ही कारण भगवान् से एकरूपता सम्भव हो सकती है।

प्रेम की प्रवृत्ति स्वाभाविक है और वह प्रत्येक मनुष्य के हृदय में निहित है। वास्तव में कोई व्यक्ति ऐसा नहीं है जिसमें प्रेम के प्रति सहज आकर्षण न हो और वह सच्चे प्रम से मुग्ध न होता हो। आपको भी इस प्रम की सहज भावना का पर्याप्त स्तर तक विकास करना होगा, प्रत्येक प्रकार का स्वार्थ दूर करके उसे परिशुद्ध करना और विश्व-व्यापक बनाना होगा।

आजके संसार की माँग प्रेम-सन्देश की है। आप अपने हृदय का दीपक जलाइए । सबसे प्रेम कीजिए। अपने प्रम में प्राणिमात्र का समावेश कर लीजिए। शुद्ध प्रम के द्वारा ही राष्ट्रों की एकता सम्भव है। परस्पर प्रेम के द्वारा ही विश्व-युद्ध रोका जा सकता है। संयुक्त राष्ट्र-सङ्घ अधिक सफल न हो पायगा। प्रेम सबका हृदय जोड़ने का चमत्कारजनक दिव्य स्नेह है। प्रेम बड़ा प्रभावशाली मलहम है। उसे लगाइए और सभी पीड़ाओं को दूर कीजिए। कपट, लोभ, कुटिलता और स्वार्थ छोड़िए । विषैले गैस आदि का प्रयोग करके मनुष्यों के प्राण ले लेना बहुत ही क्रूर कृत्य है। यह एक महापाप है। जो वैज्ञा-निक प्रयोगशालाओं में बैठ कर ऐसे गैस तैयार करते हैं, उन सबको भगवान् दण्ड देंगे । न्याय के दिन (कयामत) को न भूलो । सत्ता, राज्य, सम्पत्ति आदि के पीछे दौड़ने वाले मरणधर्मा प्राणियो ! उस दिन भगवान् के सामने क्या कहोगे ? अपने अन्तःकरण को स्वच्छ करो, हृदय को शुद्ध करो। तब भगवान् के राज्य में प्रवेश कर पाओगे।

विश्व-प्रम को विकसित करो। इससे सभी मनुष्यों और प्राणियों के साथ शान्तिपूर्वक रहने में सहायता मिलेगी । प्रेम और शान्ति को अलग नहीं किया जा सकता। जहाँ प्रम है, वहाँ शान्ति है।

आपका हृदय ऐसा हो कि भगवान् के नाम पर आनन्दाश्रु बह पड़ें। आपके हृदय में भगवान् के प्रति प्रम की तरङ्ग निरन्तर प्रवाहित होती रहें। दिव्य आलिङ्गन की उष्णता का सदा अनुभव करो । ईश्वरीय प्रेम की धूप का सेवन करो । शाश्वतं आनन्द का आस्वादन करो। दिव्य प्रम का अमृत पान करो ।

क्या आप वास्तव में ईश्वर की अभिलाषा रखते हैं ? क्या आपमें उनके दर्शन की तृष्णा सचमुच में है? क्या आपमें सच्ची आध्यात्मिक क्षुधा है ? आप भक्ति के विषय में भाषण दे सकते हैं और भक्तियोग के बारे में कई ग्रन्थ लिख सकते हैं; फिर भी यह सम्भव है कि आपमें भक्ति का एक कण भी न हो। जिसे भगवान् के दर्शनों की प्यास है, वह अपने में प्रेम विकसित करेगा। वह उनके सामने अपना हृदय उडेल देगा । भगवान् तो माँग और पूत्ति का एक विषय है। सच्ची माँग है तो उसकी पूत्ति होगी ही। भगवान् अवश्यमेव उसे दर्शन देंगे।

भक्ति-मार्ग में पांच बातें अनिवार्य रूप से आवश्यक हैं (१) भक्ति निष्काम हो, (२) वह अव्यभिचारिणी (अनन्य) हो, (३) वह सतत हो, (४) साधक पूर्ण सदाचारी हो, और (५) साधक में साधना के प्रति बहुत उत्कटता और सच्ची आस्था हो। तब शीघ्र साक्षात्कार सम्भव होगा ।

मानचित्र या दिशा-सूचक यन्त्र के बिना जलपोत का सागर में तेजी से चलाना बहुत कठिन है, इसी प्रकार सुव्यवस्थित और सदाचारमय जीवन और सच्ची भगवद्भक्ति के बिना इस संसार-सागर को सुरक्षित रूप से पार करना भी अति-कठित है।

प्रेम की भाषा आँसुओं से लिखी जाती है। अपने हृदय-मन्दिर में पश्चात्ताप, विरह और प्रेम के अनुओं की सतत धारा से उस परमेश्वर के चरण कमलों का प्रक्षालन कीजिए। तब आप अपने इष्टदेव से मिल कर उनके सान्निध्य का आनन्द लूट सकेंगे।

चौथाई क्षण अर्थात् पलक झपकने जितना समय भी यदि मनुष्य का मन उस परमेश्वर के चरण कमलों से विलगः न हो अर्थात् उसकी भक्ति तैल-धारा के समान सतत अखण्ड चले तो तीनों लोकों की सम्पत्ति उसके अधीन हो जाती है। भगवान् निश्चित रूप से उसको इसका आश्वासन देते हैं। ऐसे भक्तों के पीछे-पीछे भगवान् सर्वत्र जाते हैं। ऐसे भक्त की चरण-धूलि को अपने माथे पर तिलक के समान धारण करते हैं।

सुदामा अपने मित्र कृष्ण को देखने आये। श्रीकृष्ण रुक्मिणी के साथ बातचीत कर रहे थे। सुदामा जीर्ण-शीर्ण वस्त्रों में थे, इसलिए कृष्ण के महल में प्रवेश करने में सङ्कोच कर रहे थे। द्वारपाल ने कृष्ण को सूचना दी : "हे स्वामी, सुदामा नामक एक गरीब ब्राह्मण, जो फटे कपड़े पहने हुए है. महल के द्वार पर आपकी प्रतीक्षा में खड़ा है।" श्रीकृष्ण ने द्वारपाल को आगे एक शब्द भी बोलने नहीं दिया। 'सुदामा' शब्द ही पर्याप्त था। श्रीकृष्ण 'ओ मेरे प्यारे मित्र, सुदामा !' पुकारते अन्तःपुर से नङ्ग पाँव भागे हुए आये। श्रीकृष्ण रुक्मिणी से एक शब्द कहे बिना हो एकदम चले गये। इससे रुक्मिणी को थोड़ा-सा क्रोध आया । थोड़ी ही देर में श्रीकृष्ण सुदामा को साथ लिये हुए 'वहाँ आं पहुँचे। उन्होंने भांप लिया कि रुक्मिणी कुछ उदास हैं। कारण' वह समझ गये। उनसे कहा- "प्रिय रुक्मिणी, मुझे क्षमा करो । मैं भक्तों का दास है। मैं अपने से भी अधिक उनसे प्रेम करता हूँ।" श्रीकृष्ण ने सुदामा को अपने ही आसन पर बैठाया और उनको वह कच्चे चिउड़े की तुच्छ भेंट देने में सङ्घङ्कोच करते देखें उनके हाथ से गठड़ी छीन ली और अत्यन्त आनन्द के साथ चिउड़ा खाने लगे। वह प्रम-विभोर हो रुक्मिणी से बोले - "रुक्मिणी, मैंने पहले कभी भी इतनी स्वादिष्ट चीज नहीं खायी थी।"

एक-दो घण्टे तक जप या ध्यान करने का सङ्कल्प जब आप कर लें तो आपको चाहिए कि उसे भावपूर्वक धीरे-धीरे करें। जैसे कोई ठेकेदार खराब माल-मसाला लगा कर मकान बाँधने में शीघ्रता करता है और मालिक को ठगता है, उस प्रकार मन में कोई हलचल रख कर शीघ्रता में नहीं करें। आप भगवान् को ठग नहीं सकते । इससे आप स्वयं को ही ठगेंगे। जप या ध्यान का पूरा लाभ आपको नहीं मिलेगा ।

भगवान् की उपासना में नैरन्तयं का नाम ही निष्ठा है। भक्त भगवान् की उपासना में लीन हो जाता है। जब भक्त अपनी साधना में प्रगति करने लगता है और ध्यान में गहरा उतरने लगता है, तब भगवान् के प्रति उसके मन में आसक्ति होती है।

भगवान् का गुणगान कीजिए, उनका नाम गाइए, उनका स्मरण कीजिए तथा उनके चरित्र का ध्यान कीजिए। यही भक्तियोग का सार है।

जब आपमें भगवान् के प्रति पूर्ण प्रम और भक्ति हो जायगी तब सारा विश्व आपके अधीन हो जायगा।

(२) भक्ति के विभिन्न प्रकार

यदि भक्त कुछ समय के लिए भगवान् से प्रेम करे और फिर अपने स्त्री, पुत्र, धन, घर, पशु, सम्पत्ति आदि से भी प्रेम करे तो वह भक्ति व्यभिचारिणी भक्ति कहलायेगी। इससे भक्त का प्रम बँट जाता है। वह मन का एक भाग भगवान् के लिए और बचा हुआ भाग अपने परिवार और सम्पत्ति के लिए देता है।

अव्यभिचारिणी भक्ति क्या है? वह है अविभवत प्रम । भक्त भगवान् से ही प्रम करता है। उसका चित निरन्तर एक-मात्र भगवान् के चरण कमलों में ही स्थिर रहता है। सम्पूर्ण चित्त, हृदय और आत्मा भगवान् के लिए ही समर्पित किये जाते हैं और यह है अव्यभिचारिणी भक्ति ।

धन की प्राप्ति के लिए, सन्तानेच्छा से, रोग-मुक्ति के हेतु अथवा किसी-न-किसी कामना से की जाने वाली भक्ति सकाम्य भक्ति या सहेतुकी भक्ति अथवा गौण भक्ति कहलाती है।

भक्ति के बदले में कुछ भी न चाहते हुए केवल प्रम के लिए ही प्रेम किया जाय, भगवान् की भक्ति के लिए ही भक्ति की जाय तो वह निष्काम्य भक्ति या अहेतुकी भवित या रागात्मिका या मुख्य भक्ति कहलाती है।

जब भवत भगवान् हरि के प्रति भक्ति रखता है, शिव, देवी, राम, कृष्ण आदि किसी से भी भवित रखता है और मन में सोचता है कि हरि ही शिव भी हैं, देवी भी हैं अथवा कृष्ण भी हैं-तो वह भक्ति समरस भक्ति कहलाती है। उसकी दृष्टि समहष्टि है। यह भी भक्ति की उन्नत अवस्था है। उसकी दृष्टि में राम और कृष्ण में, शिव और हरि में, कृष्ण और देवी में कोई भेद नहीं है। वह जानता और अनुभव करता है कि राधा, सीता और दुर्गा, कृष्ण, राम और शिव की अभिन्न शक्तियाँ हैं।

आपकी पत्नी युवती है, सुन्दर है, तब उसके घुंघराले बाल, गुलाबी गाल, सुन्दर नाक, चमकीली त्वचा और चांदी से दाँतों की आप प्रशंसा करते रहते हैं। यदि उसे कोई लम्बी बीमारी हो जाय और उसके परिणामस्वरूप उसका सौन्दर्य जाता रहे तो आपके लिए वहाँ कोई आकर्षण नहीं रहता। तब आप दूसरा विवाह कर लेंगे। यदि आप अपनी पत्नी से आत्म-भाव से प्रेम करते हैं और उसके विषय में यदि आपका ज्ञान विशाल होता है कि आप और आपकी पत्नी में एक ही आत्मा विद्यमान है, तो उसके प्रति आपका प्रेमं शुद्ध, निःस्वार्थी, शाश्वत, अटूट और अपरिवर्तनीय होगा। जैसे आपको पुराना गन्ना अधिक पसन्द आता है, वैसे ही जैसे-जैसे आपकी पत्नी वृद्ध होती

जाती है, वैसे-वैसे आप उससे अधिकाधिक प्रेम करते जाते हैं; क्योंकि ज्ञान से आपमें उसके प्रति आत्मभाव निर्माण होता है। स्मरण रहे किं एकमात्र ज्ञान ही प्रेम को घनिष्ठ और शुद्ध करता है।

साधक आरम्भ में मूत्ति-पूजा करता है तब भगवान् को सर्वत्र देखने लगता है और अपनी परा-भक्ति विकसित करता है।

विधि-भक्ति से वह रागात्मिका-भक्ति या प्रमा-भक्ति में जाता है। सारे विश्व को ही वह भगवान् मानने लगता है। भले-बुरे की, उचित-अनुचित की, दुष्टता आदि की सभी भावनाएँ समाप्त हो जाती हैं। वह दुर्जनों में, चींटी में, कुत्ते में, वृक्ष में, डाकू में, सर्प में, बिच्छु में, लकड़ी के टुकड़े में, प्रस्तरखण्ड में, सूर्य में, चन्द्र, तारे, अग्नि, जल, पृथ्वी आदि प्रत्येक में भगवान् का दर्शन करता है। उसके दर्शन या अनुभव का वर्णन नहीं किया जा सकता। ऐसे परम भक्त धन्य हैं। वे इस धरती पर साक्षात् परमेश्वर के प्रतिरूप हैं। वे दूसरों को संसार के दलदल से उठाने तथा उन्हें मृत्यु के पंजे से बचाने के लिए ही जीवन यापन करते हैं।

भागवत धर्म क्या है ? भागवत धर्म वह है जो आपको भगवान् के पास ले जाये, जो आपको अपनी वासनाओं, अहङ्कारों, राग-द्वेष आदि को समाप्त करने योग्य बनाये। भागवत धर्म वंह है जो आपको जन्म-मरण के चक्कर से छुटकारा दिलाये, आपको निर्भय बनाये, वासना-रहित करे, 'अहं' से मुक्त करे। भागवत धर्म वह है जो आपके हृदय में कृष्ण के प्रति भक्ति-भाव भर दे, उस परम तत्त्व को प्राप्त करने की सामर्थ्य दे और सर्वत्र भगवान् के दर्शन कराये ।

जो मनुष्य सर्वत्र नारायण का ही दर्शन करे, सभी पदार्थों में एकता का अनुभव करे, सभी वस्तुओं को नारायण में देखे, सर्वत्र उन्हीं की उपस्थिति का अनुभव करे, प्रत्येक पदार्थ में अन्तनिहित एकता के दर्शन के कारण जिसके मन में अनेकता समाप्त हो गयी है; जिसने पूर्णता प्राप्त कर ली है; वह अवश्य ही पूर्ण शान्ति और आनन्द का उपभोग करेगा। वह पूर्ण सिद्ध पुरुष और जीवन्मुक्त है।

ये वृक्ष, अग्नि, पृथ्वी, जल, आकाश, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, पशु, पक्षी, पर्वत, सागर, नदी, मानव आदि सारे उस भगवान् के ही शरीर हैं। उनमें किसी प्रकार का भेद किये बिना उन सबको प्रणाम करना चाहिए। उन्हें साक्षात् भगवान् ही समझना चाहिए। तभी आपमें समदृष्टि और विश्व-प्रेम का निर्माण हो सकेगा, तभी आपको शान्ति प्राप्त हो सकेगी और तभी धरती पर स्वर्ग का अवतरण होगा। सन्त तुलसीदास जी कहते हैं-

"सियाराम मय सब जग जानी । करहुँ प्रणाम जोरि जुग पानी ।"

यही विराट् की उपासना है। प्रह्लाद ने अपनी आत्मा की पूजा साक्षात् भगवान् के रूप में की। यह अभेद भक्ति कहलाती है। भक्ति की अन्तिम अवस्था यही है।

(३) भक्ति में भाव

भक्तियोग में पाँच प्रकार के भाव हैं- शान्तभाव, मधुरभाव, वात्सल्यभाव, दास्यभाव और सख्यभाव। मधुरभाव को कान्त-भाव भी कहते हैं। सख्यभाव भी मधुरभाव की ही कोटि में आता है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी मनोवृत्ति के अनुकूल कोई भी भाव अपना सकता है और भक्ति की पराकाष्ठा तक पहुँच सकता है।

संन्यासी भवतों में शान्तभाव होता है। शान्तभावयुक्त भक्त भावुक नहीं होते। वे अधिक भावुकता का प्रदर्शन नहीं करते । उनका हृदय यद्यपि प्रगाढ़ भक्ति से भरा होता है, तब भी वे नाच नहीं सकते, रो नहीं सकते। महर्षि अरविन्द इस शान्तभाव को पसन्द करते थे। उनकी दृष्टि में नाचना और रोना एक प्रकार का दौर्बल्य है।

मधुरभाव में भवत प्रेमी और प्रेमिका के भावों का आदर करता है। वह अपने को राम या कृष्ण की प्रिया मान लेता है। कई मुस्लिम सूफियों में भी इस प्रकार का भाव देखने में आता है। वृन्दावन, मथुरा और नदिया में मधुरभाव बाले असङ्ख्य भक्त दिखायी देते हैं। वे अपनी वेष-भूषा स्त्रियों जैसी रखते हैं और बिलकुल स्त्रियों की तरह चलते, फिरते और बोल भी लेते हैं। वे तब तक नाचते रहेंगे जब तक मूर्च्छावस्था में पहुँच न जायें और थक कर गिर न जायें।

सखीभाव में भक्त अपने को सीता या राधा की सहेली मान लेता है।

वात्सल्यभाव में भक्त भगवान् को दश साल का अपना बालक मान लेता है। इस भाव की एक सुन्दर विशेषता यह है कि भक्त चूंकि भगवान् का पिता बन जाता है, इसलिए उसके मन में किसी प्रकार का भय नहीं रहता है और न कोई स्वार्थ-प्रेरित कामना ही रह जाती है। वस्तुतः अपने अल्पवयस्क पुत्र से कोई माँग ही क्या सकता है! वल्लभाचार्य के अनुयायी इस वात्सल्यभाव के होते हैं।

दास्यभाव में व्यक्ति अपने को एक सेवक और भगवान् को अपना स्वामी मानता है। हनुमान् का यही भाव था । अयोध्या में अधिकतर लोग इसी भाव के मिलेंगे। उनके नाम भी रामदास, सीतारामदास आदि होते हैं।

सख्यभाव में भक्त भगवान् को अपने मित्र के रूप में मानता है। इस भाव के लिए शुद्धता, साहस, ज्ञान और दृढ़ता की आवश्यकता होती है। सामान्य मनुष्य के लिए इस भाव को अपनाना कठिन लगता है। भक्ति विकसित और परिपक्व होने पर यह भाव स्वतः आता है। अजुन का यही भाव था। उपास्य और उपासक दोनों के बीच इस भाव में समानता होती है। सख्यभाव वेदान्त-मार्ग के ध्यान का एक सौम्य प्रकार है। इससे एकता का अनुभव करने में सहायता मिलती है। तब भक्त कहता है- 'गोपालोऽहम्' - 'मैं गोपाल है।'

(४) परा-भक्ति

इस जीवन में ही भगवान् का दर्शन किया जा सकता है। अनेक ने किया है। आप भी कर सकते हैं। यह एक असन्दिग्ध सत्य है कि एक ने जो अनुभव किया है, उसे दूसरे भी कर सकते हैं। भगवान् से कोई वरदान मत मांगो। वरदान माँगने में सच्ची भक्ति नहीं होती है। वहाँ प्रतिदान की अपेक्षा होती है। वह सौदेबाजी है। भगवान् के साथ सौदेबाजी नहीं करनी चाहिए। उनसे तो केवल प्रेम के लिए ही प्रेम करना चाहिए । पूर्ण निष्काम और अनन्य भक्ति कीजिए। मुक्ति की भी माँग न कीजिए। मुक्ति तो भक्ति-रूपी रानी की चरण-दासी है। वह स्वयं ही आती है।

संरक्षक देवता का दर्शन-मात्र पर्याप्त नहीं है। आत्मज्ञान भी आवश्यक है। नामदेव को कई बार भगवान् के दर्शन हो चुके थे; फिर भी वे पहुँचे हुए योगी नहीं थे। एक बार भक्त-मण्डली में सन्त गोरा ने, जो कि एक कुम्हार था, नामदेव के शिर को ठोक कर कहा, "यह अभी कच्चा है, अघपका है।" नामदेव मल्लिकाजु 'न-मन्दिर में एक वेदान्ती विशोबा खेसर के पास कैवल्य- रहस्य को जानने के लिए गये । वहाँ विशोबा खेसर विचित्र मुद्रा में पड़े थे। वे ध्यानावस्था में थे। वे लेटे थे और उनके पैर शिवलिङ्ग पर फैले हुए थे। नामदेव ने कहा "पूज्य स्वामी जी, शिवलिङ्ग पर पाँव फैलाये क्यों सोये हैं ?" खेसर ने उत्तर दिया, "कृपापूर्वक मेरे पैर उठा कर उस स्थान पर रख दो जहाँ शिवलिङ्ग न हो।" नामदेव उनके पैर को उठा कर जहाँ कहीं भी रखने का प्रयत्न करते, वहाँ शिवलिङ्ग हो शिवलिङ्ग दृष्टि-गोचर होने लगते। इससे नामदेव को बड़ा आश्चर्य हुआ और तब उन्होंने खेसर के आगे दण्डवत् प्रणाम कर प्रार्थना की कि उन्हें वे आत्मज्ञान प्राप्त करायें । आत्मा के सम्बन्ध में स्वानुभूति प्राप्त कर नामदेव पण्ढरपुर वापस आये और तब जा कर वे पूर्ण अर्थात् परिपक्व हुए अर्थात् परम ज्ञान को पूर्णतया प्राप्त हुए ।

परमेश्वर, जीवात्मा और संसार वास्तव में एक हैं। उनका प्रतीयमान विभेद व्यामोहमात्र है। इन भ्रमपूर्ण भेदों को मिटा दीजिए। मनुष्य को मनुष्य से अलग करने वाले सारे प्रतिबन्धों को दूर कीजिए । सबमें अन्तर्निहित एकता का अनुभव कीजिए और मुक्त होइए ।

प्रह्लाद अपने हृदय के अन्तस्तल से भगवान् से प्रार्थना करते हैं-"हे भगवन्, मैं जो भी जन्म धारण करूं, उसमें आपके चरण-कमलों की अविचल भक्ति मुझमें बनी रहे।" आज विश्व को ऐसे भक्तों की आवश्यकता है जो भक्ति को चारों तरफ फैला दें।

हृदय शुद्ध होते ही मन सहज ही भगवान् की ओर मुड़ता है। साधक भगवान् की ओर आकर्षित होता है। अन्ततः वह शुद्ध प्रेम, आत्म-समर्पण और उपासना के द्वारा भगवान् में लीन हो जाता है। तव भक्ति का अस्तित्व विश्वव्यापी हो जाता है। उसका जीवन निरन्तर चालू रहता है और उसकी वैयबितकता विश्वव्यापी हो जाती है।

ज्ञान क्या है ? वस्त्र में सूत देखना, घड़े में मिट्टी देखना, गहने में सुवर्ण देखना, औजारों में लोहे को देखना, कुरसी, मेज, किवाड़ आदि में लकड़ी को देखना- यही ज्ञान है। इसी प्रकार प्राणिमात्र में आत्मा या परमात्मा का दर्शन करना, अपने और सबके हृदय में भगवान् की उपस्थिति का अनुभव करना (वासुदेवः सर्वमिति) - यही ज्ञान

है। भक्ति के परिपक्व होने पर ज्ञान की प्राप्ति होती है। भक्ति प्रगाढ़ हुई कि ज्ञान का उदय हुआ । अनन्य भक्ति का फल ही ज्ञान है।

उपासना दो प्रकार की होती है- प्रतीकोपासना और अहं-. ग्रहोपासना । पहली में कोई-न-कोई प्रतीक घ्यान में लिया जाता है और दूसरी में अपनी आत्मा को ही ध्यान का विषय बनाया जाता है। पहली पद्धति भक्तों की है और दूसरी अद्वैत वेदान्तियों की। जिसने पहली उपासना-पद्धति को पार कर लिया हो, उसे ही दूसरी उन्नत पद्धति अर्थात् अहंग्रहोपासना के, जिसमें अपनी आत्मा का ही शुद्ध आत्मा के रूप में ध्यान करना होता है, अपनाने का अधिकार होता है।

ज्ञान भक्ति का परिणाम है। भक्ति घृणा, ईर्ष्या, वासना, क्रोध और लोभ को दूर करती, हृदय को दिव्य प्रम से भर देती और मनुष्य को मनुष्य से अलग करने वाले सभी अवरोधों को हटा देती है। ऐसा होने पर साधक सर्वत्र ही एकता का दर्शन करता है, आत्मरूपता अनुभव करता है और अनिर्वचनीय विश्व-व्यापक दृष्टि को प्राप्त होता है।

अद्वैत वेदान्त के अनुसार आत्मरति ही भक्ति है। यह सर्वोच्च भक्ति है। इसके अन्दर प्रमा-भक्ति, परा-भक्ति, अपरा-भक्ति आदि का समावेश हो जाता है। अद्वैत वेदान्ती भगवान् शिव, हरि, राम, कृष्ण, दुर्गा, गायत्री, अल्लाह, जेहोवा आदि सभी का उपासक है। वह कोई साम्प्रदायिक भक्त नहीं होता । उसका हृदय अनन्त तक विस्तृत होता है।

आत्मोपासना उच्चतम भक्ति है। इसे पारमार्थिक भक्ति कहते हैं। ज्ञानयोग का साधक अपनी आत्मा की ही उपासना करता है। 'मैं सत्, चित्, आनन्द, अखण्ड, परिपूर्ण ब्रहम है।' क्या इससे बढ़ कर कोई भक्ति हो सकती है ?

हिरण्यकशिपु के सुपुत्र प्रहलाद ने शुद्ध हृदय से ध्यान किया और परमोत्कृष्ट, अभेद निर्विकल्प समाधि का आनन्द अनुभव किया। वे पाँच हजार वर्षों तक एक मूत्ति की तरह निर्विकल्प समाधि में अटल बैठे रहे ।

परमेश्वर की उपस्थिति सर्वत्र अनुभव कीजिए। अपने चित्त को भगवान् में स्थिर करने का निरन्तर प्रयत्न कीजिए। इन सभी रूपों में अपने प्रियतम का दर्शन करने की चेष्टा कीजिए। मौनपूर्वक उनका नाम जप कीजिए। कभी-कभी उनका नाम-सङ्घीत्तंन कीजिए। मौन-भाव से कीत्तंन कीजिए। भगवान् में मन को रमने दीजिए। मौन में उनका आनन्द लीजिए ।

निरन्तर यह अनुभव कीजिए कि आपका शरीर भगवान् का चलता-फिरता मन्दिर है; आपका कार्यालय या व्यवसाय-भवन ही बड़ा मन्दिर है, वृन्दावन है; तथा आपका चलना-फिरना. खाना-पीना, नहाना-धोना, देखना-सुनना, पढ़ना-लिखना आदि क्रियाएँ भगवान् की सेवा हैं। उचित भाव से किया गया कर्म हो उपासना है। कर्म ही घ्यान है। किसी हेतु के बिना, 'मैं कर्ता-भोवता है' आदि विचार के बिना केवल काम के लिए काम कीजिए। किसी फल की प्रत्याशा न रखिए। अपने को भगवान् के हाथ का उपकरण समझिए। यह भावना रखिए कि भगवान्

आपके हाथ-पांष से अपना ही काम ले रहे हैं। सारे विश्व को भगवान् काः ही प्रतिरूप समझिए। ऐसी भावना कीजिए कि विश्व एक वृहद् वृन्दावन है और आपकी पत्नी, बच्चे, माता, पिता आदि सब उन भगवान् की ही सन्तान हैं। प्रत्येक के मुख-मण्डल में और वस्तुमात्र में भगवान् का दर्शन कीजिए। यदि आप निरन्तर एवं सतत अभ्यास के द्वारा अपने दृष्टिकोण को इस दिशा में बदल लें और दिव्य भाव निर्माण कर लें, तब आपका प्रत्येक काम भगवान् की पूजा हो जायगा। बस इतना ही पर्याप्त है। शीघ्र ही आपको भगवत्साक्षात्कार हो जायगा। यह प्रभावशाली योग है। यह सरल साधना है। अब इसके अनन्तर चे पुराने झूठे बहाने न बनाइए कि 'स्वामी जी, मुझे आध्यात्मिक साधना के लिए समय नहीं मिलता।' यदि केवल तीन महीने भी आपने यह प्रभावोत्पादक योग-साधना जारी रखी तो आपमें पूर्ण परिणत्ति आ जायेगी। अभी से चींटी और कुत्तों के साथ, हाथी और शेरों के साथ, हिन्दू और मुसलमानों के साथ, यहूदी और ईसाइयों के साथ अपनी एकता और अत्यन्त घनिष्टता अनुभव कीजिए। सभी प्रकार के प्रतिरूपों या अभिव्यक्तियों में केवल आकार का ही अन्तर है। प्रत्येक आकार परमेश्वर का, सगुण ब्रह्म का ही आकार है। जब भी आप कोई पेड़-पौधा देखें या किसी सिख या मुसलमान को देखें, तब उस आवरण के पीछे छिपे हुए वास्तविक चैतन्य का दर्शन करें। इसका अभ्यास करके देखिए, आपमें अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव होगा और सभी प्रकार की घृणा समाप्त हो जायगी। आप विश्व-प्रेम या चैतन्य की एकता का विकास करेंगे और यह अनुभव बड़ा ही महत्त्वपूर्ण होया ।

कबीर कहते हैं: "स्नान और दतुवन में क्या रखा है ? नमाज़ पढ़ने से क्या लाभ ? हृदय में कपट रख कर प्रार्थना करने से क्या लाभ ? फिर, मक्का तक हज करने से क्या होता है ? हिन्दू चौबीस एकादशी का उपवास रखते हैं। मुसलमान तीस दिन का रोजा रखते हैं; परन्तु मुझे कोई बताये कि ग्यारह महीने की बात तो छोड़ दीजिए, एक महीना ही उस भगवान् के लिए किसने रखा ? हरि को पूर्व में बसाया और अल्लाह को पश्चिम में रखा। लेकिन अपने हृदय में उसको खोजो । वहाँ राम और रहीम दोनों मिलेंगे। भगवान् यदि केवल मसजिद में हैं तो वाकी सारा जग किसका है? लोग कहते हैं कि राम केवल तीर्थ-क्षेत्रों और मूत्तियों में ही हैं, पर अभी तक उन्हें राम कहीं नहीं मिले। वेदों और कुरान को किसने झूठा कहा ? जो विचार नहीं करते हैं उनके लिए वे झूठे हैं। शरीरमात्र में वही एक है, दूसरा कोई नहीं। स्त्री हो चाहे पुरुष, सब भगवान् के ही रूप हैं। कबीर तो अल्लाह या राम का बच्चा है और राम ही कबीर का गुरु और पीर भी है।"

एकमात्र शुद्ध प्रम ही, मनुष्य-मनुष्य के बीच जो बाधा है. अन्तर है उसे मिटा सकता है। शुद्ध प्रेम ही हर प्रकार के अकारण द्वेष, पूर्वाग्रह और द्वष को दूर कर सकता है और वही यहूदी और ईसाइयों को, हिन्दुओं और मुसलमानों को, कैथोलिक और प्रोटेस्टेण्ट को, ब्राह्मणों और अब्राह्मणों को, वैष्णवों और शैवों को, समाजियों और सनातनियों को, रामानन्दियों और शाक्तों को, जर्मनों और अंगरेजों को, संन्यासियों और वैरागियों को. चीनियों और जापानियों को एक करके एक मञ्च पर तथा एकात्मभाव से खड़ा कर सकता है।

साधक क्रमशः यह अनुभव करने लगता है कि भगवान् मूर्ती में हैं, सभी प्राणियों के हृदय में हैं और इस विश्व में सभी नाम और रूपों में हैं। फिर वह सर्वत्र भगवान् की उपस्थिति देखने लगता है।

जो भक्त केवल मूत्ति में ही भगवान् का दर्शन करता है, वह निम्न स्तर का भक्त है, जो भक्तों में ही भगवान् का दर्शन करता है और साथ ही अमुक के प्रति यह भावना भी रखता है कि 'यह आदमी बुरा है, वह भक्तं नहीं है आदि', वह मध्यम स्तर का भक्त है और जो सर्वत्र भगवान्-ही-भगवान् को देखता है, सारे संसार को भगवान् कृष्णमय देखता है (वासुदेवः सर्वमिति), वह उत्तम स्तर का भक्त है।

मिठाई में जिस प्रकार मिठास सर्वव्यापी है, उसी प्रकार सारे संसार में भगवान् व्याप्त हैं। सारा विश्व भगवान् में स्थित है। ईशावास्योपनिषद् का पहला मन्त्र यही कहता है- "ईशावास्य-मिदं सर्वम्" अर्थात् सब-कुछ ईश्वर का आवास है।

नाम-रूपात्मक दृश्य का निषेध कर सर्वत्र ही भगवान् के दर्शन कीजिए। शरीर को भूल जाइए। वाह्य परिस्थिति को भूल जाइए। एकमात्र भगवान् के चैतन्य में वास कीजिए। यह प्रबुद्ध समाधि है।

प्रत्येक जीव-जन्तु में भगवान् हैं। सभी वस्तुओं में और प्रवृत्तियों में उन्हीं को पहचानिए। श्वास-प्रश्वास में, वाणी में, नेत्रों में, सबमें वही हैं। वह प्राणों के प्राण और आत्मा के आत्मा हैं। हिन्दू-मुसलमानों या प्रोटेस्टेण्ट-कैथोलिक या शैत्र-वैष्णवों में कोई भेद न देखिए।

कोई भिखारी फटा-पुराना चिथड़ा पहन कर सामने आये तो दोनों हाथ जोड़ कर उसे प्रणाम कीजिए। प्रतीक चाहे जिस दुःस्थिति में हो, वह है तो भगवान् का ही प्रतीक ।

श्रीराम ने हनुमान् से पूछा कि वे अपने विषय में क्या सोचते हैं। इस पर हनुमान् ने कहा- "हे प्रभु, जब मैं अपने को शरीर समझता है. तब आपका दास है, जब अपने को जीव समझता है, तब आपका अंश है और जब मैं अपने का आत्मा समझता है, तब मैं और आप एक ही हैं।"

पहुँचे हुए भक्त अपने को इष्टदेव में लीन कर देते हैं। वे अपने व्यक्तित्व को अपने पूज्य और आराध्यदेव में डुबो देते हैं। ईश्वरीय सत्ता में वे गहरे उतर जाते हैं। दैवी आनन्द के सागर में गहरा गोता लगाते हैं। उन्हें सारा जग भगवान् का ही प्रति-रूप दिखता है। वे पेड़, पौधे, फूल, कुत्ता सबसे यही कहेंगे-"हे कृष्ण, हे प्रभु, इन सारे रूपों में मैं आपको ही देखता है।" उनके लिए यह विश्व वृन्दावन ही है।

हरि जल में हैं, यल में हैं, वायु में हैं, पङ्ख में हैं, मन में है और दूध में हैं। शरीर को सहारा देने वाली छड़ी में भी वह हैं। सर्वत्र हरि-ही-हरि हैं।

शीतल-मन्द-पवन सच्चे प्रेम का सुमधुर सङ्गीत गाता है, पर आप बहरे हैं, उसे सुन नहीं पा रहे हैं। पवन का प्रत्येक झोंका हरि-हरि पुकारता है; पर आप उसे सुन नहीं पाते।

कृष्ण का सच्चा भक्त सर्वत्र कृष्ण को ही देखता है। उसकी दृष्टि नयी योगदृष्टि है, दिव्य दृष्टि है।

अपने हृदय को भगवान् के चरण-कमलों की ओर मोड़िए। इससे अज्ञान का आवरण हट जायगा और आपको अनिर्वचनीय दिव्य दृष्टि मिलेगी। हे अनन्त की सन्तानो, अमृत पुत्रो, आत्मा का अमर गीत सुनिए । प्रत्येक वस्तु की वाणी को सुनिए। टिमटिमाती तारिकाएँ, नील गगन, तेजोमय सूर्य, हिमालय के हिमाच्छादित शिखर, मन्दस्मित पुष्प, कल-कल निनाद करती सरिताएँ, सागर की तरङ्ग- सभी धीमे स्वर में कहते हैं, "प्रभु यहाँ हैं।" संसार के सब पदार्थों में परिव्याप्त उस ईश्वरीय रूप को पहचानिए ।

(५) प्रेम को विश्वव्यापी बनाइए

हे मानव, आप भगवान् को कहाँ खोजते हो ? जितने रूप और जितनी आकृतियाँ हैं, सब भगवान् के ही प्रतिरूप हैं। इन्हीं रूपों में भगवान् को देखो। प्रत्येक की नारायण-भाव से सेवा करो। वह सेवा वास्तव में भगवान की ही सेवा होगी । मानवता की सेवा ही सच्ची भगवत्-सेवा है। जन-सेवा ही इष्टदेव की पूजा है। यदि भगवान् की इन प्रतिकृतियों से, दृश्य परमेश्वर से, प्रेम नहीं कर सकोगे, इनकी सेवा नहीं कर सकोगे तो उस अदृश्य की सेवा कैसे कर सकोगे ?

यदि आप वास्तव में उस अद्वैत आत्मा का परम आनन्द भोगना चाहते हो, यदि वास्तविक और व्यावहारिक अद्वैत बेदान्ती या योगी बनना चाहते हो तो शोकाकुलों को सान्त्वना देने, गरीबों की सहायता करने और बीमारों की सेवा-सुश्रूषा करने के लिए प्रयास करो। मानवता की सेवा किये बिना क्या कोई घट-घट-वासी परमेश्वर को पाने के प्रयत्न में सफल हो सकता है? जितने पदार्थ हैं, सब उसी एक परमेश्वर के प्रतिरूप हैं। सभी शरीर उसी के हैं। किसी रोगी के पैर दबाओ तो समझो, उसी प्रभु के, उसी विराट् अथवा सगुण ब्रह्म के पैर दबा रहे हो। पशुओं की भी सेवा करो। प्रत्येक प्राणी के प्रति प्रेम और करुणा-भाव रखो।

जब तक प्रत्येक व्यक्ति के प्रति आदर और सम्मान का भाव न रखोगे तब तक सर्वान्तर्यामी परमेश्वर की पूजा कैसे कर पाओगे ? सबके साथ आदरपूर्वक व्यवहार करो। सबको समान दृष्टि से देखो। सत्कार्य करो। वस्तुमात्र में भगवान् को पहचानो। सभी को प्रणाम करो। भगवान् के प्रति घनिष्ठ और अनन्य प्रेम रखो। अपने सारे विचारों को उन्हीं में केन्द्रित करो। किसी वस्तु की, यहाँ तक कि मोक्ष की भी अपेक्षा न रखो। इससे आप शीघ्र ही जन्म-मृत्यु के चक्र से छूट जाओगे और निर्भय पद के शाश्वत सुख और परम शान्ति को प्राप्त होबोगे ।

ब्रह्म सूर्य, गङ्गा और आम्र के वृक्ष की तरह है। सूर्य भले-बुरे सबको समान रूप से प्रकाश देता है। गङ्गा-जल दुष्ट भी पी सकता है और सन्त भी। आम्र का वृक्ष अपने रखवाले को भी फल देता है और अपनी शाखा काटने वाले को भी देता है। इन्हीं की तरह आप भी अपनी समदृष्टि का विकास करो।

नाम और रूप भले भिन्न-भिन्न हों, पर उनमें जो तत्त्व है, वह समान और एक ही है। ये सारे नाम और रूप उसी सार वस्तु पर अवलम्बित हैं। इसीलिए हम सब एक सामान्य बाधार पर जुड़े हुए हैं। इस एकता की स्थापना पर ही

विश्व-भ्रातृत्व निर्भर है। । इससे व्यक्ति-व्यक्ति में अद्वैत भावना स्थापित होती है और ब्रह्मस्वरूपता विकसित होती है।

पड़ोसी से प्रेम करो और उसकी सेवा करो। अपने लिए जो अधिक पसन्द करते हो, उसे दूसरों को आनन्द और स्वेच्छा से दो। इससे विश्व-प्रेम विकसित होगा और आपकी दृष्टि में एकता और समता समा जायगी। शीघ्र ही ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त होगा। जल्दी ही सबमें आत्मा को और आत्मा में सबको देखने लगोगे । सम्यक् दृष्टि प्राप्त होगी ।

किसी माता के नौ बच्चे मर चुके हों और एक बच्चा बच रहा हो तो वह माँ उस एक बच्चे से जिस प्रकार प्रेम करती है, आपको उतना ही प्रम विश्व के प्रत्येक प्राणी से करना चाहिए। साधक के लिए यह अतिश्रेष्ठ योग्यता है। इस प्रकार असीम प्रोम करने वाले का सूक्ष्म शरीर विशुद्ध और सुन्दर तेज की आभा से प्रकाशित होता है। उसमें कभी मलिन न होने वाली कान्ति रहती है।

सबके प्रति दयालु रहो। सबसे प्रेम करो। किसी की भावना को चोट न पहुँचाओ। सबसे एकरूप हो कर रहो। साम्प्रदायिकता को खतम करो। सबकी सेवा करो। सबका आदर करो। आपके पास-भौतिक, मानसिक या आध्यात्मिक जो-कुछ भी है, उसे सबके साथ बांट कर भोगो। सारे विश्व को नारायण समझो (अनेकरूपरूपाय विष्णवे प्रभविष्णवे) । जगत् को प्रणाम करो और प्रत्येक को नमस्कार करो। 'वह धोबी है, वह नाई है, अमुक चमार है आदि' भेद-भावना भूल जाओ। नाई नारायण है, चमार भी नारायण है। एक मेहतर तक को हाथ जोड़ कर प्रणाम करो और समझो कि साक्षात् नारायण को प्रणाम कर रहे हो। यदि ऐसा करने में सङ्कोच हो तो मानसिक प्रणाम करो । पहला तरीका समानता का विकास करने के लिए उत्तम उपाय है। उसके अभ्यास से वेदान्त का ज्ञानसार-समदशित्व की अनुभूति प्राप्त हो सकती है।

किसी सद् हेतु के लिए आप अपना जीवन उत्सर्ग करने को उद्यत रहो। अपने शत्रु को बचाने के लिए अपना प्राण देना पड़े तो उसके लिए भी तैयार रहना चाहिए। तभी एकता का अनुभव कर सकोगे । :

कोई आपसे घृणा करे तो भी उससे आपको प्रेम करना चाहिए। सबसे आपको प्रेम करना चाहिए। चोर, शराबी, गुण्डा और आवारा से भी प्रेम करना चाहिए। चमेली से जिस प्रकार सौरभ फैलता है, उसी प्रकार आपसे भी प्रेम का मधुर सौरभ निकल कर दशों दिशाओं में फैलना चाहिए। तभी वह विश्वप्रेम बन सकेगा और आपका हृदय विशाल होगा।,

गङ्गा आपको सर्वदा शीतल और शुद्ध जल देती है। आपसे वह कुछ भी प्रत्याशा नहीं रखती । सूर्य किसी पुरस्कार की अपेक्षा न रख कर ही सबको प्रकाश देता है। उनसे पाठ सीखो। सदा दो और देते ही जाओ। बदले में कुछ भी न चाहो, कुछ भी अपेक्षा न रखो, यहाँ तक कि प्रशंसा, सराहना या मान्यता भी न चाहो ।

सुख और आनन्द को हर कहीं स्पन्दित होने दो। चारों ओर प्रसन्नता की किरणें फूटने दो। सबमें एकता देखो। सबसे प्रम करो। पक्षियों के साथ गाओ, सूर्य के साथ हँसो. अखण्ड ब्रह्म के दृश्य प्रतिनिधि-स्वरूप विशाल नीले गगन के साथ मुसकाओ । गङ्गा के कल-कल और वायु के फर-फर के साथ ओ३म् का जप करो। विद्युत् के साथ गरजो, वृक्षों के साथ नाचो, फूल-पत्तों के साथ साँस लो। उपनिषद् का सौन्दर्य और भावता 'सबै खल्विदं ब्रह्म' का आनन्द भोगो। फैलो, बढ़ो, विकसो

केवल कर्म से अज्ञान का पूरा नाश नहीं होगा; क्योंकि कर्म अज्ञान का विरोधी या शत्रु नहीं है। एकमात्र ज्ञान ही अज्ञान को मिटा सकता है। जिस प्रकार आग शीत-कम्प को दूर करती है, उसी प्रकार ज्ञानाग्नि अज्ञान-रूपी जड़ता का नाश कर सकती है; अतः एकत्व का ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न करो।

भ्रातृभाव अन्त में वेदान्तीय एकत्व या समता की प्राप्ति कराता है।

किसी भी सम्प्रदाय या समाज में जो भी शुद्धि-हेतुक कार्य चलता है, उससे उस समाज के समस्त प्राणियों का, जिसके वे एक अङ्ग हैं, भला होता है; इसलिए ऐसे कार्य प्रोत्साहनीय होते हैं।

ज्ञानी ही आदर्श कर्मयोगी होता है। केवल ज्ञानी ही निष्काम भाव से कर्म कर सकता है।

राजा जनक को देखो। उनका जीवन कैसा था ! राज्य-सञ्चालन करते हुए भी उन्होंने व्यावहारिक आध्यात्मिक जीवन यापन किया। कोई आदमी इतना कार्य-व्यस्त नहीं मिलेगा जितना कि राजा जनक थे। करोड़ों लोगों पर शासन करते हुए भी वे योगी थे, गहन विचारवान् थे, पहुँचे हुए दार्शनिक और व्यावहारिक वेदान्ती थे। उन्हें अपनी सम्पत्ति, अपने शरीर या परिवार से तिलमात्र भी आसक्ति नहीं थी। उनके अपने पास जो-कुछ था, उसे उन्होंने सबके साथ बाँट कर उपभोग किया। सबसे वे हिल-मिल कर रहे। उनकी दृष्टि समदृष्टि थी और चित्त सन्तुलित था। भोगविलास के मध्य रह कर भी उनका जीवन अत्यन्त व्यस्त था। बाह्री प्रभावों से वे किञ्चित् भी प्रभावितं नहीं होते थे। वे अपने चित्त की शान्ति सवंदा बनाये रखते थे। अनेक ऋषि-मुनियों के साथ वे तत्त्वज्ञान-सम्बन्धी चर्चा किया करते थे। यही कारण है कि आज तक वे हमारे हृदय में निवास करते हैं। वे ही क्यों; आज इस कलियुग में भी महात्मा गान्धी कितने बड़े निष्काम कर्मयोगी और सत्यान्वेषी थे !

सूर्य, पुष्प, गङ्गा, चन्दन, फलदार वृक्ष, गायें सभी हमें वेदान्त की ही शिक्षा देते हैं। निष्काम भाव से मानव-जाति की सेवा करने के लिए ही वे जीते हैं। चाहे किसान की झोपड़ी हो अथवा राजा का महल, सूर्य अपना प्रकाश सर्वत्र समान रूप से देता है। फूल किसी भी प्रतिफल की अपेक्षा रखे बिना सबको समान भाव से सुगन्धि विकीर्ण करता है। गङ्गा का शीतल और परिशुद्ध जल सभी लोग पीते हैं। चन्दन का वृक्ष सबको- उसे पानी देने वाले को भी और कुल्हाड़ी से काटने वाले को भी -समान रूप से सुवासित कर देता है। सभी फलदार वृक्ष भी ऐसा ही आचरण करते हैं। वे पालन करने वाले को जिस प्रकार प्रसन्न करते हैं, वैसे ही पत्थर फेंकने वाले को भी प्रसन्न करते हैं। गायों का जीवन बच्चों, रोगियों और दुर्बलों के परिपालन के लिए ही है। पलभर के लिए कल्पना करो कि संसार से गोवंश

समाप्त हो गया, एक भी गाय नहीं रही, तब आप कितने दुर्बल और दीन बन जाओगे, संसार में सर्वत्र रक्ताल्पता का रोग फैल जायगा। हे स्वार्थी और अज्ञानी मानव ! इन सारे व्याव-हारिक वेदान्तियों से सीखो और ज्ञानी बनो ।

(६) भक्त कौन है ?

जो प्रापञ्चिक विषयों से अनासक्त है, जिसमें अहङ्कार, बासना तथा क्रोध नहीं है, जो परमेश्वर का नाम-जप करता है, जो गरीबों और रोगियों की सेवा आत्मभाव से करता है, जो नित्यप्रति कीर्तन करता है, जो नारायणभाव से भक्तों की सेवा करता है, वह भगवान् हरि का भक्त है।

सच्चे भक्त को मुक्ति तक की चिन्ता नहीं रहती है। उसके हृदयं में एकमात्र भगवद्भक्ति ही भरी होती है। वह ईश्वर-चिन्तन में दिन-रात व्यतीत करता है। मुक्ति के विचार में वह कभी नहीं पड़ता। वह मुक्ति का त्याग कर देता है।

भगवान् का भक्त सर्वदा नम्र और विनयशील होता है। उसके मुँह में सदा हरि-नाम ही रहता है। एकान्त में वह आँसू बहाता है। वह धर्मपरायण होता है। वह सबका मित्र बनता है। उसकी दृष्टि समदृष्टि होती है। वह सबका कल्याण करता है। दूसरों की भावना को वह कभी चोट नहीं पहुँचाता। उसका चरित्र निष्कलङ्क होता है। दूसरों की सम्पत्ति की वह कभी कामना नहीं करता। सभी प्राणियों में वह हरि का दर्शन करता है।

चारों ओर घनघोर वर्षा हो रही हो, तब भी चकोरी अपनी प्यास बुझाने के लिए किसी और ही पानी की तलाश में रहती है। इसी प्रकार भगवद्भक्तों के चारों ओर भले ही वैषयिक सुख-साधन भरे पड़े हों, तब भी अपने सुख के लिए वे भगवान् के चरण-कमलों की ओर ही दृष्टि लगाये रहते हैं।

हृदय और आत्मा की भाषा सर्वत्र एक ही है। विश्व के किसी भी भाग के सन्त अपनी भावनाओं और अनुभूतियों को व्यक्त करने के लिए एक ही भाषा और एक ही परम्परा का अनुसरण करते हैं।

जो परा-भक्ति-सम्पन्न हैं, जो निष्कलङ्क हैं, जो गुण-दोषों से परे हैं, जो पूर्ण शान्त और संयमी हैं, जो सर्वथा जितेन्द्रिय हैं, वे सीधे भगवान् हरि या वासुदेव को प्राप्त होते हैं; उन्हें तीन अवस्थाओं से गुजरना नहीं पड़ता। परन्तु जिनकी भक्ति परिपूर्ण नहीं है, उन्हें आदित्य-मण्डल, अनिरुद्ध, प्रद्युम्न और सङ्घर्षण मण्डल से हो कर गुजरना पड़ता है।

भागवत के अनुसार भक्त तीन प्रकार के होते हैं-"एक वे हैं, जो पदार्थमात्र में अपने इष्टदेव को और अपने इष्टदेव में पदार्थमात्र को देखते हैं और फलस्वरूप, सर्वत्र पूर्णता को हो देखते हैं, वे उत्तम भक्त हैं। जो भगवान् से प्रेम, भक्तों के प्रति मैत्री, अज्ञानियों के प्रति दयाभाव और अपने शत्रुओं के प्रति उपेक्षा भाव रखते हैं, वे मध्यम भक्त

हैं। जो परम्परागत श्रद्धा से भगवान् की विभिन्न मूर्तियों की पूजा करते हैं; परन्तु भक्तों के प्रति बादर नहीं रखते हैं, वे निकृष्ट भक्त हैं।"

संसारभर के सारे भक्तों में एक अदृश्य नित्य सम्बन्ध-सूत्र है, जो उन सबको मानवमात्र में दिव्य चैतन्य जाग्रत करने की महान् सेवा में संलग्न करता है। भगवान् की जय हो ! सभी प्रदेशों के भक्तों की भाषा एक ही है। वह है हृदय की भाषा । उनमें सभी प्रकार के भेद-भाव समाप्त हो गये हैं।

भगवद्भक्ति तथा भगवत्सान्निध्य के द्वारा सभी भक्तों को वे शक्तियाँ प्राप्त हो जाती हैं जो जन्म, तपस्या या मन्त्रों से प्राप्त होती हैं।

भक्तों की महिमा अमिट होती है। भगवान् को भी भवत का दास बनना पड़ता है। भगवान् की जय हो ! उनके नाम की जय हो ! भगवान् तथा उनके नाम की महिमा गाने वाले भक्तों की जय हो !

षष्ठ अध्याय: भक्ति का विकास कैसे हो ?

(१) भक्ति का विकास कैसे हो ?

एक बार देवासुर-संग्राम में राजषि षट्वाङ्ग ने देवताओं की सहायता की जिससे प्रसन्न हो कर देवताओं ने उनसे बरदान माँगने को कहा। षट्वाङ्ग ने प्रश्न किया, "इस प्रकार प्राप्त वर का उपयोग करने के लिए अभी मेरी आयु कितनी है ?" देवताओं ने बतलाया - "एक मुहूर्तमात्र।" षट्वाङ्ग ने वर माँगा- "इस एक मुहूर्त में मैं उस परब्रहम के आनन्द का अनुभव करना चाहता है।" देवताओं ने कहा- "तथास्तु।" षटवाङ्ग ने उस क्षण अपना चित्त भगवान् पर स्थिर एवं एकाग्र किया और वे मोक्ष को प्राप्त हुए। मित्रो, आप भी यदि एक मुहूर्तमात्र भी भगवान् के प्रति अत्यन्त भक्ति के साथ अपना चित्त एकाग्र करें तो लक्ष्य को प्राप्त कर सकते हैं। यह निसर्ग का निश्चित नियम है कि एक ने जो प्राप्त किया, वह सभी प्राप्त कर सकते हैं। कटिबद्ध हो कर भगवान् में मन को स्थिर कीजिए और अभी भूमा का शाश्वत आनन्द प्राप्त कीजिए। प्रबल इच्छा-शक्ति और सङ्कल्प-शक्ति वाले व्यक्ति के लिए कोई काम कठिन नहीं है।

यदि आपको भगवान् की सच्ची खोज है तो पलभर में आप उन्हें पा सकते हैं। सर्वदा उन्हीं का स्मरण कीजिए। उनके नाम पर जीवन यापन कीजिए। उनका गुण गान कीजिए। अपने हृदयान्तर में उन्हें खोजिए। भक्तों से सीखिए कि भगवान् से कैसे प्रेम किया जाता है और उनकी कैसे सेवा की जाती है। वे आपकी आत्मा के आश्रयदाता हैं, सारे विश्व के एकमात्र सम्राट् हैं। वे आपके हृदय में ही विराजमान हैं और आपके अन्तर्यामी हैं।

कुछ लोगों का कहना है कि वृद्धावस्था में कार्य से निवृत्त होने पर भक्ति का मार्ग अपनाना चाहिए। यह एक गम्भीर भूल है। क्या आपको पक्का विश्वास है कि वृद्ध होने पर आप जीवित रहेंगे ?

यद्यपि शिशुपाल, कंस, रावण आदि भगवान् के शत्रु थे, फिर भी उन्होंने सिद्धियाँ प्राप्त कर ली थीं। फिर तो जो भगवान् के प्यारे हैं, उनका कहना ही क्या! वैर और भय के कारण उनके मन में भगवान् ही भगवान् भरे थे जिससे उन्हें मुक्ति मिल गयी । भगवान् के प्रति चाहे प्रेम करो या भक्ति, चाहे भय करो या बैर, कोई-न-कोई भाव निरन्तर होना चाहिए। इससे व्यक्ति भगवान् में तन्मय हो जाता है और उसका मन सत्त्व गुण से परिपूर्ण हो जाता है।

आपके नेत्र हैं, फिर भी आप देख नहीं सकते हैं। आकाश की ओर देखने पर भी आपको उन भगवान् के अस्तित्व का भान नहीं होता है। आपके कान हैं, फिर भी आप उनकी वाणी नहीं सुनते। वे आपके कानों में प्रेम और सत्-सन्देश की वाणी सुनाते हैं, पर आपके कान उसको सुनने में असमर्थ हैं। वे आपकी ओर अति-लगन के साथ दृष्टि लगाये हुए हैं, पर आपकी दृष्टि इतनी अन्धी है कि उन्हें पहचान नहीं पाती।

आप ज्ञानयोग के अनुयायी हों, फिर भी जब तक आप देहाध्यास का अनुभव करते रहें, तब तक भक्ति का भी सहाय लेते रहिए।

भगवान् सर्वदा आपके साथ हैं। वे आपकी रक्षा करते हैं, आपको बचाते हैं। उनकी शरण लीजिए। आपके जीवन में उनकी कृपा प्रवाहित होगी जो आपका हृदय और शरीर परि-वत्तित कर देगी। आध्यात्मिक वातावरण में अपने ज्ञान का विकास कीजिए। अपने विचार, वाणी और क्रिया को नियन्त्रित करने का नित्यप्रति तत्परतापूर्वक प्रयास कीजिए। अपने कमरे में भी उनकी उपस्थिति अनुभव कीजिए। नित्य प्रार्थना और ध्यान कीजिए।

मनुष्य केवल रोटी पर जी नहीं सकता, लेकिन वह भगवान् के नाम पर जी सकता है। मानवमात्र और समूचे देश के प्रति आत्म-भाव-युक्त शुद्ध प्रेम और निःस्वार्थ सेवा के द्वारा ईश्वरीय-चेतना की प्राप्ति ही वास्तविक स्वराज्य है। शुद्ध और सर्वव्यापी प्रेम का विकास वास्तविक आत्म स्वराज्य-प्राप्ति का एकमात्र साधन है। अतः प्रत्येक व्यक्ति को स्वार्थ, गर्व, अहङ्कार, लोभ, वासना और घृणा को त्याग कर शुद्ध प्रेम विकसित करना चाहिए।

भवत या भागवत में सहनशीलता और करुणा होती है। वह प्राणिमात्र का हितैषी होता है और सर्वत्र अपने भगवान् के ही दर्शन करता है। जब वह वियोग अनुभव करता है या पलभर के लिए भी अपने प्रियतम से विछोह का आभास पाता है, तब वह पत्थर की चट्टान से, लता से, वृक्ष से और खम्भों से- सबसे बातें करता है। उसका कोई शत्रु नहीं है। उसे सभी स्त्रियों में अपनी माँ दिखती है। सुवर्ण का ढेर उसे पाषाण-खण्ड-सा दृष्टिगत होता है। वह आसक्ति, लोभ, क्रोध, काम, अहंता और ममता से मुक्त रहता है। वह सीधा-सादा, नम्र और शान्त रहता है। उसकी भगवद्भक्ति स्थायी और अनन्य होती है। वह प्रभु के लिए सर्वस्व त्याग देता है। भगवान् की, भवतों की और दुःखी जनता की सेवा के लिए ही वह जीता है। उसके मुँह में प्रभु का नाम ही सर्वदा रहेगा और वह भगवन्महिमा गाता रहेगा।

भक्त में निम्नलिखित गुण होने चाहिए-श्रद्धा, निष्ठा, नम्रता और समर्पण-भाव। तभी वह भगवत्साक्षात्कार पा सकेगा।

तैत्तिरीयोपनिषद् में सारे वेदाध्ययन समाप्त होने के बाद गुरु अपने शिष्य को उपदेश देते हैं- "सत्य बोलो, अपना कत्र्तव्य निभाओ, वेदाध्ययन से प्रमाद न करो, अपने गुरु को दक्षिणा दे कर (वैवाहिक जीवन में प्रवेश करो और इस भाँति) अपनी वंश-परम्परा को टूटने न दो। सत्य के. प्रति प्रमाद न करो, कत्र्तव्य के प्रति प्रमाद न करो, अपने कल्याण को छोड़ो नहीं, अपनी समृद्धि के प्रति प्रमाद न करो। वेदों के पठन और पाठन दोनों से प्रमाद न करो।"

आप किसी की निन्दा करें या किसी की भावना को चोट पहुँचाएँ तो वास्तव में आप साक्षात् भगवान् की ही निन्दा करते हैं और भगवान् को ही दुःख देते हैं।

भक्त को सज्जनता की प्रतिमूत्ति बनना चाहिए। प्राणिमात्र का कल्याण करने के लिए उसे सदा उद्यत रहना चाहिए । भगवान् कृष्ण गीता में कहते हैं- 'सर्वभूतहिते रताः' (अ० १२-४)। जो सभी के कल्याण में लगा रहता है, वही प्रभु का दर्शन करता है। वह अन्ततः अद्ध्त भावना का विकास कर लेगा ।

अपने ह्दयोद्यान में प्रेम को पनपाइए। घृणा, संशय, प्रति-हिंसा, ईर्ष्या, गर्व, स्वार्थ आदि घास-फूस उखाड़िए। प्रेम में अपार शक्ति भरी है। राष्ट्र की एकता प्रेम से ही सम्भव है। प्रेम ही ह्दयों को जोड़ सकता है। प्रेम से ही सच्चा स्वराज्य प्राप्त किया जा सकता है। अतः अपने में प्रम बढ़ाओ और औरों को भी प्रेम सिखाओ। प्यारे बच्चो, प्रम और धर्म की वास्तविक प्रकृति को समझो और अपने जीवन को सही अर्थ में धार्मिक, प्रेमल और त्यागमय बनाओ ।

अग्निहोत्र, पञ्चमहायज्ञ आदि शास्त्रोक्त कर्म विहित कर्म हैं। शराबखोरी, चोरी आदि कर्म निषिद्ध कर्म हैं।

आपके हाथ से कोई दुष्कृत्य या पाप हो जाय तो जप की मात्रा बढ़ा दीजिए (५० माला अधिक कर लीजिए)। रविवार के दिन निराहार और निर्जल उपवास कीजिए। आगे फिर ऐसा दोष न करने के दृढ़ निश्चय के साथ पश्चात्ताप कीजिए। किसी रविवार को अपने हाथों से गरीबों को भोजन खिलाइए । दान से पापों का ढेर नष्ट होता है। "यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनाविणाम्" यज्ञ, दान और तप- ये तीनों बुद्धिमान् पुरुषों को परिशुद्ध करते हैं (गीता अ० १८-५) ।

भक्ति को यदि पनपने देना है तो काँटों को उखाड़ फेंकना होगा। काम, क्रोध, असूया, लोभ, दम्भ, गवं, कपट, ढोंग आदि कई आन्तरिक काँटे हैं और कुसङ्गति, अश्लील उपन्यास, कुदृश्य, भद्दे गीत और गन्दी बात-चीत आदि कुछ बाहरी कॉटे भी हैं।

सदाचार के बिना भक्ति विकसित नहीं की जा सकती। जिस प्रकार रोगी का उपचार औषधियों के साथ-साथ पथ्य द्वारा किया जाता है; उसी प्रकार भगवत्साक्षात्कार के लिए भक्ति और सदा-चार दोनों आवश्यक हैं। भक्ति औषधि है और सदाचार पथ्य है।

मुक्ति-मार्ग का आरम्भ शुद्धि से और समाप्ति ज्ञान में है। विश्व-प्रम मोक्ष का द्वार है। क्रमशः प्रम. को व्यापक करना चाहिए। निःस्वार्थ सेवा से चित्त शुद्ध होता है और विशुद्ध प्रेम विकसित करने में सहायता मिलती है।

श्री रामानुजाचार्य समझाते हैं कि भक्ति का विकास करना चाहें तो निम्नलिखित एकादश गुणों का आयास करना चाहिए।

वे हैं-विवेक, विमोक (अन्य विषयों से विमुखता और भगवान् के प्रति घनिष्ठ आस्था), अभ्यास (निरन्तर भगवच्चिन्तन), क्रिया (दूसरों की सेवा), कल्याण (सबका हित), सत्य, आर्जवम् (सीधापन), दया, अहिंसा, दान और अनवसाद (प्रसन्नता और उत्साह)।

मुक्ति के लिए केवल सदाचार पर्याप्त नहीं है। उसके साथ श्रद्धा, विश्वास और भक्ति भी आवश्यक हैं। सदाचार के द्वारा हृदय-रूपी भूमि को अच्छी तरह तैयार कर रखें तो भक्ति का बीज उसमें बोया जा सकता है।

साधक के लिए प्रारम्भ में सत्सङ्ग, एकान्त और सात्विक आहार की अपरिहार्य आवश्यकता होती है। इन तीनों के बिना पुराने संस्कारों से छुटकारा पाना दुःसाध्य है।

विष्णुदास एक पहुँचे हुए सन्त हैं। वे चित्रकूट से दो मील दूर जङ्गल में रहते हैं। वे ऐसी जगह सोते हैं जहाँ साँप बहुत हैं। उनमें बच्चों जैसा भोलापन है। यह भक्त का एक प्रमुख लक्षण है।

लोहार लोहे को गरम करता है, घन से ठोक-पीट कर काम के योग्य औजार बनाता है; इसी प्रकार भगवान् भी अपनी लोला के लिए उपयुक्त साधन बनाने की दृष्टि से जीवों को कई प्रकार की परीक्षाओं में डालते हैं, विभिन्न अनुभव दिलाते हैं।

कुन्ती कहती है- "हे भगवान्, हे जगद्गुरु, हम पर बार-बार विपत्तियाँ आती रहें; क्योंकि ऐसे समय ही हम आपकी उपस्थिति का अनुभव कर सकेंगी और अमरत्व तथा सुख पा सकेंगी।"

ईश्वरेच्छा पर अटूट श्रद्धा रखिए। दुःख-सुख में, हर्ष और शोक में, समृद्धि और अकिञ्चनता में, जन्म और मृत्यु में और सभी दैनिक कार्यों में भगवान् का हाथ देखिए। अपने हृदय के अन्दर और शिर के ऊपर भगवान् को रख कर काम कीजिए। आपका जीवन सफल होगा और आपको भगवत्साक्षात्कार मिलेगा ।

प्रकृति हमेशा आगे-आगे चलती है। प्रत्येक के खाने-पीने का प्रबन्ध वह पहले से करती है। शरीर का ध्यान रखती है। इसलिए आपको अपने खाने-पीने की चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। निश्चिन्त रहिए। माता पर, उसकी कृपा पर आस्था रखिए।

प्रसन्न और खुश रहिए । निर्भय और सरल रहिए । साहसी और परिशुद्ध रहिए । दया-भाव रखिए, आपके लिए मुक्ति का द्वार अभी खुला मिलेगा ।

"जातिविद्यामहत्त्वञ्च रूपयौवनमेव ।
एते हि भक्तिमार्गेषु जनेषु पञ्चकण्टकाः ।।"

जान लीजिए की जाति, विद्या, पद, सौन्दर्य और यौवन -ये पाँच भक्ति-मार्ग के काँटे हैं।

आप आठ घण्टा सोने में बिताते हैं और बाकी समय व्यर्थ की बकवास, झूठ बोलने, औरों को ठगने, स्वार्थपूर्ण कार्यों और घन के सञ्चय में खर्च करते हैं। दिनभर में यदि आधा घण्टा भी भगवान् की सेवा न करें, उनका गुण-गान न करें और भगवत्-चिन्तन न करें तो फिर आत्म-कल्याण और अमरत्व की अपेक्षा कैसे रख सकते हैं ?

एक बार किसी अपराध या भूल के लिए भगवान् से क्षमा माँग ली तो फिर इस भरोसे पर कि भगवान् का नाम लेने से सारे पाप धुल जाते हैं, आपको वही अपराध या भूल दोहरानी नहीं चाहिए। आप जो पाप कर बैठे हैं, उसके लिए खेदपूर्वक हार्दिक पश्चाताप करना चाहिए। उसकी पुनरावृत्ति न होने देने का दृढ़ निश्चय करना चाहिए ।

यदि अपने इष्टदेव के प्रति आपकी भक्ति सच्ची है और आपका चित्त उनके चरण कमलों की ओर आकर्षित है तो आप अपना लक्ष्य निश्चित ही सिद्ध कर सकेंगे। सभी बाधाएँ दूर हो जायेंगी। सभी साधनाएँ सफल हो जायेंगी ।

प्रत्येक पदार्थ में भगवान् को ही देखो। पूर्ण आत्मसमर्पित और अनासक्त जीवन व्यतीत करो। प्रभु के दर्शन पाओगे ।

सभी दुःखों का अन्त होगा। यही रामायण और भागवत का प्रमुख उपदेश है। इसी क्षण से इसका अभ्यास आरम्भ करो ।

भगवान् शङ्कर की निष्ठापूर्वक आन्तरिक प्रार्थना करो। प्रातः ४ से ७ बजे तक और रात्रि के ७ से १० बजे तक भावपूर्ण एकनिष्ठ भक्तिपूर्वक 'ॐ नमः शिवाय' मन्त्र का जप करो। मन यदि इधर-उधर भटकने लगे तो थोड़ी देर के लिए मन्त्र का उच्चारण ऊँचे स्वर से करो। बाद में फिर मानसिक जप शुरू करो। इससे आपको भगवान् शङ्कर के दर्शन होंगे। संसार, मित्र, सम्बन्धी और सम्पत्ति को भूल जाओ; पर अपने इष्टदेव को, भगवान् शङ्कर को मत भूलो। कहो- "जय शिव, जय शिव।" महिम्न-स्तोत्र का नित्यप्रति पारायण करो।

हिमालय की किसी एकान्त गुफा में - जहाँ किसी प्रकार का प्रलोभन नहीं है- बैठ कर आत्म-ध्यान करने वाले संन्यासी की अपेक्षा वह गृहस्थ कई गुणा उत्तम है, जो नगर की धूम-धाम के बीच रहते हुए थोड़ी देर के लिए भी योग का अभ्यास करता है।

भगवान् की कृपा की याचना करते हुए निष्क्रिय न बैठो। उठो और प्रयत्न करने लग जाओ; बयोंकि भगवान् उन्हीं की सहायता करते हैं जो स्वयं प्रयत्नशील हैं। यथा-शक्ति स्वयं प्रयत्न करो, बाकी ईश्वर पर छोड़ दो।

कौशल देश में गाधि नामक एक ब्राह्मण था। वृद्ध होने पर वह जङ्गल में गया और वहाँ एक सरोवर में कण्ठ तक पानी में खड़े हो कर उसने आठ महीने तक घोर तपस्या की। उसके बाद एक वर्ष तक अञ्जलिभर जल पी कर ही रहा। भगवान् हरि प्रकट हुए और कहा- "यहाँ से उठो और उस पर्वत की गुफा में जा कर दश वर्ष और तपस्या करो। तब तुम्हारे अन्दर शाश्वत और सत्यज्ञान का पूर्ण उदय होगा।" उसने दश वर्ष तक वैसी तपस्या की और परिपूर्ण ज्ञान प्राप्त किया ।

भगवान् का नाम-स्मरण, सर्वत्र भगवान् की उपस्थिति का अनुभव और सभी आकृतियों में भगवान् का दर्शन- इनके द्वारा क्या आप अपनी विभिन्न प्रवृत्तियों के बीच उस दिव्य ज्योति को जलाये रखते हैं ?

प्रापञ्चिक विचारों और कामनाओं से जो मन विक्षुब्ध रहते हैं, उनमें भगवान् के विचार प्रवेश नहीं कर सकते ।

अपनी स्त्री, बच्चे, सम्पत्ति आदि पर जो प्रम है, सबको एकत्र कर भगवान् के चरणों में लगाओ। इससे क्षणमात्र में ईश्वर का साक्षात्कार कर सकोगे ।

भगवान् इस विश्व के सूत्रधार हैं और इसके पीछे छिपे हुए हैं। वे आपके हृदय में भी निवास करते हैं। वे कर्माध्यक्ष हैं। वे आपके प्रत्येक कर्म का फल देने वाले हैं। उनका नाम गाते हुए, उनका मन्त्र-पाठ करते हुए और सभी कर्मों का फल उन्हीं को सर्पित करते हुए, उन्हीं में निवास करो।

आपको अपने गुरु और शास्त्रों के उपदेशों में, तेजस्वी और सुस्थिर वैराग्य में, मुक्ति की उत्कट अभिलाषा में अटूट इच्छा-शक्ति, दृढ़ निश्चय, गम्भीर धैर्य, लौह सङ्कल्प, जोंकवत् संलग्नता, बालवत् सरलता, घड़ी के समान नियमितता आदि गुणों में गहरी और प्रबल श्रद्धा रखनी चाहिए। तभी आप जीवन के लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त कर सकोगे ।

भगवत्कृपा के बिना संसार-सागर पार करना सम्भव नहीं है; इसलिए जप, कीत्तंन, उपासना और समर्पण-भाव से उनकी कृपा प्राप्त करो।

यदि आपमें नम्रता नहीं है, यदि आप भगवान् के चरणों में असूया-रहित, सम्पूर्ण और प्रतिफलासक्तिशून्य समर्पण नहीं करोगे तो फिर भगवत्कृपा कैसे प्राप्त कर सकोगे ?

सुस्थिर चित्त से भगवान् की महिमा का गान करो। एकाग्र मन से माला फेरो। अविचल श्रद्धा से नाम-जप करो। पूर्ण अवधान के साथ रामायण और भागवत की कथा सुनो। नासिक, वाराणसी. हरिद्वार, ऋषिकेश, प्रयाग आदि तीर्थ-क्षेत्रों की यात्रा करो। साधु-सङ्गति खोजो। निष्ठा के साथ खोजो । केवल प्राकृतिक सौन्दर्य के दर्शनमात्र से सन्तोष मत करो। साधु-सन्तों से आध्यात्मिक शिक्षा ग्रहण करो और उस पर अभ्यास करो । सदाचारी बनो। तब संसार-सागर को आसानी से पार कर सकोगे ।

प्रारम्भ में नित्य दो बार प्रातः ४ बजे और शाम के ८ बजे प्रेम-औषध पीओ। एक चम्मच श्रद्धा लो। तीन चम्मच प्रेम और आधा चम्मच भाव के साथ मिलाओ। इसे दो चम्मच कीर्तन और एक आउंस जप में मिलाओ। धीरे-धीरें प्रत्येक की मात्रा बढ़ाते जाओ। तब जन्म-मरणरूपी रोग से मुक्ति और अमरत्व की प्राप्ति के लिए उत्तम और अचूक औषधि तैयार होगी ।

रात्रि में और प्रातःकाल नाम-स्मरण और स्वल्प कीत्तंन का अभ्यास करो। आपकी आध्यात्मिक साधना के लिए यह पर्याप्त है। प्रातः चार बजे उठो। यदि चार बजे उठने की आदत नः हो तो आदत डालो। नित्य गीता के कुछ श्लोकों का पारायण करो ।

प्रवास में रहने पर भी जप और गीता का स्वाध्याय चालू रखना चाहिए। क्या प्रवास में खाते-पीते नहीं ? अपना पालन-पोषण करने वाले उस अन्तर्यामी प्रभु के प्रति कृतघ्न न बनो ।

थोड़े समय तक नाम-जप करो। फिर भगवान् के किसी रूप का ध्यान करो। फिर कुछ काल तक उनके गुणों का ध्यान करो। इस प्रकार प्रत्येक गुण के सम्बन्ध में यथा-शक्ति अपना विचार विस्तृत करो ।

सङ्कीर्तन को अपना दैनिक आहार बनाओ। राम-नाम की शरण जाओ; वही आपका विश्राम-स्थान और आश्रय बने । सत्सङ्ग को ही संसार-सागर को पार करने की नाव समझो ।

यदि आप अपने आध्यात्मिक गुरु अथवा किसी सिद्ध पुरुष के मार्ग-दर्शन में रहते हुए अपने अवकाश को श्रेष्ठ आध्यात्मिक बातावरण में बिता सको तो आध्यात्मिक प्रगति शीघ्र कर सकोगे। तब प्रगाढ़ ध्यान और समाधि में शीघ्र ही प्रवेश करोगे । ध्यान-योग की प्रक्रिया सरल होगी। आध्यात्मिक मार्ग में कुछ निश्चित अवस्था प्राप्त हो सकेगी । तदनन्तर अपने घर में स्वतन्त्र रूप से ध्यान में आगे प्रगति कर सकोगे ।

एक बार मुर राक्षस ने देवताओं पर आक्रमण किया। देवता अपनी रक्षा के लिए भगवान् हरि के पास पहुँचे। भगवान् ने उस राक्षस के संहार के लिए योगमाया को भेजा। योगयाया ने भगवान् की आज्ञा से उस राक्षस का संहार किया। भगवान् हरि ने योगमाया से कहा- "हे योगमाया, जो एकादशी का व्रत रखते हैं, उनके पाप नष्ट होंगे। तुम्हारा नाम एकादशी रहेगा।"

ब्रह्मा के मस्तक से स्वेद-कण नीचे टपक पड़ा। उससे एक राक्षस पैदा हुआ। उसने ब्रह्मा से निवेदन किया- "भगवन्, मेरे निवास के लिए मुझे कोई स्थान दीजिए।" ब्रह्मा ने कहा- "हे राक्षस, तुम एकादशी के दिन खाये जाने वाले चावलों में जा बसो और उन्हें खाने वाले व्यक्ति के उदर में कृमि बन जाओ ।"

पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय और मन इन ग्यारह इन्द्रियों को विषय-पदार्थों से हटा कर मन को परमेश्वर के चरण कमलों में स्थिर करो। यह सही एकादशी है। एकादशी के दिन उपवास करने से अति-सरलता से भगवान् में मन की एकाग्रता सघती है।

इन्द्रियों के द्वार बन्द कर दो। विचार, भावनाओं और अनुभूतियों को स्तव्ध करो। प्रातःकाल के समय निश्चल और निविकार हो कर बैठो। बाहरी दृश्यों और रङ्ग-बिरङ्गी रोशनी की चिन्ता न करो। चित्त को ग्राहयात्मक रखो। भगवान् की सन्निधि अनुभव करो। मौन में शाश्वत शान्ति का सुख पाओ ।

शुचिता और एकाग्रता के साथ पूरी रामायण के १०८ पाठ करो। तीन घण्टे प्रति दिन पढ़ोगे तो तीन वर्ष में यह पूरे हो सकते हैं। महीने में तीन बार पारायण हो सकता है। इससे सिद्धि की प्राप्ति होगी और भगवान् रामचन्द्र के दर्शन होंगे ।

किसी-किसी दिन जप, ध्यान और कठोर तपस्या करो। प्रातः चार बजे ध्यान के कमरे में चले जाओ। उस दिन निर्जल उपवास रखो। कुछ भी खाना-पीना नहीं। ध्यानस्थ रहो और अपने इष्टमन्त्र को बार-बार जपते जाओ। अगले दिन आठ बजे किवाड़ खोलो। यह कार्यक्रम रविवार को रख सकते हो। वह सुविध। जनक रहेगा। मनोवृत्तियों और भावनाओं का परीक्षण करो। मैं आपको विश्वास दिलाता है कि इससे आपको असा-धारण आध्यात्मिक अनुभव प्राप्त होंगे। आध्यात्मिक साधना में हढ़ रहो; निष्ठावान् रहो।

एक दश दिन की या गरमी की छुट्टियों में 'फमरे में बैठो। किवाड़ साधना है। क्रिसमस की, यह की जा सकती है। बन्द रखो। किसी से किसी को मिलना नहीं। किसी की सुनना नहीं। दुर्गा-पूजा की एक हवादार बोलना नहीं। नित्य ४ बजे प्रातः उठो। महामन्त्र या गायत्री का जप शुरू करो। ओङ्कार या अपने गुरु-मन्त्र का भी जप कर सकते हो। इसे सायङ्काल तक करते रहो। फिर जप प्रारम्भ करो। रात के ११ बजे * सोओ। जप के साथ-साथ ध्यान भी कर सकते हो। उसी कमरे के अन्दर स्नान, भोजन आदि सब व्यवस्था कर लो। सुविधा हो तो दो कमरे रखो - एक स्नानादि के लिए और एक ध्यान के लिए। इस साधना को वर्ष में चार बार करो। यह अभ्यास ३० या ४० दिन तक जारी रखा जा सकता है। मैं विश्वास दिलाता है कि इससे अद्भुत परिणाम दीखेंगे और विभिन्न अनुभव आयेंगे। आप समाधिस्थ होंगे।

उच्च श्रेणी के साधकों के लिए एक साधना है। अध्यात्म-मार्ग में शीघ्र और ठोस प्रगति करने में यह अत्यन्त सहायक है। प्रातः ४ बजे उठो। स्नान करो अथवा हाथ-पैर धो लो। जो आसन आपके लिए अभ्यस्त हो, उसमें बैठ कर जप शुरू करो। १४ घण्टे तक अन्न-जल न ग्रहण करो। उस आसन से उठो नहीं। सरलता से निभा सको तो आसन बदलना भी नहीं। सन्ध्या-समय जप समाप्त करो। सूर्यास्त के अनन्तर दूध और फल लो। गृहस्थ लोग छुट्टी के दिनों में इसे कर सकते हैं। सप्ताह में, पक्ष में या महीने में एक बार यह साधना करो।

गरीबों और रोगियों की भी सेवा करो। महात्माओं की सेवा करो। भक्ति का विकास करोः। सत्सङ्ग करो। हाथ में फल ले कर साधु-संन्यासियों को खोजो। जप करो। राम का नाम लो।
ॐ गाओ। सर्वदा और सर्वत्र भगवान् की उपस्थिति अनुभव करो। सत्, चित् और आनन्द में रहो। मौन धारण करो। ज्ञान अपने-आप प्राप्त होगा। भगवान् हरि का भक्त सांसारिक तुच्छ पदार्थों को त्याग कर भगवान् के दिव्य ऐश्वर्यों को प्राप्त कर लेता है।

हे संसारियो ! भगवान् का दर्शन कोई कठिन नहीं है। उन्हें प्रसन्न करना भी कोई कठिन नहीं है। वे सर्वत्र, सबमें हैं। वे आपके हृदय में भी हैं। भगवान् के साकार और सगुण रूप का चिन्तन कीजिए।

प्रह्लाद, नारद, पराशर, पुण्डरीक, रुक्माङ्गद, अजुन, वसिष्ठ आदि भक्तों का जीवन और उनकी महिमा स्मरण कीजिए। इससे आपको स्फूत्ति मिलेगी, आपका मन प्रसन्न होगा और आपका हृदय भक्ति से परिपूर्ण होगा।

भगवान् कृष्ण के भक्तों को वाणी का मौन धारण करना चाहिए (केवल होंठ हिलेंगे) तथा 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' का मानसिक जप नित्यप्रति करना चाहिए। उनको अपने हृदय में मुरलीधर श्रीकृष्ण की आकृति स्थापित कर लेनी चाहिए । यही सारे विचारों की पृष्ठभूमि रहनी चाहिए। चलते-फिरते, काम करते सर्वदा गाते रहना चाहिए, "श्रीकृष्ण गोविन्व हरे मुरारे, हे नाथ नारायण वासुदेव ।" जब भी मन बेचैन हो, तुरन्त यह धुन गानी चाहिए। श्रीमद्भागवत का अध्ययन करना चाहिए। शीघ्र ही दर्शन और साक्षात्कार होगा। शिव-भक्तों को 'ॐ नमः शिवाय' का जप करना और शिवपुराण का पाठ करना चाहिए। गाना चाहिए- "जय-जय महादेव शम्भो, काशी विश्व-नाथ गङ्ग" अथवा "ॐ शिव-शिव शङ्कर, हर-हर शङ्कर, जय-जय शङ्कर, नमामि शङ्कर" अथवा "शिवाय नमः ॐ, शिवाय नमः ॐ, शिवाय नमः ॐ नमः शिवाय ।"

ध्रुव और प्रह्लाद के समान उत्कटता के साथ प्रार्थना करो। राधा के समान उनका गुणगान करो। मीरा के समान एकान्त में उनके लिए रोओ। महाप्रभु गौराङ्ग के समान कीर्तन करो। बङ्गाल के रामप्रसाद के समान भजन गाओ। चैतन्य महाप्रभु के समान दिव्य भाव में मस्त हो कर नाचो और भाव-समाधि प्राप्त करो। वाल्मीकि, तुकाराम, रामदास आदि की तरह उनका नाम लो।

प्रत्येक अवकाश के दिनों में प्रयाग, ऋषिकेश, वाराणसी, कनखल, हरिद्वार, नासिक, भद्राचल, अयोध्या, वृन्दावन, पण्ढर-पुर या नवद्वीप-कहीं-न-कहीं जाओ। पूरी एकाग्रता के साथ अधिक नाम-जप करो । साधु-सन्तों की खोज करो, उनका आदर-सत्कार करो और भाव तथा निष्ठा के साथ उन्हें फल-फूल समर्पण करो। उनसे उपदेश प्राप्त करो और उसके अनुसार दृढ़ता से चलो। उनके साथ कुछ दिन बिताओ ।

भक्ति को विकसित करने के पाँच साधन हैं। वे हैं- भागवतों की सेवा, भगवन्नाम-स्मरण, सत्सङ्ग और सङ्कीत्तंन, भागवत या रामायण का पाठ और पण्ढरपुर, चित्रकूट, वृन्दावन या अयोध्या में कुछ समय निवास ।

जहाँ सत्सङ्ग न हो, साधु-सन्त न रहते हों, सङ्कीर्त्तन नहीं चलता हो, भगवदुपासना न होती हो, वह स्थान भले ही मनो-हारी दृश्यों से भरापूरा हो; तो भी निवास के योग्य नहीं है।

भक्त के मन में यदि भगवान् के दर्शन की लालसा उत्कट होती है तो उसका पहला लक्षण है कि उसे भूख-प्यास नहीं सताती, वह खाना-पीना भूल जाता है। माँ जब लड़की के विवाह की तैयारी में लगती है तब खाना-पीना सब भूल जाती है, तिस पर भी वह प्रसन्न और स्वस्थ रहती है। जब कोई किसी नाटक या सङ्गीत-गोष्ठी में जाता है तो भूख-प्यास का ध्यान नहीं रहता; क्योंकि उसका मन सुन्दर चित्र या गाने में लीन रहता है। किसी का लड़का खो गया हो तो उसे भी भूख-प्यास नहीं लगती है। जब भी आप देखें कि खाना तैयार होने में कुछ विलम्ब होने पर या अच्छा स्वादिष्ट भोजन न मिलने पर आप अपना आपा खो देते हैं तो निश्चित समझिए कि अभी तक आपके अन्दर भगवान् की भक्ति पैदा नहीं हुई है। यह जाँच की उत्तम विधि है ।

साधक के मन में भगवत्साक्षात्कार की विकलता, तीव्रता और उत्कटता वैसी ही रहती है, जैसी एक मछली को पानी में लौट जाने के लिए होती है या डूबते हुए लड़के को ऊपर आने के लिए होती है अथवा घर में आग लग जाने पर घर के मालिक को दमकल की खोज के लिए होती है। ऐसी तीव्रता होने पर अगले क्षण ही भगवान् प्रकट होंगे, इसमें संशयं नहीं है।

परमेश्वर को भेंट चढ़ाने में आपमें शबरी की तरह हार्दिकता नहीं है। आपने उनको उस भाव से नहीं पुकारा जिस भाव से द्रौपदी ने उन द्वारकाधीश को पुकारा था या गजेन्द्र ने भगवान् हरि को पुकारा था। इसीलिए आप अपने प्रियतम को पा नहीं सके हैं। भाव की गहराई साधिए। आप तत्काल परमेश्वर का दर्शन कर सकेंगे ।

आप प्रारम्भ में भगवान् के साथ बातचीत कर सकेंगे भौतिक शरीर में उनके दर्शन कर सकेंगे, किन्तु आपका ज्ञान विश्वव्यापी हो जाने पर यह वातचीत का क्रम समाप्त हो जायगा । तब मौन की या हृदय की भाषा में आपको आनन्द आयगा। आप वैखरी से निकल कर मध्यमा, पश्यन्ती और परा की ओर धीरे-धीरे बढ़ेंगे और अन्त में ध्वनिशून्य ओङ्कार में या बातचीत में आप लीन हो जायेंगे ।

"न धनं न ज्ञानं न सुन्दरों कवितां वा जगदीश कामये ।
मम जन्मनिजन्मनीश्वरे भवतु तद्भक्तिरहेतुकी त्वयि ।।"

"हे जगदीश, मुझे न घन की कामना है, न ज्ञान की और न सुन्दर कविता की ही। जन्म-जन्मान्तर में भी आपकी अहेतुकी भक्ति मुझमें बनी रहे", इसको बारम्बार उच्चारण कीजिए।

भगवान् आपके बाहरी दिखावे को नहीं चाहते हैं। वे आपका हृदय चाहते हैं। फिर एक बार आन्तरिक भाव से कहिए-"प्रभु ! आपकी ही इच्छा पूर्ण हो। मैं आपका है। सब-कुछ आपका ही है।" आप सच्चे रहिए। उनके प्रेम में रोइए। भक्ति-भाव से उन्हें एकान्त में पुकारिए। सारे वस्त्र अश्रुओं से भीग जाने दीजिए।

प्रेम यदि स्वार्थी रहा तो उसमें पक्षपात और अन्याय रहेगा। स्वार्थी प्रेम बदलता रहता है। वह स्थिर नहीं रहता, समाप्त भी हो जाता है।

स्त्री, बच्चे और अन्यान्य पदार्थों पर से प्रेम हटा दें, तभी आप भगवान् से प्रेम कर सकेंगे।

जिस उत्साह और तीव्रता के साथ आप लक्ष्मी, पत्नी, पुत्र आदि की सेवा करते हैं, यदि उसका एक अंश भी सच्चे हृदय से भगवान् के लिए दें तो अगले क्षण हो आपको भगवान् मिल जायेंगे। परमेश्वर के प्रति मुहूर्तमात्र का घनिष्ठ प्रेम, विरहाग्नि का ताप, मस्ती और आतुरता उन्हें प्रत्यक्ष कराने के लिए पर्याप्त है।

ईश्वर से आप अटूट और अमिट प्रेम करने लगें तो सुख, सम्पत्ति, सौन्दर्य और सत्ता आदि से जो प्रेम है, वह धीरे-धीरे हट जायगा। भगवान् का प्रम ही एक ऐसा प्रम है जो शाश्वत रहता है। भगवत्प्र म से अपने शरीर के प्रति राग समाप्त होगा और आत्मोत्सर्ग की भावना तीव्र हो उठेगी ।

एक साधक ने लिखा है- "प्रातःकाल तीन बजे किसी ने मेरे घर का दरवाजा खटखटाया। मैं जाग गया और किवाड़ खोले । बाहर देखा तो शिर पर मुकुट धारण किये साक्षात् श्रीकृष्ण सामने खड़े थे। वे तुरन्त तिरोहित हो गये। उनको खोजते हुए मैं गली में गया; किन्तु उन्हें न पा सका। घर लौट आया और फिर दर्शन पाने की आशा में पौ फटने तक दरवाजे पर बैठा रहा।" नींद में उठ कर चल पड़ने की घटनाएँ अक्सर सुनने में आती हैं। खड़े-खड़े या चलते हुए भी वे सपने देखा करते हैं। यह उपयुक्त घटना भी बिलकुल यही हो सकती है। आपको पूर्ण सावधानी से देखना चाहिए कि जो भी आध्यात्मिक अनुभव आपको हो रहा है, वह केवल स्वप्न ही है या वास्तविक है। भगवान् श्रीकृष्ण का दर्शन इतना सस्ता नहीं है। साधक प्रायः प्रारम्भ में ऐसी भूलें करते हैं।

आपमें अपने चरम लक्ष्य को पाने की सुदृढ़ इच्छा हो, आध्यात्मिक जीवन का ध्येय सिद्ध करने का परिपक्व निश्चय हो तो एकाध बार विफल होने पर भी आप निराश नहीं होंगे, उठ कर फिर प्रयत्न करेंगे। अपने में ईश्वर को देखिए। अपने में ईश्वरीय भावों को आने दीजिए। प्रत्येक पग पर भगवत्कृपा पर विश्वास रखिए। प्रत्येक क्रिया में ईश्वर का मार्ग-दर्शन अनुभव कीजिए । दिव्य सत्य के लिए प्रबल आकांक्षा रखिए। भगवत्साक्षात्कार और जाज्वल्यमान् वैराग्य के लिए उत्कट इच्छा का विकास कीजिए । सभी प्रकार की प्रापञ्चिक आकांक्षाओं और तुच्छ इच्छाओं को त्यागिए । यदि आपने इसका समुचित रूप से पालन किया तो आपमें दिव्य ज्योति उतर आयेगी । योग में आपकी अच्छी प्रगति होगी। अपने हृदय में, सभी आकृतियों में, सभी पदार्थों में, सभी भावनाओं में, सभी विचारों और हल-चलों में भगवान् की उपस्थिति को पहचानिए । निश्चल भाव से साधना करते जाइए। ईश्वर-कृपा के साक्षात्कार में विलम्ब हो तो हताश न होइए। धैर्य न खोइए । सन्तुष्ट रहिए। आप योग की उच्च स्थिति की, अमरता और शाश्वत आनन्द की प्राप्ति में अवश्य सफल होंगे।

(२) परमेश्वर में श्रद्धा

तर्क-शक्ति अपर्याप्त है। श्रद्धा सर्वशक्तिमती है। बलहीन तर्क सबल तर्क के सामने टिक नहीं सकता। श्रद्धायुक्त भक्त सुदामा की तरह, भगवान् के अत्यन्त अन्तरङ्ग स्थान तक पहुँच सकता है।

रेखागणित में क्या कई सिद्धान्तों को मान कर नहीं चलना पड़ता ? शिक्षक कहता है- "सरल रेखा की लम्बाई होती है, चौड़ाई नहीं। बिन्दु वह है जिसकी लम्बाई-चौड़ाई दोनों नहीं होती हैं; परन्तु स्थान होता है।"

क्या यह वास्तव में ठीक है? इन बातों पर कभी भी कोई विवाद कर सकता है; परन्तु इनको चुपचाप मान कर काम चलाया जाता है। क्या यह अन्ध-विश्वास नहीं है ? यह भी आप कैसे जानते हैं कि अमुक ही आपके पिता हैं? केवल

माँ ही जान सकती है कि आपके पिता कौन हैं? वह कहती है कि ये तेरे पिता हैं। आप उसे मान लेते हैं। क्या यह अन्ध-विश्वास नहीं है ?

बादलों के कारण सूर्य दीखें नहीं तब भी सूर्य का अस्तित्व तो है ही। आपके मस्तिष्क के अन्दर मन है। तारों के अन्दर बिजली है, झिल्ली के अन्दर बच्चा है, दूध के अन्दर मक्खन है, लकड़ी के अन्दर आग है, फिर भी आप इन्हें देख नहीं सकते । आप देख नहीं सकते तब भी वे हैं ही। इसी प्रकार विश्व के प्रत्येक पदार्थ के रूप में जो भगवान् हैं, उन्हें आप चित्त के दोषों के कारण देख नहीं सकते हैं, फिर भी वे तो हैं ही।

दिन के समय तारे नहीं दीखते हैं, फिर भी हम जानते हैं कि तारे हैं। इसी प्रकार इन चर्मचक्षुओं से हम भगवान् को यद्यपि देख नहीं सकते हैं, फिर भी हम अनुमान कर सकते हैं कि इन नाम-रूपों के पृष्ठ-भाग में भगवान् छिपे हुए हैं।

कभी-कभी आप किङ्कर्तव्यविमूढ़ से हो जाते हैं या आर्थिक सङ्घट में घिर जाते हैं। ऐसे समय आपको किसी रहस्यमय रूप से सहायता प्राप्त हो जाती है। ठीक समय पर धन मिल जाता है। प्रत्येक को ऐसा अनुभव हुआ होगा। तब वह आनन्द से कहता है- "निश्चय ही भगवान् के तरीके रहस्यमय होते हैं। अब मैं ईश्वर पर विश्वास करता है। अब तक मुझे ईश्वर पर विश्वास नहीं था।"

चूंकि परमेश्वर, ब्रहम या आत्मा इन्द्रियातीत हैं, मन की पहुँच से परे हैं; इसलिए उनका वर्णन करना या प्रदर्शन करना सम्भव नहीं है, तो भी कुछ अनुभूत घटनाओं और दैनिक जीवन के अनेक अनुभवों के द्वारा उनका अनुमान किया जा सकता है। कोई महिला तीसरी मञ्जिल पर से गिर पड़ी। नीचे नुकीले पत्थरों का ढेर था। उसे गहरी चोट आनी चाहिए थी। लेकिन आश्चर्य की बात है, वह बच गयी। उसने स्वयं कहा- "किसी के अदृश्य हाथों ने मुझे कस कर पकड़ लिया। कोई रहस्यमयी शक्ति थी जिसने मुझे बचाया।" ऐसी घटनाएँ कम नहीं हैं।

एक वकील थे। उन्हें ईश्वर पर विश्वास नहीं था। उन्हें डबल निमोनिया (क्लोम-पाक) हो गया। उनकी श्वास बन्द हो चुकी थी। उनकी पत्नी, बच्चे आदि सभी रोने लगे; परन्तु एक अद्भुत चमत्कार हुआ। यमदूत आये और उन्हें यमलोक ले गये । यमराज ने दूतों से कहा- "यह आदमी मुझे नहीं चाहिए था । तुम लोग गलत व्यक्ति को ले आये हो। इसे वापस भेज दो।" घण्टेभर के बाद वे फिर श्वास लेने लगे। उन्हें यह प्रत्यक्ष अनुभव हुआ कि उन्होंने यह शरीर छोड़ा, यमलोक गये और वापस इस शरीर में आये। इस आश्चर्यजनक घटना से उनका स्वभाव एकदम बदल गया। वे भगवान् में विश्वास करने लगे और एक निष्ठावान् धार्मिक व्यक्ति बन गये। वे अभी भी उत्तर प्रदेश में रहते हैं।

दूसरे भी एक वकील का ऐसा ही अनुभव है; परन्तु उसमें कुछ अन्तर है। वे भी नास्तिक थे। यमदूतों ने उन्हें भी यमलोक में उपस्थित किया। वकील ने यमराज से कहा- "मैंने अभी मृत्युलोक का काम पूरा नहीं किया है। अभी कुछ और उपयोगी कार्य मुझे करने हैं। कृपया मुझे जीवित रहने दीजिए।" उन्हें बर मिल गया। इस अद्भुत घटना

ने उन्हें बड़े आश्चर्य में डाल दिया। फिर उनका स्वभाव भी बिलकुल परिर्वात्तत हो गया । तुरन्त उन्होंने अपना कानूनी धन्धा छोड़ दिया। अभी तक वे अपना शेष जीवन दक्षिणी भारत में सेवा और ध्यान में बिता रहे हैं।

नामदेव के पिता सेठ दामा जी रोज पण्ढरपुर में विठोवा के दर्शन के लिए जाते और उन्हें फूल या पक्वान्न का भोग चढ़ाते थे। एक बार कुछ आवश्यक कार्य से वे दूसरे गाँव गये थे। नामदेव की माँ गोणाबाई ने नामदेव के हाथ में नैवेद्य दे कर विठोबा को भोग चढ़ा आने के लिए भेज दिया। नामदेव ने भोग को भगवान् की मूत्ति के सामने रख कर ग्रहण करने की प्रार्थना की। जब उन्होंने देखा मूत्ति चुप है तो दुःख के कारण फूट-फूट कर रोने लगे। तब भगवान् ने प्रत्यक्ष मनुष्य के रूप में प्रकट हो कर उस बाल-भक्त को सन्तोष देने के लिए नैवेद्य को वास्तव में ग्रहण किया। श्रद्धा और भक्ति से अद्भुत चमत्कार होते हैं। भगवान् भक्तों के दास बन जाते हैं।

संसार के प्रत्येक काम के पीछे निश्चय ही भगवान् का हाथ होता है। उसको पहचानो। प्रभु सर्वदा आपके साथ हैं। आपके प्रत्येक कार्य और विचार की वे देखभाल करते हैं। बच्चे ऊपरी मञ्जिल से गिर पड़ते हैं; पर आश्चर्य की बात है, वे बच जाते हैं। मोटर की दुर्घटनाओं और इसी प्रकार के कई दैवी सङ्कटों में लोग बड़े रहस्यपूर्ण ढङ्ग से बच जाते हैं। इन सबमें भगवान् का हाथ निश्चित रूप से है। आप किसी अत्यन्त गम्भीर दुःस्थिति में हैं; अप्रत्याशित माध्यम द्वारा भगवान् आपको गुप्त रूप से सहायता पहुँचा देते हैं। उस समय आप उनकी उपस्थिति और सहायता अनुभव करते हैं; परन्तु ज्योंही आपकी जेब में चार पैसे आये कि उन्हें भुला देते हैं।

तर्क मत करो। तर्क से कुछ नहीं मिलेगा। अपने गुरु या महात्मा के सम्मुख शान्त बैठ कर घण्टेभर घ्यान करो। आत्मा को आत्मा से बातें करने दो। आपके समस्त संशय स्वयमेव दूर हो जायेंगे । अच्छी अनुभूति मिलेगी। आपको अनुपम शान्ति का अनुभव होगा। आध्यात्मिक विकास का यही मार्ग है।

(३) प्रार्थना

भगवत्-सान्निध्य के लिए मनुष्य का प्रयास ही प्रार्थना है। वह प्रचण्ड अध्यात्म-बल है। प्रार्थना की शक्ति भी उतनी ही सत्य है जितनी कि गुरुत्वाकर्षण की शक्ति ।

प्रार्थना के लिए महान् पाण्डित्य या योग्यता की आवश्यकता नहीं है। इसमें केवल आपका भाव अपेक्षित है। एक सुयोग्य विद्वान् के धारावाही शब्दों और व्याख्यानों की अपेक्षा एक अशिक्षित व्यक्ति के नम्रतापूर्ण, शुद्ध अन्तःकरण से निकले हुए कुछ शब्द भगवान् को अधिक प्रिय लगते हैं।

प्रार्थना-काल में आप भगवान् के साथ एकलय हो जाते हैं। आप अक्षुण्ण वैश्व शक्ति के भण्डार (हिरण्यगर्भ) से सम्बन्धित होते हैं और इस भाँति उनसे ओज, शक्ति, प्रकाश तथा बल प्राप्त करते हैं।

भगवान् से दिव्य ज्योति के अवतरण के लिए कातर प्रार्थना करो। उनकी दया की याचना करो। उनके विरह में रोओ। उनके सहवास के लिए मचलो। दिव्य प्रम की आग में मन को तपाओ । प्रगाढ़ शान्ति में विलीन हो जाओ। भक्ति की अग्नि में शरीर को जला दो और प्रेमामृत पीओ। दिव्य प्रेम की मदिरा पान करके प्रमत्त हो जाओ तथा अमरत्व और परमानन्द का उपभोग करो ।

नित्य प्रार्थना और सेवा के द्वारा भगवान् के साथ हृदय की एकलयता साधो । उनके सामने अपने हृदय को खोल कर रख दो। कोई बात न छिपाओ। एक बच्चे की तरह उनसे वार्तालाप करो। नम्र और सरल रहो। अपने पापों के लिए आद्र हृदय से उनसे क्षमा-याचना करो। अपनी कृपा बरसाने के लिए उनसे आग्रह करो। मनुष्य की सहायता का अवलम्ब न लो। एकमात्र ईश्वर पर ही निर्भर रहो। आपको सब-कुछ प्राप्त होगा। उनके दर्शन भी होंगे।

नित्य प्रार्थना से जीवन में क्रमिक परिवर्तन होता है, जीवन ढलता है। प्रार्थना आपकी प्रकृति ही बन जानी चाहिए । प्रार्थना की यदि आदत हो जाय तो बिना प्रार्थना के आप जी नहीं सकते ।

नियमित रूप से प्रार्थना करने वाला मनुष्य उस आध्यात्मिक यात्रा में चल पड़ा है जो शाश्वत शान्ति और परम सुख के राज्य को जाती है।

प्रार्थना करते समय पहले मन में भगवान् के रूप का ध्यान करना चाहिए और फिर उनके नाम, मन्त्र और स्तोत्रों का पाठ करना चाहिए । स्तोत्रों के पाठ से मन उन्नत होता है और प्रेरणा प्राप्त होती है; भगवान् के साथ मन का मेल सघता है और मन में आनन्द, शान्ति और सुख का निर्माण होता है। प्रतिदिन भजन-गान द्वारा भगवान् की कृपा प्राप्त करो और उनमें ही निवास करो ।

प्रह्लाद के शिर पर उबलता तेल डाले जाने पर प्रार्थना के ही बल से ठण्ढा हो गया। मीरा के काँटों की सेज को फूल की सेज में परिर्वात्तत करने वाली, साँप को फूलमाला में बदल देने वाली प्रार्थना ही थी।

द्रौपदी ने अनन्य भाव से प्रार्थना की। श्रीकृष्ण को उसकी रक्षा के लिए द्वारका से दौड़ कर आना पड़ा। गजेन्द्र ने हृदय से पुकारा. भगवान् हरि को उसको बचाने के लिए सुदर्शन-चक्र के साथ आना पड़ा ।

किसी स्वार्थं अथवा भौतिक सुख-सुविधाओं के लिए प्रार्थना मत करो। भगवान् की दया के लिए प्रार्थना करो। प्रकाश, चित्त-शुद्धि और मार्ग-दर्शन के लिए प्रार्थना करो।

अनन्य भक्ति और आत्मसमर्पण द्वारा भगवान् की कृपा प्राप्त की जा सकती है। परमेश्वर कितने दयालु हैं! श्रीकृष्ण अर्जुन के सारथी बने, उन्हें गीता सुनायी, द्रौपदी और मीरा की रक्षा की, अन्धे सूरदास को रास्ता दिखाया, दामाजी के लिए नवाब की हुण्डी सकरायी तथा नरसी मेहता की रकम चुकायी। उनके चरण-कमलों में अपने हृदय और मन को समाहित करो। उनकी स्तुति करो । उनका नाम-स्मरण करो। वे आपके लिए सब-कुछ करेंगे। भगवान् कृष्ण अपने भक्तों के दास हैं।

प्रार्थना से मन उन्नत होता है। उससे चित्त शुद्ध होता है। उसका सम्बन्ध परमात्मा के यशोगान से होता है। उससे मन सन्तुलित और ईश्वर-लीन रहता है। प्रार्थना की पहुँच वहाँ तक है जहाँ तक बुद्धि या विचार नहीं पहुँच सकते। प्रार्थना से पहाड़ हिल जाता है; अद्भुत चमत्कार होते हैं। प्रार्थना भक्त को भय और मृत्यु से मुक्त करती है, भगवान् के समीप लाती है, दिव्य ज्ञान की प्राप्ति करा देती है तथा उसको अमरता एवं आनन्द-मयता का अनुभव करा देती है।

प्रार्थना से मन और शरीर में अद्भुत शक्ति का सञ्चार होता है, चित्त शुद्ध होता है, बुद्धि सूक्ष्म और तेज होती है, शरीर और मन में स्वस्थ आध्यात्मिक तेज प्रवाहित होता है। उससे विचार-शक्ति विकसित होती है। सच्ची और निष्ठापूर्ण प्रार्थना से असाध्य रोग भी अच्छे हो जाते हैं।

प्रार्थना से अध्यात्म-लहरियों का सञ्चार होता है और मन में शान्ति स्थापित होती है। प्रार्थना की शक्ति अनिर्वचनीय है। उसकी महिमा अगम्य है। सच्चे भक्त ही उसके लाभों और गुणों से परिचित होते हैं। प्रार्थना श्रद्धा, विश्वास और निष्काम भाव तथा भक्ति-स्निग्ध हृदय से करनी चाहिए। हे अज्ञानी मानव ! प्रार्थना की शक्ति के बारे में विवाद मत करो। तुम भ्रम में बह जाओगे। अध्यात्म में विवाद का कोई स्थान नहीं है। बुद्धि सीमित और दुर्बल साधन है। उस पर निर्भर न रहो। अपने अन्दर के अज्ञानान्धकार को प्रार्थना-ज्योति से दूर करो।

(४) नमस्कार

नमस्कार का अर्थ नमन, झुकना है। आत्म-साक्षात्कार के के लिए यह सरल साधन है। श्रीकृष्ण ने उद्धव से कहा- "मुझे सर्वत्र देखो।" सामने जो भी आवे - चाहे वह मनुष्य हो अथवा कुत्ता-उसे प्रणाम करो। इससे शीघ्र आसानी से और अवश्य-मेव ही आत्म-साक्षात्कार होगा। गधे को भी प्रणाम करना चाहिए; क्योंकि भगवान गधे के भी हृदय में हैं। सबके सामने गधे को प्रणाम करने में सङ्कोच हो तो मन-ही-मन प्रणाम करो ।

श्रीकृष्ण उद्धव से कहते हैं "लोगों के हँसने की चिन्ता मत करो, शरीर को भूल जाओ। लज्जा की चिन्ता न करो। चाहे कुत्ता हो, चाण्डाल हो, गाय हो या गधा, सबको दण्डवत् प्रणाम करो।" प्रणाम करने से मनुष्य में नम्रता आती है। प्रणाम करते समय यदि नारायण-भाव रहे तो उससे यह अनुभव करने में सहायता मिलेगी कि जो कुछ मैं देखता है, वह ईश्वर ही है तथा यह सम्पूर्ण दृश्य जगत् ब्रह्म का ही विराट् रूप है। नारायण-भाव से दूसरों को प्रणाम करने से भक्ति के विकास में पर्याप्त सहायता मिलती है। गाय, गधा, कुत्ता या जिस किसी को भी मन से प्रणाम करते हो, वह सारा भगवान् को ही प्रणाम होता है। इसे भूलना नहीं चाहिए कि प्रत्येक प्राणी और सारे पदार्थ हरि के ही रूप हैं।

प्रणाम के छः लाभ हैं। इससे अहङ्कार दूर होगा, नम्रता जाग्रत होगी, समदृष्टि का निर्माण होगा, हृदय में भक्ति-भाव भरेगा, हृदय आत्मवशी होगा और अन्ततः आत्म-साक्षात्कार की निश्चित प्राप्ति होगी। जिस किसी को प्रणाम करो - भले ही वह मुसलमान हो, ईसाई हो, चाण्डाल हो या नाई हो उसके पैर अवश्य छूने चाहिए। इससे असूया, घृणा, द्वेष तथा उच्च-नीच भाव समाप्त हो जायेंगे ।

किसी को इधर प्रणाम भी करो और उधर उसके दोषों को देखने लगो तो यह निरा दम्भ होगा। यह ठीक नहीं है। गुरुजनों के प्रति सम्मान प्रकट करने का यह ढङ्ग नहीं है।

प्रणाम व्यायाम की तरह न कर विनम्र-भाव से करो। ऐसा समझो कि आप साक्षात् नारायण अथवा शिव को ही प्रणाम कर रहे हो। प्रणाम साष्टाङ्ग होना चाहिए। घुटने, माथा, भुजा, पैर, छाती और आँख - इन छः अङ्गों सहित शरीर से भूमि का स्पर्श करो। जो सबको समान रूप से प्रणाम करता है, वह धन्य है। वह शीघ्र नारायण बन जायगा ।

(५) सङ्कीर्तन का महत्त्व

विधाता ने घोड़ा, गाय, कुत्ता, हाथी आदि असङ्ख्य प्राणियों की सृष्टि की; किन्तु उन्हें सन्तोष नहीं हुआ। फिर उन्होंने मानव की सृष्टि की। इससे उन्हें पूर्ण सन्तोष हुआ; क्योंकि एक मानव ही है जो सप्त-स्वर (स, रे, ग, म, प, घ, नि) निकाल सकता है। वह कीर्तन कर सकता है और कीर्तन के द्वारा भगवान् का साक्षात्कार कर सकता है। पशु तो एक ही स्वर निकाल सकते हैं।

मन पञ्च-विध विषयों का उपभोग करता है। हमें परमात्मा से अलग करने वाली दीवार यह मन ही है। इस शरीर की रचना करने वाले ये पाँच तत्त्व- पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश - पक्के चोर हैं। इन्होंने आत्मरूपी रत्न चुरा लिया है। आकाश इनका मुखिया है। यदि आप आकाश को नियन्त्रण में ला सकें तो शेष चारों तत्त्व आपके अधीन हो जायेंगे। इन पाँच तत्त्वों को आप स्वाधीन कर लें तो मन को भी सुगमता से अपने वश में ला सकेंगे। आकाश का गुण है शब्द। यदि आप भगवान् का नाम ताल और लय के साथ मधुर स्वर से गा सकें तो आकाश-तत्त्व आपके अधीन होगा और उसके पीछे शेष तत्त्व और मन भी आपके अधीन हो जायेंगे। यही कारण है कि भगवान् नारद से कहते हैं- "मैं न तो वैकुण्ठ में रहता है, न ही योगियों के हृदय में; परन्तु मेरे भक्तजन जहाँ मेरा नाम-सङ्कीर्त्तन करते हैं, वहीं मैं रहता है।"

जिस प्रकार दही, पापड़, अचार, अदरख की चटनी, धनिये और पुदीने की पत्ती की चटनी आदि अच्छे व्यञ्जन हैं और इनसे खिचड़ी अच्छी स्वादिष्ट बनती है, उसी प्रकार जप, सत्सङ्ग, रामायण, भागवत का पाठ आदि के मेल से सङ्कीर्तन सुमधुर होता है और भक्ति का अधिकाधिक विकास होता है।

जिनका हृदय पापों के कारण पाषाणवत् कठोर हो गया हो और जो बड़े ही नास्तिक हो गये हों, उनके हृदय को पिघलाने का सङ्घीतंन-भक्ति से बढ़ कर कोई दूसरा साधन नहीं है।

"जिस प्रकार धातुओं को गलाने का साधन अग्नि है, उसी प्रकार सब प्रकार के पापों को गलाने का उत्तम साधन है भगवन्नाम-सङ्कीर्तन ।"

(विष्णुपुराण अ० ६, श्लोक ७-६)

मेरठ में एक भूमिपति का लड़का अत्यन्त अस्वस्थ था । चिकित्सकों ने जवाब दे दिया। भक्तों ने तब उसे अपने हाथ में लिया। वे सात दिन तक रोगी की चारपाई के पास बैठ कर दिन-रात सङ्कीर्तन करते रहे। सातवें दिन रोगी स्वयं उठ खड़ा हुआ और नाम-सङ्कीर्तन करने लगा। वह पूर्ण स्वस्थ हो गया । यह है सङ्घीत्तंन की चामत्कारिक शक्ति !

सङ्कीत्तंन मन और आत्मा का. आहार है। सङ्कीर्तन दिव्यौषध है। सङ्कीर्तन जीर्ण नाड़ियों में स्फूत्ति-सञ्चार करने वाला मलहम है। सङ्कीर्तन दिव्यामृत है। ब्राहममुहूर्त में और रात को सङ्कीर्तन कर इस अमृत का पान कीजिए ।

तुकाराम एक किसान थे। वह अपना नाम लिखना तक नहीं जानते थे। हमेशा हाथ में करताल ले कर विठ्ठल-विठ्ठल कह कर श्रीकृष्ण का नाम-कीत्तंन करते रहते थे। भौतिक शरीर में ही उन्हें श्रीकृष्ण दर्शन दे गये। सङ्कीर्तन से ही उनकी दिव्यदृष्टि खुल गयी। उनके 'अभङ्ग' बम्बई विश्वविद्यालय में एम०ए० के लिए पाठ्घ-विषय हैं। अशिक्षित तुकाराम को यह ज्ञान कहाँ से प्राप्त हुआ ? सङ्कीर्तन के द्वारा ही यह ज्ञान-धारा फूट निकली । सङ्कीर्तन से प्राप्त भाव-समाधि के द्वारा ही दिव्य स्रोत तक वे पहुँच गये। क्या इससे यह स्पष्ट नहीं होता है कि भगवान् का अस्तित्व है, वे चिद्धनस्वरूप हैं और कीर्तन में अगाध शक्ति है ? रामकृष्ण परमहंस हस्ताक्षर तक करना नहीं जानते थे, परन्तु वे प्रकाण्ड पण्डितों की भी शङ्काओं का निवारण करते थे। यह दिव्य ज्ञान उन्हें कहाँ से प्राप्त हुआ था ? वे भी उस दिव्य स्रोत तक पहुँचे थे।

"तृणावपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना ।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः ॥"

"जो घास के पत्त से भी अधिक नम्र हो, वृक्ष से भी अधिक सहिष्णु हो, जो स्वयं निरभिमानी हो; किन्तु औरों का पूरा मान रखता हो, वह सर्वदा हरि का कीर्तन करने योग्य है।"

नाम-सङ्कीर्तन के साथ सङ्गीत के साज का उपयोग किया जा सकता है। सङ्गीत के साज ऐमे लोगों के हाथ में भयावह होते हैं जो अपवित्र, विषयी और असंस्कृत होते हैं; क्योंकि लीला-दर्शन के समय उनकी काम-वासना इनसे जाग्रत होगी ।

महामन्त्र इतना लम्बा है कि एक साँस में उसका उच्चारण नहीं हो सकता है; इसलिए उसके दो भाग कर लेने चाहिए। नेतृत्व करने वाला पहले गायेगा -

"हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।"

फिर शेष सभी लोग उसे दोहरायेंगे। इसके पश्चात् नेतृत्व करने वाला गायेगा-

"हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।"

और फिर लोग उसे दोहरायेंगे ।

दवाइयाँ तैयार करने वाले लोग अपनी दवाइयों के विषय में विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में भड़कीले विज्ञापन देते हैं और लोगों को अपनी औषधियों की ओर आकर्षित करने के लिए उन्हें नमूने के रूप में निःशुल्क वितरण भी करते हैं। इसी प्रकार साधु-सन्तों को भी लोगों में रुचि और नाम-महिमा के विषय में भक्ति उत्पन्न करने के लिए उपदेश देते रहना चाहिए, कथा-कीत्त'न करते रहना चाहिए। लोग जब पहुँचे हुए भक्तों की कृपा और प्रेरणा से भगवदनुभव की झलक पाते हैं तभी उनके हृदय में भक्ति की प्रेरणा उदित होती है। तब वे सब-कुछ भूल जाते हैं और सब-कुछ त्याग कर अपना शेष जीवन भगवान् और भक्तों की सेवा में समर्पित कर देते हैं।

आपको अपना सारा जीवन सङ्कीत्तन के लिए लगा देना चाहिए। अधिक सन्तान न होने दें। जीवन की सफलता की यह कुञ्जी है। माया को शक्ति गूढ़ है। मोह की शक्ति भी रहस्यमयी है, परन्तु जो सङ्कीत्तं न करने वाले हैं, उन पर इन दोनों-माया और मोह का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

(६) दान

धन-संग्रह करना एक पाप है। सारी सम्पत्ति भगवान् की है। जो व्यक्ति स्वयं को अपनी सम्पत्ति का प्रन्यासी (ट्रस्टी) तथा भगवान् को उसका स्वामी मान कर उस सम्पत्ति का उपयोग सार्वजनिक हित में करता है, वह परम सुखपूर्वक जीता है। वह मोक्ष या अनन्त शान्ति प्राप्त करता है।

प्यासी जनता पानी पिये तो गङ्गा घट नहीं जाती है; इसी प्रकार दान देने से सम्पत्ति घट नहीं जाती ।

प्रभु ईसामसीह ने कहा- "यदि दान हार्दिकता से किया गया हो तो उससे पाप-पुञ्ज दूर हो जाते हैं।" भगवान् श्रीकृष्ण ने भी कहा है- "दान से चित्त शुद्ध होता है" (गीता अ० १८-५) ।

सम्पत्ति के कारण जो मनुष्य वहक गया है, वह भगवान् के राज्य में प्रवेश नहीं कर सकेगा। इसीलिए प्रभु ईसा ने राज-कुमार से कहा - "जो-कुछ तुम्हारे पास है, उसे वेच डालो और उससे प्राप्त धन को गरीबों में बाँट कर मेरे साथ

चलो।" सम्पत्ति संग्रह करना एक महापाप है। वस्तुतः सारी सम्पत्ति के स्वामी तो एकमात्र भगवान् ही हैं। आपको अपने पास की सम्पत्ति के प्रति केवल एक प्रन्यासी (ट्रस्टी) की दृष्टि रखनी चाहिए और दूसरे लोगों में उसका विनियोग करना चाहिए । तभी आप पर परमेश्वर की कृपा होगी और आप परम गति पा सकेंगे ।

कृपणता एक महा-अभिशाप है। वह एकता की शत्रु और स्वार्थ की मित्र है। हँसी की बात देखिए। मदरासी लोग केले के पत्त पर खाते हैं। कुछ स्त्रियाँ अत्यन्त कजूस होती हैं। पत्त के गट्ठर से आजके उपयोग के लिए सड़ेनाले या सूखे बेकार पत्तों को निकालेंगी और अच्छे पत्त कल के लिए रख छोड़ेंगी। अगले दिन भी इसी तरह गट्ठर को खोलेंगी तो जो कल अच्छे थे, वे पत्ते उस दिन खराब हो जायेंगे। इस तरह वे रोज सूखे पत्तों से ही काम लेती रहेंगी। किसी भी दिन ताजे पत्तों का सुख्ख उन्हें नहीं मिलेगा। कृपणता ऐसी होती है। टार्च का उपयोग करने वाले कुछ कृपण लोग हैं जिनकी यह स्थिति है कि पुराना मसाला पूरा खतम होने तक वे नये का उपयोग नहीं करेंगे। जब तक पुराना मसाला खतम होने आयेगा, तब तक नया मसाला भी पड़े-पड़े पुराना हो जायेगा और इस तरह कभी भी उनकी टार्च में तेज प्रकाश नहीं आयेगा। कन्जूस कभी भी सुख नहीं भोग पाते-न आज, न कल। अपने धन का वे पहरा ही देते रहेंगे। कई कजूस हैं जो नया कपड़ा तक नहीं पहनते हैं। हमेशा फटे कपड़े ही पहने रहेंगे। जब नया कपड़ा निकालने के लिए पेटीं खोलेंगे तब तक पेटी के अन्दर के सारे कपड़े कीड़ों से नष्ट हुए मिलेंगे।

श्री रामकृष्ण ने एक दरिद्र मनुष्य को एक दरी दान में दी। बाद में सोचा "वह दरी देनी नहीं चाहिए थी।" वे मन ही मन पछताने लगे। उस गरीब से वह दरी वापस लेने की सोचने लगे। दान यदि ऐसा ही किया जाय तब तो कोई लाभ नहीं। उससे चित्त शुद्ध नहीं होगा। कई लोग, जिनका मन सांसारिकता से कलुषित हो चुका है, इसी प्रकार का दान किया करते हैं। ऐसे दानियों से संसार व्याप्त है।

सभी अपने प्रति अत्यन्त उदार रहते हैं। चाय या दूध लेते समय अपने लिए प्रथम श्रेणी का लेंगे, मित्रों को दूसरी श्रेणी का देंगे और अपरिचित कोई हों तो उन्हें तृतीय श्रेणी का देंगे। स्वयं वे अच्छे फल खायेंगे एवं औरों को सड़े हुए फल खिलायेंगे। ये लोग कितने कपटी हैं ! उनका मन कितना संकुचित है ! उनका सारा वैभव दयनीय ही नहीं, निन्दनीय भी है। भगवान् करे उनका हृदय विशाल हो और उनकी समझ सुधरे ! उन्हें पता नहीं कि वास्तव में वे क्या कर रहे हैं।

हमेशा मित्रों, पड़ोसियों, अतिथियों, नौकर-चाकरों और किसी को भी भोजन, फल, दूध, कपड़ा आदि जो भी कुछ देना हो, अच्छा दीजिए। इससे आपको सुख, शान्ति और सन्तोष प्राप्त होंगे। इनका आचरण कर स्वयं इनके लाभ का अनुभव करके देखिए ।

अपनी कोई बात गुप्त मत रखो। आपके घर के बरामदे में लोग बैठे हों, उनके साथ आप मिल-जुल कर कुछ न खायें और किवाड़ बन्द करके अन्दर ही अन्दर अपना काम चलायें, यह पाप है। आप जो कुछ खायें, पहले थोड़ा-सा सबमें बाँटिए, फिर स्वयं खाइए । यह सात्त्विक स्वभाव का लक्षण है।

आपके पास-भौतिक, मानसिक या आध्यात्मिक जो-कुष्ठ भी है, औरों के साथ बाँट कर उपभोग कीजिए। यह सच्चा यज्ञ है। आप विशाल बनेंगे। आपको जीवनमात्र की एकता का अनुभव मिलेगा। अद्व तानुभव की ओर आप अग्रसर होंगे।

परदे या सीमा से आप बाहर निकलिए। तब प्राणि-मात्र के साथ एकरूपता सध्ध सकेगी। इसके लिए साधना चाहिए। निष्ठा और उत्साह के साथ साधना में लगिए।

समय अति-मूल्यवान् है। प्रत्येक क्षण का सदुपयोग ईश्वर-चिन्तन और भगवत्सेवा में कीजिए। अपनी जेब में हमेशा कुछ पैसे रखिए और नित्य गरीबों को दान कीजिए। इसका अभ्यास अभी से आरम्भ कर दीजिए।

हो सकता है लोग कहें कि अमुक आदमी ने बहुत ही भला काम किया; पर भगवान् को वह पसन्द न आये ।

युद्ध में लड़ना आसान है; परन्तु अभिमान एवं प्रदर्शन-रहित दान करना कठिन है।

गरीबों में दान कीजिए, लेकिन उसकी चर्चा हर कहीं मत कीजिए। वह आत्मस्तुति होगी। 'दायें हाथ से जो दान दिया जाय, वह बायें हाथ को मालूम नहीं होना चाहिए।'

कुछ लोग दान करते हैं तो यह चाहते हैं कि उनका नाम और चित्र समाचार-पत्रों में प्रकाशित हो। यह तो तामसिक दान है। यह वास्तव में दान ही नहीं है। ऐसे लोगों की दशा निश्चय ही शोचनीय है।

प्रभु ईसा कहते हैं- "दायाँ हाथ जो करता है, वह बायें हाथ को ज्ञात नहीं होना चाहिए।" आप अपने दान या उदारता का विज्ञापन न कीजिए। लोग आपको उदारता की प्रशंसा करें, तब भी आपको फूलना नहीं चाहिए।

एक कार्य-निवृत्त गृहस्थ का हास्यास्पद काम देखिए । उनका शरीर और मन पर्याप्त बलवान् था। अपने परिवार वालों और कार्यालय के अधिकारियों की सेवा उन्होंने ४० वर्ष तक की । जब उनकी आयु ढल गयी, मृत्यु निकट आयी, तब उन्होंने जर्जर शरीर और मन को भगवान् की सेवा में समर्पित कर दिया। सचमुच बड़ी उदात्त भेंट थी! ये हैं एक उदार हृदयी, दानशील आधुनिक कर्ण ।

जिसने मन को नियन्त्रित किया है, वह 'यति' है। उसने अपनी भावनाओं, मन और इन्द्रियों को नियन्त्रण में रख लिया है। सामान्यतः संन्यासियों को यति कहा जाता है। यतियों का स्वामी 'यतीन्द्र' कहलाता है।

अतिथियों का सत्कार ही अतिथि-यज्ञ कहलाता है। अतिथि साक्षात् नारायण-स्वरूप है। इसी को 'नृयज्ञ' भी कहते हैं। पञ्च महायज्ञों से चित्त-शुद्धि होती है।

शास्त्रों में पञ्च-महायज्ञों का उल्लेख इस प्रकार है-

(१) **देवयज्ञ:** वेदमन्त्रों-सहित देवताओं को तर्पण देना;

(२) **ऋषियज्ञ**: शास्त्रों और वेदों के अध्ययन और अध्यापन के द्वारा ऋषियों को तृप्त करना;

(३) **पितृयज्ञ**: दिवङ्गत पितरों के नाम पर तिल-तर्पण, पिण्ड-दान और श्राद्ध करना;

(४) **भूतयज्ञ:** गाय, कौए आदि प्राणि-मात्र को अन्न देना जो विश्व-प्रेम और अर्द्ध तानुभव का विकास करने में सहायक होता है; और

(५) **अतिथियज्ञः** जो अतिथि घर पर आयें उनका यथोचित आदर-सत्कार करना ।

हिन्दूशास्त्र की विधि के अनुसार प्रत्येक गृहस्थ को यह पञ्च-महायज्ञ प्रतिदिन करने ही चाहिए। इन्हें न करने पर उसे प्रत्यवाय-दोष लगेगा। प्रत्येक से नित्यप्रति प्राणी-हिंसा होती रहती है; और उसके साधन हैं- चूल्हा, घड़ा, चवकी, झाड़ और चाकू या हँसिया ।

इन पञ्च-महायज्ञों का विधान गृहस्थों की चित्तशुद्धि के लिए किया गया है। स्वाभाविक रूप से नित्यप्रति होने वाले पापों के निवारण के लिए प्रत्येक द्विज को ये पञ्च-महायज्ञ करने चाहिए जिससे कि देव. ऋषि, पितृ, मनुष्य और प्राणी सन्तुष्ट हों। इन पञ्च-महायज्ञों का क्षेत्र इतना व्यापक है कि सारा विश्व इनमें समा जाता है। इनकी परिणति अवश्य ही अहिंसा में होती है।

भूतयज्ञ नित्यप्रति कीजिए। गाय, कौआ आदि को नित्य-प्रति खिलाइए । भूत-दया रखिए और हृदय विशाल कीजिए । इससे सभी प्राणियों के साथ एकता का अनुभव होगा, समदृष्टि का निर्माण होगा। यही ज्ञान का सार है।

बाल पकने लगें तो समझना चाहिए कि यमराज की पहली चेतावनी मिल गयी। तभी से उसके साक्षात्कार के लिए तत्पर हो जाना चाहिए । मुख पर झुर्री का पड़ना और कटि का झुक जाना उसके बुलावे का चिह्न है। दाँत गिर जाना उसका स्वागत है और तीन बार हिचकी आ जाना अन्तिम यात्रा का सूचक है। तीसरी हिचकी आ गयी तो आपकी सारी सम्पत्ति आपके लड़के और साझीदार ले लेंगे। कोई सेविङ्ग बैंक की पास-बुक के पीछे दौड़ेगा तो कोई रोकड़ रकम हाथ में लेगा। कोई आपके प्राविडेण्ट फण्ड (पूर्वोपायी कोष) के कागजात ढूंढ़ेगा तो कोई बीमा के कागजात खोजेगा। फिर कोई आपके आभूषण हथि-यायेगा। इस धरती का जीवन ऐसा ही है। मित्रो, अमरत्व के लिए प्रयत्नशील हो जाओ। भक्ति, ध्यान, शुद्धि, सेवा, जप, प्रार्थना और जिज्ञासा-वृत्ति को अपनाओ। सभी दुःख और कष्ट समाप्त हो जायेंगे ।

शादी-विवाह में अपने मित्रों और रिश्तेदारों को खिलाने-पिलाने में आप बहुत सारा धन व्यय करते हैं। गरीबों को खिलाइए । साधु, संन्यासी और ब्राहमणों को खिलाइए। यदि किसी एक जीवन्मुक्त को या सच्चे संन्यासी को आपने खिलाया तो सारे विश्व को खिला दिया। समाजसेवी और धार्मिक संस्थाओं के लिए आप अपनी सम्पत्ति में

से कुछ हिस्सा अलग निकाल कर रखिए । धार्मिक और आध्यात्मिक ग्रन्थों, पुस्तिकाओं, गीता आदि के वितरण में धन लगाइए। सुबह और शाम हरिकीत्त न कराइए। तव इहलोक और परलोक दोनों में आप अनन्त सुख पायेंगे। सर्वदा प्रत्येक सामाजिक प्रवृत्ति को अध्यात्म का रङ्ग दीभिए। चाहे समाज-सुधार कार्य, मनोरञ्जन-कार्य हो या अन्य कोई कार्य हो, उसे भगवान् के साथ जोड़िए । ईश्वर-चिन्तन और साक्षात्कार के लिए यह सरल और सुगम साधन है। केवल पेट भरना इन्द्रिय-रति ही है और इससे भगवान् का विस्मरण होता है।

नित्य-प्रति दान का अवसर खोजने की आपको लगन होनी चाहिए। कोई भी अवसर हाथ से जाने नहीं देना चाहिए। नये अबसरों का निर्माण भी करना चाहिए। अन्तःस्फूति से सात्त्विक दान देने से बढ़ कर कोई यज्ञ नहीं है; कोई योग नहीं है। कर्णं, राजा भोज आदि ने अमित दान दिये हैं। तभी तो आज भी वे हमारे हृदयों में बसते हैं।

आरम्भ में दान देते समय आप पात्रापात्र का विवेक कर सकते हैं। जब आप एकत्व की अनुभूति करेंगे, तब इस प्रकार का भेद नहीं करना पड़ेगा। आपकी सहानुभूति निष्पक्ष और सबके लिए समान रहेगी। यह तत्त्व बिरले ही समझ पाते हैं। दान स्वेच्छा से बिना किसी शर्त के होना चाहिए। दान देने की आदत हो जानी चाहिए। दान देने में आपको आनन्दानुभूति होनी चाहिए। आपको सोचना नहीं चाहिए- "मैंने बड़ा दान किया है; मुझे स्वर्ग में सुख मिलेगा। अगले जन्म में मैं धन-बान् होऊँगा। इस प्रदेश या नगर में मेरे जैसा कोई दानी नहीं है। लोग मुझे महान् दाता समझते हैं" आदि। गर्ने अत्यन्त हेय वस्तु है।

(७) सत्सङ्ग

वास्तविक सत्सङ्ग अवधानपूर्वक आत्मा या भगवान् की सन्निधि में रहना है। ऋषि-महात्माओं का सहवास भी सत्सङ्ग है। सिद्ध योगियों और सन्तों द्वारा लिखित ग्रन्थों का अध्ययन परोक्ष सत्सङ्ग है। उस पार निर्भयता और अमरता की ओर ले जाने के लिए सत्सङ्ग अत्यन्त सुरक्षित नाव है।

पवित्र महात्माओं का प्रत्यक्ष सहवास न मिलने पर गोता आदि का पाठ करना भी परोक्ष सत्सङ्ग है।

अन्धो, विधौ, वधुमुखे, फणिनां निवासे, स्वर्गे सुधा वसति चेति बुधा वदन्ति । क्षारः क्षयः पतिमृतिः विषमिन्द्रनाशः, कण्ठे सुधा वसति सा भगवज्जनानाम् ।।

विद्वज्जन कहते हैं कि अमृत सागर में है, चन्द्र में है, नववधू के ओष्ठों में है, नागलोक में है और स्वर्ग में है; परन्तु वहाँ तो वास्तविक अमृत नहीं है; क्योंकि सागर तो खारा है। वहाँ नमक ही नमक है। चन्द्रमा हर दूसरे पक्ष में क्षीण हो जाता है। पत्नी के ओष्ठों में भी नहीं है; क्योंकि उसका पान करने वाला पति एक दिन मर जाता है। वह नागलोक में भी नहीं है; वहाँ तो हर एक सर्प के मुँह में विष ही है। स्वर्ग में भी नहीं है; क्योंकि इन्द्र को भी, जब उनके सारे पुण्य क्षीण हो जाते हैं, इस धरती पर फिर से जन्म लेना होता है। वास्तविक अमृत तो सिद्ध, योगियों और सन्तों की वाणी और कण्ठ में है, जिनकी वाणी और उपदेशों से लोग अमरत्व और शाश्वत शान्ति पाते हैं।

साधुओं की पहचान क्या है ? भगवान् कृष्ण ने उनके लक्षण दिये हैं। भगवद्गीता में ये मिलेंगे। "सन्त अनपेक्ष रहते हैं। किसी पदार्थ की अपेक्षा नहीं रखते। वे मत्- (भगवत्) चित् होते हैं- सदा भगवान् में रमण करते हैं। किसी व्यक्ति या पदार्थ से उनको आसक्ति नहीं होती है। उनमें ममता या अहङ्कार नहीं होता है। सुख-दुःख दोनों उनके लिए समान हैं। औरों से वे कुछ भी नहीं लेते हैं- अपरिग्रही होते हैं। शीत, उष्ण, पीड़ा सब सह लेते हैं। प्राणिमात्र से वे प्रेम करते हैं। उनका कोई शत्रु नहीं है। वे शान्त रहते हैं और उनका चरित्र आदर्शपूर्ण होता है।"

चन्दन का वृक्ष सभी जङ्गलों में नहीं होता। मोती सभी समुद्रों में नहीं मिलता। मणि सभी पर्वतों में नहीं मिलती। सच्चे संन्यासी या साधु सर्वत्र नहीं मिलते। उन्हें एकान्त में खोजना पड़ता है।

मोक्ष के साम्राज्य में सत्सङ्ग एक बड़ा द्वारपाल है। उससे मित्रता जोड़ लें तो फिर विचार, शान्ति तथा सन्तोष से भी मित्रता जुड़ जायगी। सत्सङ्ग-रूपी भागीरथी में यदि एक बार स्नान कर लिया तो फिर तीर्थ-यात्रा की आवश्यकता नहीं रहेगी।

सत्सङ्ग से प्रापञ्चिक विकार नष्ट होते हैं और मोक्ष का द्वार खुलता है। सत्सङ्ग ही मोक्ष-साम्राज्य का प्रहरी है। अतः यदि आप सत्सङ्ग से मित्रता कर लें तो अनन्त सुख के राज्य में प्रवेश सुलभ हो जायगा।

साधु-सन्तों के साथ पलभर का सहवास भी अमूल्य है। उससे वाञ्छित फल और कल्याण प्राप्त होता है। उससे सांसारिक संस्कार, विषय-विकार नष्ट होते हैं और वह मन को पारमार्थिक जीवन की ओर मोड़ देता है।

सत्सङ्ग से हृदय का अन्धकार दूर होता है। संसार-सागर को पार करने का यह उत्तम साधन है। सत्सङ्ग से मन विशाल और सात्त्विक होता है, कुविचार और कुभावनाओं का नाश होता है तथा चित्त शुद्ध एवं निर्विकार होता है। वह मनुष्य को सन्मार्ग में प्रवृत्त करता है और उसके मन में ज्ञान-ज्योति जगाता है।

सन्त भरत ने राजा रहूगण से कहा- "हे रहूगण, तुम भले ही वैदिक यज्ञ करो, तपस्या करो, दान-पुण्य करो, शास्त्राध्ययन करो या वरुण, अग्नि और सूर्य आदि देवताओं की उपासना करो; किन्तु जब तक सन्त-महात्माओं की चरण-रज मस्तक पर धारण न करोगे, सत्सङ्ग नहीं करोगे और उनकी शरण न लोगे तब तक तुम्हें भगवान् का साक्षात्कार नहीं हो सकेगा" (भागवत : ५-२०-१२) ।

भगवद्भक्ति स्वयमेव नहीं आती है। एक अन्धा व्यक्ति स्वयं मार्ग नहीं देख सकता। एकमात्र सत्सङ्ग से ही मानव-हृदय में भक्ति का प्रादुर्भाव हो सकता है। महात्मा धन्य हैं! सबको उनकी कृपा प्राप्त हो !

(८) शरणागति

त्याग और वैराग्य के द्वारा मनुष्य अध्यात्म के उन्नत स्तर में पहुँचता है और दिव्य वैभव और ख्याति के शिखर को प्राप्त कर लेता है।

भगवान् के प्रति सर्वात्मना अपने को समर्पित कर देना प्रपत्ति या शरणागति कही जाती है। भगवान् ही भक्तों के एकमात्र आश्रय और रक्षक हैं। शरणागति में छः बातें हैं- (१) निज-व्यक्तित्व को ईश्वरार्पण करने ने लिए आवश्यक गुणों का विकास, (२) भगवदिच्छा के विरुद्ध गुणों का निषेध, (३) यह श्रद्धा कि भगवान् उसकी रक्षा करेंगे, (४) रक्षा तथा दया के लिए अभ्यर्थना, (५) अपनी तुच्छता का अनुभव, तथा (६) पूर्ण समर्पण । पहले की पाँच बातें पूर्ण आत्मसमर्पण की प्राप्ति के लिए आवश्यक साधनरूप हैं।

इनकी साधना सच्चे भाव से और सही ढङ्ग से की जाय तो सूक्ष्म अहङ्कार भी न रहेगा। अहङ्कार की निवृत्ति के लिए ही यह है। भक्ति-मार्ग में भी साधक को अन्त में आत्मसमर्पण करना ही होता है। भगवान् स्वयं यह करने वाले नहीं हैं।

वंशीधर भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं- "सर्वात्मना मेरी शरण आओ, मुझ पर सारा भार छोड़ दो। तभी मेरी कृपा पा सकोगे और मैं तुम्हें मुक्ति दूंगा।"

भगवान् के चरणों में अपना सर्वस्वार्पण करके कोई भी मोक्ष सिद्ध कर सकता है। समर्पण श्रद्धा-युक्त, सम्पूर्ण और निरपेक्ष होना चाहिए। भक्ति-मार्ग की सफलता का यह रहस्य है। पूर्ण भक्ति प्राप्त होने तक साधक को पहुँचे हुए महात्मा का सम्पर्क आवश्यक होता है। तभी वह अपना वैषयिक स्वभाव बदल सकता है और सारे पुराने संस्कारों को मिटा सकता है।

रोम नगर की वेश्या, मेरी मंगदालेन पर पत्थर फेंक कर मारने के लिए हजारों लोगों की भीड़ जमा हो गयी। प्रभु ईसा ने लोगों से कहा- "पहला पत्थर वह मारे जिसने आजतक कोई भी पाप नहीं किया हो।" प्रभु ईसा के शब्द सुन कर लोग चुप हो गये। वेश्या दूसरे ही क्षण साधु बन गयी। इसका कारण प्रभु ईसा की कृपा ही थी। यह कह सकना अत्यन्त कठिन है कि भगवान् की कृपा किसे, कब एवं कैसे मिल जायगी। भगवान् कृष्ण गीता में कहते हैं "हे पार्थ. जो मेरी शरण आते हैं, वे भले पाप-योनि वाले हों, स्त्रियाँ हों, वैश्य हों, शूद्र हों, वे भी परमगति को प्राप्त कर लेंगे" (अ० ६-३२) । मित्रो, तो फिर निराशा क्यों ? निराश न होओ। उठो, उद्यत हो जाओ। जीवन-संग्राम में तत्पर हो जाओ। प्रयास करो। साधना में लगो। चलते चलो। साहसपूर्वक आगे बढ़ते चलो। करुणावरुणालय भगवान् आपके प्रयत्नों को सफल करेंगे। मनुष्य कितना भी नीच या पापात्मा हो, वह मुक्ति पा सकता है। भगवान् श्रीकृष्ण ने ऐसा हम सबको आश्वासन दिया है।

परमेश्वर आपसे कहीं अधिक जानते हैं कि आपके लिए क्या अच्छा है। भगवान् की पूजा करना, मन्दिरों में जाना, घण्टी बजाना इत्यादि विविध विधि और कर्मकाण्डों की अपेक्षा सर्वथा ईश्वरेच्छा पर निर्भर जीवन व्यतीत करना कहीं अच्छा है।

वे आपको गले लगाने के लिए मधुर प्रेम और करुणाद्रं हृदय से बाहें फैला कर खड़े हैं। एक बार शिर उठा कर देखिए । बाल-सुलभ सरलता, भोलेपन और ऋजुता के साथ उनके पास जाइए । दिल खोल कर उनसे बोलिए। बिना प्रत्यपेक्षा के पूर्ण आत्म-समर्पण कर दीजिए। उनकी शरण जाइए ।

आप इस प्रकार प्रतिफलाकांक्षा छोड़ कर स्वेच्छा से सम्पूर्ण शरणागत हो जायें तो फिर आपका कोई उत्तरदायित्व या कत्र्तव्य नहीं रह जाता है। सभी प्रकार से वे आपका सम्पूर्ण योग-क्षेम वहन करेंगे। आपको न कोई प्रयत्न करना होगा, न साधना करनी होगी। आपके लिए भगवान् सब-कुछ करेंगे।

अपने प्रत्येक कर्म में पूर्णतया ईश्वरार्पण-बुद्धि रखना ही एक-मात्र आशास्पद दिखता है; परन्तु हो सकता है कि इसका प्रत्यक्ष अनुभव होने पर अहङ्कार और अभिमान बढ़ जाय। अतः उससे बचना चाहिए ।

कुछ मन्त्र हैं जिनसे सर्वस्वार्पण सरल हो सकता है। नित्यप्रति उन्हें भावपूर्वक मन ही मन में दोहराते रहिए। 'हे भगवान्, मैं आपका है। सब-कुछ आपका है। आपकी इच्छा ही पूर्ण हो। आप ही सब-कुछ हैं। आप ही सब-कुछ करने वाले हैं।' इसके बार-बार पाठ करने से अहंता और ममता के भाव समाप्त हो जाते हैं और कर्तृत्व का भान भी मिटता है।

भक्त अपने प्रभु से कहता है- "हे भगवन्, मैं आपका है, आप ही मेरा सर्वस्व हैं। कर्त्ता-शास्ता सब आप ही हैं। आप न्यायी हैं। मैं आपके हाथ का एक साधन है। मेरा अस्तित्व और कुछ नहीं हैं।" इस प्रकार उसका अहङ्कार मिटता है और प्रभु की शरणागति सिद्ध होती है।

अहङ्कार पैदा होने के कई कारण हैं - कर्म (मैंने अच्छा काम किया), वर्णाश्रम (मैं ब्राह्मण है, सर्वोच्च है, संन्यासी है, परिशुद्ध है आदि), सम्पत्ति (शारीरिक बल, धन, बुद्धि, सौन्दर्य, सद्गुण आदि) । आध्यात्मिक साधना के द्वारा इस सारे अहङ्कार को मिटाना होगा, भगवान् के चरणों की शरण लेनी होगी ।

सप्तम अध्याय: जप-योग

(१) जप - एक सरल साधन

नाम और नामी अभिन्न हैं। भगवान् का नाम स्मरण कीजिए। नाम-जप कीजिए। गाइए। नाम धन्य है ! भगवान् के नाम की जय हो जो निरन्तर हमारा कल्याण करने वाला और शाश्वत आनन्द, परम शान्ति तथा अमरत्व देने वाला है!

मत्यलोक-रूपी भवसागर को पार करने के लिए सतत नाम-जप एक बहुत सरल साघन है। गृहस्थों के लिए यह बहुत अनुकूल है।

ध्यान और जप में भेद है। किसी मन्त्र का पुनरुच्चारण जप है। जब मन को अपने इष्टदेवता की आकृति-विशेष में लीन किया जाता है और उसके सर्वशक्तिमत्ता और सर्वव्यापकता आदि गुणों का चिन्तन किया जाता है, तो वह ध्यान कहलाता है।

मन्त्र-योग में सफलता पाने के लिए भक्ति की आवश्यकता है। भक्ति-योग और मन्त्र-योग परस्पर एक-दूसरे में समाविष्ट हैं। दोनों अभिन्न हैं।

नाप-जप न करने वाले का जीवन व्यर्थ है। ईश्वर का नाम-स्मरण न करने की अपेक्षा मर जाना अच्छा है।

किसी मन्त्र का जप करने वाले को सात्त्विक जीवन बिताना होगा। तब उस मन्त्र जप का लाभ उसे मिलेगा ।

आसन और प्राणायाम की अपेक्षा जप और ध्यान अधिक महत्त्वपूर्ण हैं।

शास्त्रोपदेश में शङ्का न रखिए। अस्थिर श्रद्धा पतन का कारण बनती है। मनोबल तथा जप में श्रद्धा न रखने वाला व्यक्ति अध्यात्म-मार्ग में प्रगति नहीं कर सकता है। वह कहता है- "मैं आत्म-शोधन कर रहा है कि मैं कौन है", पर यह पूर्ण अनर्गल बात है। वास्तविक आत्म-शोधन के अधिकारी बिरले ही होते हैं।

अपनी इच्छा के अनुसार किसी भी इष्टदेव का मन्त्र-जप कीजिए और अपने शरीर और मन को उन्नत बनाने वाले उसके प्रभाव को अनुभव कीजिए। पुस्तक के कोरे अध्ययन से यह अच्छा है। यह सही है कि पुस्तकें बहुत सहायक हैं और उनसे प्रकाश मिलता है; पर आवश्यक बात तो साधना है। साधना के समय ब्रह्मचर्य-पालन, सत्यनिष्ठा, अहिंसा, सदाचार और सात्त्विक आहार बहुत आवश्यक हैं।

मन्त्र-जप में एक लय होती है। लय ही छन्द है। लय धारा-बाहिक उच्चारण है। उच्चारण और गति का सन्तुलन और समन्वय ही लय है। आरोह और अवरोह की पुनरावृत्ति लय है।

इस लय से अभ्यासी के जीवन में सुसङ्गति पैदा होती है। लय-बद्ध मन्त्र-जप से चामत्कारिक ढङ्ग से मन सुस्थिर होता है।

दुर्बलता महसूस हो तो कुछ समय के लिए आसन बन्द किया जा सकता है; परन्तु जप निरन्तर चलना चाहिए। मन्त्र-जप शारीरिक और मानसिक पुष्टि देने वाला है, साथ ही शोधक और मोक्षदायक भी है। कर्मों को शुद्ध करना चाहिए। भगवान् के साक्षात्कार के लिए आतुर रहने के कारण अत्यन्त उत्कट साधक को सारे रोग घेर लेते हैं। उसे कई प्रकार के दुष्कर्मों को समाप्त करना होता है। साधक को सम्पूर्ण निर्भय रहना चाहिए । रोग तो भगवान् के दूत हैं। इस शरीर-रूपी घर में रोग एक अतिथि के समान है। रोग साधक की निष्ठा की कसौटी है। सत्य-शोधकों को हर स्थिति में अडिग, अटल और अविचल रहना चाहिए। कभी हताश नहीं होना चाहिए। रामायण-पाठ, जप, ध्यान आदि का क्रम सुबह-शाम निरन्तर चलना चाहिए ।

एक बनिया था। उसे कोढ़ हो गया। वह कबीर के पास आया। कवीर घर पर नहीं थे। उनका पुत्र कमाल घर पर था। कमाल ने उसे सुझाया कि दो बार राम-नाम ले लो, कोढ़ दूर हो जायगा। बनिये ने ऐसा ही किया; पर कोढ़ दूर नहीं हुआ । कबीर को जब यह मालूम हुआ तब वे कमाल पर बहुत नाराज हुए और कहा- "तूने बनिये को दो बार राम-नाम लेने का सुझाव दे कर मेरे वंश पर कलङ्क लगा दिया। राम-नाम एक बार लेना ही पर्याप्त है। अभी जाओ और बनिये से कहो कि गङ्गा नदी में खड़े हो कर हृदय के अन्तस्तल से, पूरे भक्तिभाव से एक बार राम-नाम लो।" कमाल बनिये के पास गया। बनिये ने वैसा ही किया और वह बिलकुल चङ्गा हो गया। कबीर ने कमाल को सन्त तुलसीदास के पास भेजा। तुलसीदास ने तुलसी के एक पत्ते पर राम का नाम लिखा और उसका रस निकाल कर पाँच सौ कोढ़ियों पर छिड़क दिया। सब अच्छे हो गये । कमाल को बड़ा आश्चर्य हुआ। सूरदास ने कमाल से नदी में जो शव बहा जा रहा था, उसे लाने के लिए कहा। सूरदास ने एक बार उसके एक कान में राम का नाम पढ़ा तो वह जी उठा। कमाल के मन में बहुत आश्चर्य हुआ। राम-नाम की महिमा ऐसी है। मेरे मित्रो ! कालेज के युवको, प्यारे वकीलो, प्राध्यापको, वैद्यो और न्यायाधीशो, अपने अन्तःकरण से भाव और प्रेमपूर्वक भगवान् का नाम लो और अगले ही क्षण परम आनन्द और अमरत्व प्राप्त करो ।

(२) जप के लिए मन्त्र

इस कलियुग में संसार-सागर से पार होने का एकमात्र साधन भगवान् का नाम ही है। भगवन्नाम में अचिन्त्य शक्ति है। उस शक्ति से हरि की प्राप्ति की जा सकती है।

सभी प्रकार के प्रायश्चित्तों में, कर्म और नियम आदि में भगवन्नाम-स्मरण सर्वोत्कृष्ट है (विष्णु-पुराण, खण्ड-२, अध्याय ६, श्लोक-१३४, १३५) ।

श्रीकृष्ण का ध्यान करने वाले 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' मन्त्र का जप करें। 'वासुदेव' श्रीकृष्ण का ही नाम है। उसका अर्थ है सर्वव्यापी चैतन्य ।

नारायण को प्रणाम करते समय 'जय नारायण' कहो । मानसिक जप करो- 'ॐ नमो नारायणाय ।' इस पवित्र मन्त्र का आठ लाख जप करो। यह एक पुरश्चरण कहाता है। फिर हवन करो। ब्राह्मणों और गरीबों को भोजन कराओ। इससे आध्यात्मिक अनुभव प्राप्त होगे ।

'अहं ब्रह्मास्मि' आदि महावाक्यों और ओङ्कार के जप से वेदान्तिक संस्कार दृढ़ होते हैं, चित्त शुद्ध होता है और क्रमशः आत्म-साक्षात्कार होने लगता है।

प्रत्येक मन्त्र से पहले ओङ्कार का उच्चारण करना चाहिए । इसे प्रणव कहते हैं। इससे मन्त्र सजीव हो उठता है।

सभी मन्त्रों की क्षमता समान है। किसी को श्रेष्ठ और किसी को निकृष्ट कहना ठीक नहीं है। किसी भी मन्त्र का जप करने से भगवत्साक्षात्कार प्राप्त हो सकता है। वाल्मीकि तो उलटा नाम - मरा-मरा - जप कर ही तर गये। कुछ लोग 'ॐ नमः शिवाय' या 'नमो नारायणाय' की अपेक्षा 'ॐ' और 'सोऽहम्' को अधिक श्रेष्ठ मानते हैं। यह भी अनुचित है। 'ॐ' या 'सोऽहम्' के जप से जो स्थिति प्राप्त होती है, वही राम या राधेश्याम के जप करने से भी प्राप्त हो सकती है।

राक्षसी-वृत्ति को समाप्त करने वाला वास्तविक खड्ग राम या ॐ है। अगाध संसार-सागर को पार करने वाली वह नाव है। इस विश्व पर विजय पाने का प्रबल शस्त्र है। अज्ञान, शरीर, वासनाएँ और संस्कारों को जलाने वाली वह अग्नि (ज्ञानाग्नि) है। आत्मा को जाग्रत करने वाला वह मन्त्र है। शिथिल नाड़ियों में शक्ति-सञ्चार करने वाला वह मलहम है। शाश्वत सुख और अखण्ड आनन्द के अनन्त राज्य का द्वार खोलने का 'समसम' है। इस रहस्यमय तलवार को ले कर उठो । संसार का सम्बन्ध काट दो, कर्म और मन के आवरणों का उच्छेदन करो, अज्ञान को मिटा दो, सारी प्रवृत्तियों को समाप्त करो और असीम सुख और अनन्त ज्योतिर्मय संसार में साहसपूर्वक प्रवेश करो।

(३) अजपा जप

अजपा जप करो । इससे प्राण नाद (हृदय की अनाहत् ध्वनि) मैं लीन हो जायगा। सभी वृत्तियाँ समाप्त हो जायेंगी ।

यदि आप बहुत व्यस्त रहते हैं या आपको अधिकतर प्रवास ही में रहना पड़ता है तो आपको ध्यान और जप के लिए अलग से स्थान या समय की आवश्यकता नहीं है। श्वास-प्रश्वास के साथ ही 'सोऽहम्' का जप और 'सोऽहम्' का ध्यान कीजिए । यह बहुत ही सरल है। यदि आप ऐसा न करना चाहें तो श्वास के साथ राम को जोड़ सकते हैं।

ऐसी अवस्था में आपके श्वास की गति प्रार्थनामय और ध्यानमय बन जायेगी । 'सोऽहम्' का स्मरण तथा सर्वत्र भगवान् की उपस्थिति का अनुभव करते रहिए। इतना करना आपके लिए पर्याप्त होगा ।

भगवान् की ओर मन को मोड़ने के लिए लिखित जप या मन्त्र-लेखन एक अच्छा तेज चाबुक है। मन को भगवान् में स्थिर करो। मन्त्र लिखते समय उनके गुणों का स्मरण करो। बाह्य वातावरण को भूल जाओ। सब-कुछ भूल जाओ। अपने इष्टदेव के साथ अकेले रहो। प्रतिदिन किसी स्मृति-पुस्तिका में कम-से-कम आधा घण्टा मौनपूर्वक मन्त्र लिखो। मन्त्र किसी भी भाषा में लिख सकते हो। एक ही मन्त्र, चाहे गुरु-मन्त्र हो या अपने इष्टदेव का मन्त्र हो, स्थिर रखो ।

परिवार के सारे लोग रविवार के दिन सन्ध्या को इकट्ठा बैठ कर एक नोटबुक में कोई भी मन्त्र - हरि ॐ, सीताराम, श्रीराम जय राम, ॐ नमः शिवाय, या ॐ नमो नारायणाय मौन-पूर्वक एक घण्टा लिखें। इससे अद्भुत शान्ति और बल की अनुभूति होगी। कम-से-कम एक दिन प्रयोग करके देखो । परिवार के सभी सदस्यों को इससे लाभ होगा। अपने मित्रों के साथ भी किसी सार्वजनिक स्थान में, मन्दिर में या कहीं बैठ कर इस प्रेरणादायी साधना को चला सकते हो। मन्त्र लिखते समय आन्तरिक भाव को बनाये रखो। इधर-उधर देखना नहीं चाहिए। इससे जप से भी अधिक एकाग्रता आयेगी। मैंने बिहार, उत्तर प्रदेश और पञ्जाब के विभिन्न स्थानों में इसे लागू किया था । सहस्रों लोग इससे अद्भुत रूप से लाभान्वित हुए हैं। यदि इसे प्रति-दिन कर सको तो बहुत लाभ मिलेगा।

(५) जप के लाभ

मन को निर्मल बनाने के लिए जप एक दिव्य साबुन है। जप नवीनता एवं स्फूर्ति देने वाला आध्यात्मिक स्नान है। वह हमारे सूक्ष्म अथवा लिङ्ग शरीर को बड़े सुन्दर ढङ्ग से साफ करता है। सर्व प्रकार की गन्दगी वह धो देता है। जप से हृदय शुद्ध तथा मन स्थिर होता है, षड्रिपुओं का नाश होता है, जन्म-मरण का चक्कर छूटता है, पाप जल जाते हैं, संस्कार शिथिल होते हैं, आसक्ति नष्ट होती है, वैराग्य पैदा होता है, कामना का नाश करके मनुष्य निर्भय बनता है, भ्रम का नाश हो कर अनन्त शान्ति प्राप्त होती है, प्रेम की वृद्धि होती है और भक्त को भगवान् का योग प्राप्त होता है। इससे स्वास्थ्य, सम्पत्ति, बल और दीर्घ जीवन प्राप्त होता है, ज्ञान बढ़ता है, कुण्डलिनी जाग्रत होती है और परमानन्द की प्राप्ति होती है।

सन्तोष, शान्ति, मन का सन्तुलन, आन्तरिक अध्यात्म-बल, अभय, अनुद्वेग - ये आध्यात्मिक उन्नति के लक्षण हैं। किसी भी मन्त्र के जप से ये सिद्ध हो सकते हैं।

जब ऐलोपैथी, होम्योपैथी, क्रोमोपैथी, नेचुरोपैथी, आयुर्वेद आदि सभी वैद्यकीय पद्धतियाँ रोग निवारण में असफल सिद्ध होती हैं, तब केवल नाम-स्मरण ही है जो आपकी रक्षा करता है। भगवान् का नाम-स्मरण ऐसा

सञ्जीवन है जो सार्वभौम है, सर्वाधार है और रोगहारी है। मनुष्य जब दुःखी और निराश होता है, हताश और उदास होता है, दैनिक सांसारिक युद्ध में हार जाता है, तब उसमें मस्ती भर देने वाली मदिरा एकमात्र ईश्वर-नाम है।

अध्यात्मरूपी वृक्ष का बीज भगवन्नाम है। यह मन की मलिनता का विनाशक है। यह अनन्त शान्ति, परम आनन्द और विशुद्ध ज्ञान का प्रदाता है। उसे जो लेते हैं, उनके हृदय में वह दिव्य प्रम का सञ्चार करता है। सभी सुखों का वह मूल-स्रोत है। अमरत्व देने वाला, सभी भयों से मुक्त करने वाला तथा शान्ति और समाधान स्थापित करने वाला वह (नाम) सबको सुख और आनन्द देता है।।

सभी मीठे पदार्थों में सर्वश्रेष्ठ है राम-नाम। वह शान्ति का निवास-स्थान है। वह शुद्ध आत्माओं का जीवन है; शोधक द्रव्यों में सबसे उत्तम शोधक है।

प्रापञ्चिक तृष्णा की आग को वह बुझाता है। हृदय के अन्दर सुप्त ईश्वर-ज्ञान को वह जगाता है। साधक को वह दिव्य आनन्द के सागर में नहलाता है। राम और उनके नाम की जय हो !

"एक क्षणभर के लिए भगवान् का स्मरण करे तो उस प्राणी के महान् से महान् पाप भी तुरन्त नष्ट हो जाते हैं" (विष्णुपुराण-६-८-१०)।

भगवान् के नाम में अनिर्वचनीय शक्ति है। उसमें सर्व प्रकार की दिव्य शक्तियाँ हैं। च्यवनप्राश, मकरध्वज, बादाम, वसन्तकुसुमाकर या स्वर्ण-भस्म से भी बढ़ कर वह मूल्यवान् है। वह रहस्यमय और अचूक दिव्य इजेक्शन नं० ११९१०१९४ है ।

भगवान् को भुला देने वाला इहलोक और परलोक दोनों से हाथ धो बैठता है। जो स्वार्थी जीवन व्यतीत करते हैं, जो अपने अहङ्कार, गर्व आदि के कारण एक-दूसरे के साथ भेद-भाव रखते हैं, उन लोगों का जीवन निश्चित ही अशान्त रहता है। एकमात्र निरन्तर नामस्मरण ही सारे दुःखों और कष्टों को दूर कर सकता है। वह शान्ति, सुख एवं अमरता प्रदान कर सकता है। त्याग से स्वार्थ और अहङ्कार नष्ट होते हैं। दिव्य योग के लिए स्वार्थ-त्याग ही निकटतम मार्ग है।

नामस्मरण से जन्म-मृत्यु-रूपी महारोग से मुक्ति होती है। मोक्ष-प्राप्ति का वही साधन है।

प्रभु का नाम संसार-सर्प के काटे हुए प्रत्येक प्राणी का विषहारी औषध है। वह अमृत है; पीने वाले को अमर बनाता और निरन्तर शान्ति प्रदान करता है। ईश्वर का नाम-जप करने वालों से यमराज डरते हैं। उन तक वे पहुँच नहीं सकते । मृकण्डु ऋषि के पुत्र मार्कण्डेय भगवान् शिव के नाम के बल पर ही अमर हो गये। वे उस अभय और परम गति को पा गये ।

भक्त पूजा के समय अङ्गन्यास का मन्त्र जपता और अपने शिर, हृदय, शिखा, भुजा आदि को स्पर्श करता है। मन्त्र के प्रत्येक अक्षर में चैतन्य होता है। मन्त्र जप के साथ अपने अवयवों के स्पर्श से साधक क्रमशः दिव्यत्व पाता है। वह आध्यात्मिक जाग्रति है। उससे आध्यात्मिक तरङ्ग उठती हैं। तमस् और रजोगुण क्षीण होते हैं तथा सत्त्व गुण भरता है। अपने आराध्य देव से वह एकरूप होता है। वह सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य अथवा सायुज्य मुक्ति प्राप्त करता है।

(६) भावपूर्वक निरन्तर जप को आवश्यकता

आध्यात्मिक ध्येय को सदा सामने रखो और सारी अड़चनें एक-एक करके दूर करने का उग्र प्रयत्न करो। तभी आत्मबल प्राप्त कर सकोगे । भगवान् का सतत स्मरण और उनकी उपस्थिति का भान ध्येय-सिद्धि में सहायक होगा । तीन-चार महीने तक निरन्तर मानसिक नाम-स्मरण का अभ्यास करते रहने से आदत हो जायगी और उससे जब भी अपने काम से अवकाश मिला तो मन तुरन्त नाम-स्मरण करने लग जायगा । फिर वह अपने-आप विचार की पृष्ठभूमि में चलने लगेगा। यह आपकी आध्यात्मिक सम्पत्ति है।

मृत्यु के समय यदि भगवान् का स्मरण हो जाय तो मोक्ष निश्चित है। भगवान् कृष्ण ने आश्वासन दिया है- "जो मनुष्य मृत्यु के समय एकमात्र मेरा ही स्मरण करता है, वह मुझमें लीन हो जायगा; इसमें सन्देह नहीं" (गीता ८-५) । लेकिन मृत्यु के समय आप भगवान् का स्मरण तभी कर पायेंगे जबकि जीवनभर उसका अभ्यास करेंगे ।

भगवन्नाम-जप की खूब आदत डालो। तभी मृत्यु के समय आपको भगवान् का स्मरण करना सरल होगा ।

यदि आप तेरह करोड़ बार भगवान् का मन्त्र-जप करो तो मूर्तरूप में उनका दर्शन कर सकोगे । श्रद्धा और आस्थापूर्वक नाम-स्मरण करने से चार वर्ष में यह पूरा किया जा सकता है।

'हरि ॐ' का जप आप चौदह घण्टों में दो हजार माला कर सकोगे, सात घण्टों में राम-मन्त्र का जप एक लाख और पौन घण्टे में दश हजार कर सकोगे ।

ध्यान के लिए चित्रकूट बहुत उत्तम स्थान है। वहाँ कलकल-निनादिनी पुण्य-तोया मन्दाकिनी नदी प्रवाहित हो रही है। तुलसीदास जी अपनी चौपाई में कहते हैं कि दूध और फल मात्र का आहार ले कर चित्रकूट में श्रद्धा के साथ राम-मन्त्र का जप करें तो राम-भक्त छः महीनों में भगवान् श्रीराम के दर्शन कर सकेंगे ।

नित्य-प्रति मन्त्र-जप करने वालों में कुछ लोगों के लिए तो वह यान्त्रिक बन जाता है। जप के समय उन्हें कोई आनन्द नहीं रहता । उनको चाहिए कि भाव जाग्रत करें तथा मन्त्र के अर्थ और भगवान् के गुणों का मनन करें, मन्त्र की शक्ति और चेतन्य को पहचानें और हृदय तथा शरीर के अणु-अणु में भगवान् के अस्तित्व का अनुभव

करें। इससे वे हृदय में आनन्द, अनन्त शान्ति और अनिर्वचनीय सुख का अनुभव करेंगे जो अनुपम तथा रोमाञ्चकारी होगा।

जप में मन्त्र जप की सङ्ख्या का विशेष महत्त्व नहीं है। उसमें शुद्धता, एकाग्रता और भाव आवश्यक हैं। यह अधिक महत्त्व का है।

मात्रा, परा या पश्यन्ती आदि के लिए परेशान होने की आवश्यकता नहीं । अर्थ और भाव सहित 'ॐ' का मानसिक जप नियमित रूप से करो। इससे आध्यात्मिक लाभ मिलेगा। गङ्गा के किनारे कङ्कड़ गिनने में क्यों व्यर्थ समय गँवाते हो ? गङ्गा में खुल कर नहाओ ।.. समझदार बनो ।

अष्टम अध्याय: कर्मयोग

(१) कर्मयोग की आवश्यकता

सरिताएँ सर्वदा सबके लिए ताजा, स्वच्छ तथा पेय जल प्रदान करती हैं। वृक्ष फल तथा छाया देते हैं। सूर्य प्रकाश, ऊष्मा और शक्ति प्रदान करता है। पृथ्वी सभी प्रकार के धान्य, शाक और फल देती है। पुष्प सौरभ एवं सुषमा प्रदान करते हैं। गायें पौष्टिक दूध देती हैं। केवल मनुष्य को छोड़ कर शेष सब असीम आत्म-त्याग करते हैं। एकमात्र मनुष्य ही निरा स्वार्थी है।

राष्ट्रीय जाग्रति के लिए आध्यात्मिक संस्कृति की अनिवार्य आवश्यकता है जिसका आज नितान्त अभाव है। जीवन का ध्येय ईश्वर-साक्षात्कार है। केवल आध्यात्मिक संस्कृति में ही वह शक्ति है जिससे मनुष्य का आत्मबल बढ़ता है और स्वार्थ, भीरुता आदि का नाश हो कर वह शक्तिशाली तथा साहसी बनता और शरीर के मोह से मुक्त होता है। निःस्वार्थी व्यक्ति ही देश की सच्ची सेवा कर सकते हैं, एकता के लिए काम कर सकते हैं और विश्व-प्रेम को विकसित कर सकते हैं।

प्रत्येक व्यक्ति अपने प्रति तथा अपनी स्त्री और सन्तान के प्रति बहुत उदार रहता है, पर वह दूसरों की उपेक्षा करता है। व्यर्थ ही वह सोचता है कि वह दूसरों से भिन्न है। यह अज्ञान है, माया है। जन्म-मरण और मानवीय शोक एवं कष्टों का यही कारण है। भेदभाव ही मृत्यु है और एकता ही शाश्वत जीवन है।

विशुद्ध प्रम के द्वारा लोगों का हृदय जीत लीजिए । सत्य का आधार ले कर योग के क्षेत्र में विजयी होते चले चलिए। अहङ्कार का त्याग कर परम शान्ति के असीम राज्य में प्रवेश कीजिए। अज्ञान को दूर कर आत्म-ज्ञान प्राप्त कीजिए । वासनाओं को कुचल कर दिव्य आनन्द के असीम मार्ग में चलिए।

संमस्त बुराइयों का मूल स्रोत स्वार्थ है। वह अज्ञान से पैदा होता है। स्वार्थी मनुष्य लोभी और अन्यायी होता है। वह ईश्वर से बहुत दूर है। वह अपना हेतु सिद्ध करने के लिए सब-कुछ कर सकता है। अपना स्वार्थ साधने के लिए वह औरों को घायल कर सकता है, औरों की सम्पत्ति छीन सकता है और अन्य कई पाप-कर्म कर सकता है। न तो उसमें समझ होती है कौर न चरित्र । वह जानता नहीं कि मानसिक शान्ति क्या वस्तु है। वह सदा दूसरों की सम्पत्ति छीनने, सत्ता हस्तगत करने और नाम तथा ख्याति पाने की ही योजनाएँ बनाता है। वह हमेशा अपने को दूसरों से अलग मान कर चलता है। वह अपनी पत्नी, बच्चे और सम्पत्ति से अत्यधिक आसक्त रहता है। आसक्ति और दूसरों के प्रति भेदभाव की पराकाष्ठा तक वह पहुँच जाता है। योग-साधना में स्वार्थ बहुत बड़ी बाधा है। उसे निःस्वार्थ सेवा, दान और सत्सङ्ग के द्वारा निमूल कीजिए ।

स्वार्थ के कारण आपका मन सङ्कीर्ण तथा हृदय संकुचित हो गया है। उसे विशाल करने का एक ही उपाय है; निःस्वार्थ हो कर दूसरों की सेवा और सहायता करना। तब आप परमेश्वर या ब्रह्म से एक हो जायेंगे। अतः सेवा में आनन्द अनुभव कीजिए ।

कई लोग हैं जो वर्षों तक अपना जीवन गङ्गातट पर व्यतीत करते हैं; वे जप, कीर्तन और वेदान्त-ग्रन्थों का अध्ययन करते हैं। वे बार-बार 'अहं ब्रह्मास्मि' का जप करते हैं। फिर भी आत्म-साक्षात्कार नहीं कर पाते। वर्षों पूर्व वे जैसे थे, आज भी वैसे ही हैं; क्योंकि उनका चित्त विशाल नहीं है। उनकी वृत्ति उदार नहीं है। सत्य-शोधक के लिए चित्त-वैशाल्य अत्यन्त आवश्यक गुण है। अथक निःस्वार्थता, दानशीलता, मानव-सेवा, दयाभाव तथा स्वयं-स्फूर्त्त स्वछन्द उदार वृत्ति से हृदय शीघ्र विशाल होगा। प्राणिमात्र में एक ही आत्मा निवास करती है। यदि आपमें सर्वव्याषी प्रम नहीं है, यदि आप अपने पास जो-कुछ है उसका उपभोग दूसरों के साथ बौट कर नहीं कर सकते हैं तो फिर भगवान् का साक्षात्कार कैसे कर सकेंगे ?

मनुष्य केवल इसी एक विश्व का नागरिक नहीं है, कई विश्वों का है। उसे प्रलोभन, भय आदि का सामना केवल इसी लोक में नहीं करना है वरन् अन्य कई लोकों में भी करना पड़ता है। गन्धर्व-लोक तो सम्पूर्ण विकारमय है। इसीलिए योगशास्त्र में कहा है कि साधक को पहले अपनी शुद्धि करनी चाहिए तथा अपनी इन्द्रियों पर नियन्त्रण और वासनाओं का उन्मूलन करना चाहिए। इस भाँति यम के अभ्यास में पूर्णतः स्थित हो जाने के अनन्तर ही मूलाधार-चक्र में सुषुप्त कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत करने का प्रयास करना चाहिए, उससे पूर्व नहीं। यदि आसन, बन्ध, मुद्रा और प्राणायाम द्वारा चित्त की शुद्धि प्राप्त करने से पूर्व ही कुण्डलिनी जाग्रत हुई तो साधक के सामने अन्यान्य लोकों के कई प्रलोभन आते हैं जिनका सामना करने की उसमें पर्याप्त शक्ति नहीं होती है और वह बुरी तरह अधःपतित हो जाता है। फिर योग की जिस सीढ़ी तक वह पहले चढ़ चुका था, वहाँ तक चढ़ना उसके लिए असम्भव हो जायेगा। इसलिए साधक को पहले आत्म-शुद्धि कर लेनी चाहिए। यदि जप, कीर्तन और सतत निःस्वार्थ सेवा के द्वारा यह पूर्ण शुद्धि प्राप्त हो गयी तो फिर कुण्डलिनी स्वयं जाग्रत होगी और त्रिशूलधारी, ज्ञाननिधि और शान्ति और सुख के आगार भगवान् शिव के साक्षात्कार के लिए मस्तक के ऊपरी भाग में स्थित सहस्रार की ओर जायेगी ।

जीवन के चरम लक्ष्य को प्राप्त करने की पहली सीढ़ी है; निष्काम कर्म अर्थात् निःस्वार्थ भाव से स्वकर्म का पालन । निष्काम कर्म के अभ्यास से चित्त शुद्ध होता है और भेद-भाव मिटता है। तब भगवत्कृपा पाने और चित्त को स्थिर करने के लिए उपासना में लगना होगा। अन्त में वेदान्त का आश्रय ले कर अज्ञानावरण मिटाना होगा और जन्म-मृत्यु-रूपी संसार-सागर से मुक्त हो कर कैवल्य मोक्ष की प्राप्ति करनी होगी।

निःस्वार्थ सेवा के लिए भरपूर उत्साह निर्माण कर लीजिए । विशाल, उदार और विस्तृत हृदय युक्त सहिष्णुता अपनाइए । सबके प्रति दयालु रहिए। सबसे प्रेम कीजिए। सबकी भगवत्-भाव से सेवा कीजिए ।

देना सीखिए। देने में बड़ा आनन्द है। यह बहुत कम लोग जानते हैं। ईश्वरेच्छा पर भरोसा रखना सीखिए। आत्म-समर्पण अनिर्वचनीय शान्ति है। इसका अनुभव विरले ही कर पाते हैं। विवेक करना सीखिए। सत्य और असत्य का विवेक करने में महान् आनन्द है। इसकी पहचान बहुत कम व्यक्तियों को ही होती है। निर्विकार रहने का अभ्यास कीजिए। वैराग्य को विकसित करने में आत्यन्तिक तृप्ति है। इसे इने-गिने लोग ही समझ सकते हैं।

कुछ लोग काम कर सकते हैं, ध्यान नहीं। कुछ लोग घ्यान कर सकते हैं, काम नहीं। यह एकाङ्गी विकास है। प्रत्येक में ध्यान और निष्काम कर्म दोनों करने की शक्ति होनी चाहिए। यह समन्वय योग है। यह शक्तिदायी योग है। इसके सिद्ध होने पर, आप संसार में रहें या एकान्त में, विक्षेप का अर्थात् चित्त चाञ्चल्य का उपालम्भ नहीं दे सकते। तभी आपके मन का सन्तुलन बना रह सकेगा और तभी सर्वाङ्गीण विकास सम्भव होगा।

विश्व-प्रेम को विकसित करो। विश्वात्मा के साथ एक हो जाओ। स्वार्थ और संकुचितता छोड़ो। फैलो, फैलते जाओ। जागो, उठो। शिथिलता और उदासीनता त्यागो। एकता का जीवन व्यतीत करो। सुप्त शक्तियों को प्रकट होने दो। उद्यत होओ, स्थिर रहो। आत्मा को पहचानो। प्रोज्ज्वल भविष्य आपकी प्रतीक्षा कर रहा है।

यदि आप अपनी पत्नी और सन्तान में ही आसक्त रहे तो विश्व-प्रम विकसित नहीं कर सकोगे, विश्व-भ्रातृत्व पनपा नहीं सकोगे, अपने बच्चों से जो प्रेम है, वही प्रम दूसरों के बच्चों के प्रति व्यापक नहीं कर सकोगे, सभी बच्चों को अपने बच्चे नहीं समझ पाओगे। आपका हृदय संकुचित और सीमित हो जायेगा। आपका प्रेम कुछ ही लोगों तक सीमित रह जायेगा। स्वार्थ के कारण आपने अपने घर के लोगों तक ही अपनी सीमा-रेखा बना ली है। सदा आप यही सोचते रहते हो कि 'मेरे घर वाले समृद्ध होते जायें; हम खुश रहें, दूसरों के सुख-दुःख की चिन्ता में क्यों पड़ें ?'

परन्तु जिसका प्रेम विश्वव्यापी हो गया है, वह सबकी ओर समान दृष्टि से देखता है। वह सबसे प्रेम करता है, सबको गले लगाता है। सभी बच्चे उसके अपने बच्चे हैं। सभी पुरुष उसके भाई हैं और सभी स्त्रियाँ उसकी बहन। सारा विश्व ही उसका परिवार है। संसार ही उसका घर है। सबके प्रति उसे सहा-नुभूति है; वह सबकी सेवा करता है। पास में जो कुछ है, वह सबके साथ बाँट कर भोग करता है। उसे सबके भले की चिन्ता है। दूसरों के हित के लिए वह अपना हित त्याग देता है। वह जीता है दूसरों के लिए और मरता भी है दूसरों के लिए। कितना भव्य व्यक्तित्व है उसका ! और कितना विशाल-हृदय है वह ! वह तो धरती पर साक्षात् भगवान् ही है।

हृदय-हीन वेदान्त पूर्णतः शुष्क है। ज्ञान के बिना भक्ति अन्धी और अस्थिर है। कर्म से पूर्णता आती है। हृदय की भावना कर्म के द्वारा अभिव्यक्त होती है। निःस्वार्थ सेवा के द्वारा शुद्ध अर्द्धत भावना पैदा हो सकती है। पदार्थ मात्र में आत्मभाव देखने वाला मुक्त पुरुष विश्व की सेवा से भला कैसे विमुख हो सकता है ?

दुःखियों के प्रति निश्चित, गहरी और सक्रिय संवेदना प्रकट करने वाले लोग विरले हैं। केवल मौखिक सहानुभूति दिखाने वालों से दुनिया भरी पड़ी है। सक्रिय और निश्चित सहानुभूति वाला व्यक्ति जहाँ भी दुःखी को देखेगा,

उसके पास जो कुछ भी है, वह उसे तुरन्त दे देगा। उसका हृदय बहुत ही कोमल होता है। तीव्र विपत्ति में पड़े हुए व्यक्ति को देखते ही उसका दिल पिघल जायेगा । दुःखी मनुष्य का दुःख वह स्वयं अनुभव करेगा। केवल मौखिक संवेदना प्रकट करने वाला व्यक्ति पक्का ढोंगी होता है। अनिश्चित संवेदना वाला व्यक्ति दुःखी की दयनीय अवस्था देख कर थोड़ा-सा दुःख अनुभव करेगा; परन्तु अपनी जेब से उसे कुछ भी सहायता करने को तैयार न होगा। उसकी मुट्ठी बन्द रहती है। अस्थिर संवेदना-युक्त व्यक्ति आगे चल कर अधिक अनुभव पाने के बाद सुस्थिर संवेदना वाला बन सकता है।

एकमात्र निःस्वार्थ सेवा ही साधक को विश्व चैतन्य एवं परमेश्वर के साथ एकरूपता की ओर ले जा सकती है।

जिसका चित्त शुद्ध नहीं है, वह भले ही सब वेद पारङ्गत हो, बेदान्त का विद्वान् हो; पर उस ब्रह्म का या परमात्मा का साक्षा-त्कार नहीं कर सकता जो कि प्रत्येक प्राणी के हृदय-मन्दिर में है, विश्वाधार है, सर्वव्यापी और आत्म-प्रकाशी है।

सेवा का हेतु क्या है ? दरिद्रों और दुःखियों की अधिक सेवा क्यों की जाती है; समाज और देश की सेवा क्यों करें ? इसलिए कि सेवा करने से चित्त शुद्ध होता है। अहङ्कार, घृणा, ईर्ष्या, उच्चता आदि के भाव समाप्त होते हैं। नम्रता, शुद्ध-प्रम, सहा-नुभूति, सहिष्णुता और करुणा जाग्रत होती है। भेद-भाव मिटता है। निःस्वार्थता पनपती है। जीवन के प्रति दृष्टिकोण विशाल होगा। जीव मात्र की एकता अनुभव होने लगेगी। उदार दृष्टि के साथ हृदय भी उदार होगा। परिणामस्वरूप आत्मज्ञान होगा । 'सबमें एक' और 'एक में सब' की अनुभूति होगी। असीम सुख मिलेगा। व्यक्ति-व्यक्ति की समष्टि ही समाज है। विश्व भगवान् की अभिव्यक्ति है। मानव-सेवा ही भगवत्सेवा है। सेवा ही पूजा है। इस भाव से सारे काम होने चाहिए। तब शीघ्र चित्त शुद्ध होगा और आत्मानुभव होगा।

अन्तर्मुख रहो। आत्म-लीन रहो। आत्मा को समझो। वही बनो। मुक्त रहो। खुश रहो। प्रेम, ज्ञान और समझ से ही राष्ट्रों में एकता आ सकेगी। आध्यात्मिक संस्कृति या वेदान्त के अभ्यास से समाजों को जोड़ा जा सकता है। उपनिषदों के उस प्राचीन ज्ञान को समझने से जातियाँ मिलायी जा सकेंगी। हृदय-वैशाल्य और व्यापक सहिष्णुता के द्वारा सारे सम्प्रदाय और परम्पराओं को एक किया जा सकेगा। परिवार के सदस्यों में भी प्रेम, सौहार्द और ज्ञान से ही एकरसता आ सकेगी।

(२) कर्मयोग के प्रकार

आत्मभावपूर्वक मानवता की निःस्वार्थ सेवा हो चित्त-शुद्धि का साधन और परम सत्य के साक्षात्कार का एकमात्र मार्ग है। उस सेवा का माध्यम कुछ भी हो सकता है जैसे- सार्वजनिक और सामाजिक संस्थाओं को दान देना, गरीबों को भोजन और नङ्गों को वस्त्र देना, अभावग्रस्तों के प्रति संवेदना प्रकट करना, रोगियों की सेवा करना, पतितों को सहारा देना, पीड़ितों की सहायता करना, अज्ञानियों को उनसे कुछ भी प्रतिफल की अपेक्षा न रखते हुए

ज्ञान देना, गरीब विद्यार्थियों को बिना किसी प्रत्याशा के पढ़ाना और यह समझना कि जो कुछ हम कर रहे हैं, वह सब उस भगवान् की ही योजना है और हम उसके हाथ के साधन है, निमित्त मात्र हैं। यही निष्काम कर्मयोग है।

वैद्य गरीब रोगियों का उपचार सही मनोभाव से करे तो उसका चित्त शीघ्र शुद्ध होगा। उसके लिए अपना चित्त शुद्ध करने का बहुत स्रोत खुला हुआ है। वैद्य यदि कर्मयोगी बने तो वह बड़ी सरलता से भगवत्साक्षात्कार कर सकता है। जिस किसी की भी वह सेवा करे तो यही समझे की साक्षात् भगवान् की सेवा कर रहा है।

गरीब, रोगी, दीन और दुःखियों को दान दो। अनाथों को, अपङ्गों को, अन्धों को, असहाय विधवाओं को दान दो। साधु, संन्यासी तथा धार्मिक और समाज सेवी संस्थाओं को दान दो। उस व्यक्ति को धन्यवाद दो जो आपको दान-पुण्य करने का अवसर देता है। सही मनोभाव से और दानशीलता द्वारा भगवत्साक्षात्कार करो। इस सही भावना से दान देने वाले धन्य हैं।

दूसरों को समझने की बुद्धि को सर्वदा विकसित करो। छोटे भाइयों को भी आध्यात्मिक मार्ग में लगाओ। उन्हें ऊपर उठाओ। उनका मार्ग प्रशस्त करो। उनसे पूर्णता की अपेक्षा न रखो । उनके प्रति दयालु रहो। जैसे आप अपना प्रयत्न कर रहे हो, वैसे ही वे भी यथा-शक्ति अपना प्रयत्न कर रहे हैं। उनकी सहायता करने से आपको भी उन्नति होगी।

हृदय-शुद्धि और दिव्य ज्योति के अवतरण के लिए उत्साह-पूर्वक निःस्वार्थ सेवा का अभियान प्रारम्भ करो। सुनियोजित और व्यवस्थित रूप से काम करो। सेवा में तीव्रता रहे; लगन रहे। थोड़े समय तक ही विश्राम और निद्रा लो। बिना कष्ट उठाये सुख की प्राप्ति नहीं होती। इसका फल अमरत्व की प्राप्ति है। एक तेजस्वी योगी बनो! परमेश्वर और उनके नाम की, सम्पूर्ण निःस्वार्थ सेवकों की तथा गीतोक्तं भावना के अनुसार कर्मरत कर्मयोगियों की जय हो !

आध्यात्मिक जगत् में सङ्ख्या का महत्त्व नहीं है। अद्वैत वेदान्त की स्थापना करने वाले शङ्कराचार्य एक ही थे। शैतान के अनुयायी इस विश्व में असङ्ख्य हैं तो क्या हम यह समझें कि शैतान का काम या या हेतु उत्तम है। निष्ठावान् सेवक और सदस्य एक बड़ी सम्पत्ति हैं। इन थोड़े से साथियों के द्वारा बहुत बड़ी आश्चर्यजनक सेवा की जा सकती है। कभी यह शिकायत नहीं होनी चाहिए कि हमारे पास सदस्यों की सङ्ख्या कम होने के कारण हम समाज-सेवा का कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं कर पाते ।

निर्धनों और रोगियों की किसी भी प्रकार की मौन सेवा ही आध्यात्मिक श्रेय और त्वरित प्रगति के लिए एक अच्छा साधन है। सहायता के लिए दो-तीन साथी भी रहें तो पर्याप्त है। एकीभूत हृदय और उन्नत आदर्श के साथ काम करें तो दो-तीन व्यक्ति भी बहुत उपयोगी सेवा कर सकते हैं।

किसी भी मतभेद या फूट को निभा लेना चाहिए। मित्रता, प्रम और गलतफहमी के निराकरण द्वारा समाज की शान्ति बनाये रखनी चाहिए। तब सबसे एकता स्थापित होगी। तब कई ठोस काम हो सकेंगे। शुद्ध प्रम और सतत सेवा के द्वारा सबके हृदय में प्रवेश करने की कला सीखनी चाहिए। यह बहुत बड़ा योग है। ॥ऽ

एक अंगरेज जिलाधीश था। वह बड़ा दयालु था। एक दिन सड़क पर उसने एक मरणासन्न रोगी को देखा। उसने उसे अपने कन्धे पर उठा कर पास के अस्पताल में पहुँचाया। उसकी एकत्व की भावना को तो देखिए ! वह भले ही उपनिषद् न जानता हो, पर वह सच्चा वेदान्ती था।

कई लोग, बल्कि कई संन्यासी तक यह कहते हैं कि महात्मा गान्धी सामान्य कर्मयोगी थे, वेदान्ती नहीं; परन्तु सही बात तो यह है कि महात्मा गान्धी से बढ़ कर वेदान्ती कोई दूसरा नहीं है। उनके जीवन का एक-एक क्षण व्यावहारिक वेदान्ती का ही जीवन था। वे इस विश्व के नाड़ी केन्द्र थे। सबके साथ वे एक-रूप हो गये थे। वे सभी को प्रेम से अपना चुके थे। स्वार्थ-त्याग, सेवा, हिंसा, सत्यनिष्ठा, ब्रह्मचर्य, नम्रता और एकता - यही उनकी नीति थी; तथापि वे वेदान्ती का बिल्ला नहीं लगाते थे और न ही तथाकथित वेदान्तियों को प्रसन्न करने के विचार से 'मैं ब्रह्म है' - 'अहं ब्रह्मास्मि' कहते थे। यही उनकी त्रुटि या दुर्बलता थी ।

सारा विश्व आपके विरुद्ध खड़ा हो जाय तो आपको उसका सामना करना होगा। सारा विश्व यदि एक तरफ हो और आप अकेले दूसरी तरफ, तब भी अपनी स्थिति पर दृढ़ रहिए, अपने आदर्शों और सिद्धान्तों से एक अङ्गुल मात्र भी विचलित न होइए ।

तामसिक लोग जो करना चाहें, उन्हें करने दो; झूठी अफवाहें उड़ाने दो, चुगली खाने दो। हढ़ बने रहो। अभियोग, खतरे और किसी प्रकार के विरोध से घबराओ नहीं। भगवान् सदा आपके साथ हैं। 'सत्यमेव जयते नानृतम्' । आप सत्यनिष्ठ रहो, प्रामाणिक रहो। दुगुने उत्साह और शक्ति से निःस्वार्थ सेवा किये जाओ ।

(३) कर्मयोग का अभ्यास

कर्म ही पूजा है। काम नारायण की उपासना है। यह भूलना नहीं चाहिए कि काम ध्यान है। काम और ध्यान के समन्वय द्वारा आध्यात्मिक विकास करना चाहिए। मेहतर का काम भी यदि सही रीति से किया जाय तो योग है। सारे विश्व को ही अपना घर समझो (वसुधैव कुटुम्बकम्), अपना बड़ा परिवार समझो। आँख बन्द करके बैठने की आवश्यकता नहीं।

साक्षी-भाव, अकर्तृ त्व-भाव अथवा निष्कामभाव से किया हुआ कर्म वास्तव में कर्म ही नहीं है। वह ज्ञान-रूपी अग्नि से भस्म हो जाता है। वह संसार का बन्धनकारक नहीं है। श्री शङ्कराचार्य ने केवल सकाम कर्म का ही निषेध किया है। आजके अधिकतर कट्टर मायावादी लोगों ने श्री शङ्कराचार्य के भावों को अयथार्थ समझा है।

निःस्वार्थ कर्म (मानव-सेवा) बीज है। नारायण-भाव अर्थात् सेवा के समय यह भाव रखना कि जो कुछ भी प्राणि मात्र दीखता है, वह सारा नारायण का ही प्रतिरूप है और मैं इन प्राणियों में उस प्रभु की सेवा कर रहा हूँ, जड़ है। उत्साह वृष्टि है और फूल है हृदय की विशालता। चित्त-शुद्धि फल है। यह है कर्मयोग का मार्ग।

पाल और जोन ने कहा है- "भगवान् का आवास-स्थान मानवनिर्मित मन्दिर नहीं है वरन् उन नर-नारियों का हृदय है जिनमें प्रेम-भाव और लोक-कल्याण की तड़प है।" मनुष्य का हृदय ही भगवान् का भव्य मन्दिर है। धनी लोग नाम और यश अर्जन के लिए मन्दिर बनवाते हैं और उस पर अपने नाम की शिला लगवाते हैं। क्या यह मूर्खता नहीं हैं ?

भगवान् सबके स्रष्टा हैं, संस्थापक और आधार हैं। ऊँच और नीच सभी प्राणियों में उनका निवास है।

निःस्वार्थ भाव से अथक सेवा करना तथा अपनी सेवा किसी को करने न देना और दूसरों से सेवा की अपेक्षा भी न रखना -यही योग है और यही धर्म है।

अपने क्षुद्र अहङ्कार को भूल जाओ। अपने स्वाधं, अपनी इच्छाओं और आकांक्षाओं को भूल जाओ। सबके साथ एकरूप होओ। दूसरों के लिए काम करो। सारी निम्नताएँ छोड़ दो। भव्य, उदात्त और उदार बनो। तभी अपनी आत्म-प्रकृति और सर्वशक्तिमान् असीम 'अहम्' को धीरे-धीरे समझने लगोगे ।

जो अपने को भूल कर, अपनी सुख-सुविधा की चिन्ता न करते हुए दूसरों की सेवा-सुश्रूषा करता है, वह आध्यात्मिक साधना में प्रगतिशील, साधक है।

निःस्वार्थी और शरीर के प्रति अनासक्त देहाध्यास से मुक्त पुरुष ही मानवता की सच्ची सेवा कर सकता है। उसीं में वास्तविक शक्ति होगी और वही निर्भय होगा।

शुद्ध स्वर्ण से कोई आभूषण नहीं बनाया जा सकता है। कम-से-कम तीन प्रतिशत कोई-न-कोई दूसरी धातु मिलायी जाय तभी आभूषण बनाया जा सकेगा। इसी प्रकार परमेश्वर भी अपने में तीन प्रतिशत रजोगुण मिला कर ब्रह्माण्ड में काम करते हैं। इसलिए उन्हें कोई लेप नहीं होता है। मनुष्य में यदि नब्बे प्रतिशत रजोगुण हो और केवल तीन प्रतिशत सत्त्वगुण हो तो वह निश्चित ही दूषित हो जाता है। जो कि विश्व की सेवा करना चाहते हैं, उनमें भरपूर सत्त्वगुण अर्थात् शुद्धि होनी चाहिए। तभी वे सांसारिक भोगों के सम्पर्क में आ कर भी उनके प्रभाव से बचे रह सकेंगे और लोगों की भी उन्नति कर सकेंगे।

घृणा, द्वेष तथा सत्ता, पद और सम्पत्ति की आकांक्षा सब छोड़ दो। नम्रता का मुकुट पहनो। शुद्ध और तेजस्वी बनो। भगवान् में श्रद्धा रखो। जप और ध्यान में स्थिर रहो। प्रेम और प्रकाश प्राप्त करो।

सदा फुरतीला रहने की आदत डालो। दूसरों की भलाई के लिए भरसक त्याग करो। स्वार्थ को सर्वदा त्याग दो ।

सेवा या दान के प्रतिफल की कुछ भी अपेक्षा मत रखो। उनको धन्यवाद दो कि उन्होंने आपको सेवा का अवसर दिया।

जो समाज की सेवा करते हैं, वे वस्तुतः अपनी ही सेवा करते हैं। दूसरों की सहायता करने वाला वास्तव में अपनी ही सहायता करता है। इसलिए जब भी दूसरों की, देश की या किसी की सेवा करो, तब यही समझो कि भगवान् ने सेवा के द्वारा आपको सुधरने, प्रगति करने तथा नव-निर्माण का अवसर दिया है।

दूसरों की सहायता और सेवा का कोई भी अवसर हाथ से जाने न दो। स्वेच्छा एवं प्रसन्न मुद्रा से सेवा करो। उदास मुखमुद्रा न दिखाओ। एकाग्रता और निष्ठा के साथ प्रत्येक कार्य को सुचारु रूप से सम्पादित करो। यथासम्भव दूसरों की सेवा करने में अपने जीवन के प्रत्येक क्षण का उपयोग करो।

दूसरों की सेवा करो। दूसरों की सहायता करो। अपने हृदय को शुद्ध निष्काम प्रेम से परिपूरित करो। सदा क्रियात्मक भलाई करो।

नित्यप्रति निःस्वार्थ भाव से समाज-सेवा इस भाव से की जाय कि मैं भगवान् की ही प्रतिमूत्ति की सेवा कर रहा है तो अग्नि-होत्र का स्थान ले सकती है और हृदय को शुद्ध कर सकती है।

काम में लीन रहो। पूरे हृदय, मन और आत्मा से काम में लगो। फल की चिन्ता न करो। जय-पराजय के विषय में न सोचो। भूतकाल का विचार न करो। पूर्ण विश्वास रखो। आत्मसंयम का अभ्यास करो। सर्वदा प्रसन्न रहो। मन कों शान्त और सन्तुलित रखो। काम के लिए काम करो। धीर और उत्साही रहो। आपको अपने प्रत्येक अध्यवसाय में निश्चित सफलता मिलेगी। सफलता का यही रहस्य है।

सेवा करते समय ध्यान रहे कि भगवान् के लिए काम कर रहे हो। प्रत्येक कर्म को ईश्वरार्पण करो। इससे शीघ्र आध्या त्मिक विकास होगा। अपने मनोभावों की सदा छानबीन करते रहो।

जब आप किसी रोगी के शरीर में कोई मलहम लगाओ तो समझो कि विराट् पुरुष का शरीर स्पर्श कर रहे हो। इससे. त्वरित विकास होगा। हृदय विशाल होगा। घणा की भावना समाप्त हो जायेगी। प्रेम बढ़ेगा। शुद्ध भाव क्षीण होने पर उसे तुरन्त पूर्ण करो। कुछ महीनों तक दृढ़तापूर्वक अभ्यास करोगे तो आपमें शुद्ध भाव स्थिर हो जायेगा। सदा प्रयत्नशील रहो।

यदि आप किसी मनुष्य के पैर दबाओगे तो वह प्रसन्न होगा। शरीर का कोई भाग छूने से पूरा मनुष्य प्रसन्न होता है। पैर मनुष्य का एक अङ्ग है। इसी तरह कोई एक मनुष्य प्रसन्न हो तो समूचा विराट् पुरुष प्रसन्न होगा; क्योंकि मनुष्य उस विराट् का अङ्ग है।

आत्म-साक्षात्कार केवल कर्म से, चाहे वह कितना ही अधिक क्यों न हो, नहीं हो सकता। आत्मा तो विवेक, विचार और निदिध्यासन से प्राप्त होता है।

दैनिक आध्यात्मिक कर्मों को किसी भी मूल्य पर गतिशील रखना चाहिए। कर्म के साथ भाव अवश्य रखना चाहिए । सर्वत्र हरि-दर्शन और सभी कर्मों को ईश्वरार्पण करने का अभ्यास आवश्यक है। आपके दो हाथ भगवान् (कृष्ण) ही के हाथ हैं। वे आपके द्वारा काम करते हैं, देखते हैं, सुनते हैं, जानते हैं और खाते हैं। इसका भान करो। सर्वदा अनुभव करो।

किसी एक विषय पर मन की एकाग्रता बनाये रखो । उद्देश्य-सिद्धि के प्रति सजग और सुदृढ़ रहो। मन को चारों तरफ भटकने न दो। मन को शान्त रखो। शान्त और प्रसन्न मन से सारा काम करो। ईश्वरार्पण-बुद्धि से समझपूर्वक काम करो । तब प्रत्येक काम योगिक कर्म बन जायेगा। तब सभी काम सफल होंगे।

अपनी आय का कुछ भाग दान के लिए सुरक्षित रखो। कभी-कभी दान कर दें या सेवा कर दें तो वह योग नहीं होगा। आपको नियमित रूप से सेवा करनी चाहिए, अपने को भूल जाना चाहिए। तब वह योग होगा ।

भगवान् प्रेम-स्वरूप हैं।. प्रेम ही भगवान् हैं। प्रेम भगवान् की प्राप्ति का एक साधन है। अतः प्रेम केवल साधन ही नहीं है, अपने-आपमें लक्ष्य भी है। वह अन्यादृश है। उसके पास कोई भेद नहीं है। कोई अन्तर नहीं है। वह बहुत बड़ा समभाव वाला है, असीम है। वह भक्तों के शुद्ध हृदय में बसता है। उससे द्वेष, घृणा और पूर्वाग्रह नष्ट होते हैं। इस धरती पर वह बहुत शक्तिशाली साधन है। वह प्रत्येक व्यक्ति को उदात्त कर्म के लिए प्ररित करता है; दिव्य भावना से मानव-सेवा करने को. प्रोत्साहित करता है। सबमें भगवान् के दर्शन करने और सबका आदर करने में सहायक होता है। वह शान्ति, सुख, आनन्द और अमरता प्रदान करता है।

सबके साथ सौहार्द से मिलो। सबको गले लगाओ। सबसे प्रेम करो। सबकी सेवा करो। निःस्वार्थ सेवा और सुसङ्गति का अभ्यास करो। अथक सेवा द्वारा सबके हृदय में प्रवेश करो । यही अद्धं तानुभूति है, एकत्व का साक्षात्कार है।

मानवता की सेवा केवल यान्त्रिक क्रिया नहीं होनी चाहिए, आत्म-भाव के साथ होनी चाहिए। सेवा ही चित्त-शुद्धि और तत्परिणामस्वरूप ज्योति के आविर्भाव के लिए योग है। प्रत्येक कार्यकर्ता को इस भाव को अपने अन्तःकरण में ठूस-ठूस कर भर लेना चाहिए।

दूसरों के विषय में अधिकाधिक सहानुभूति प्रकट होने का अर्थ है, हृदय विशाल और अध्यात्म का विकास हो रहा है। अपने दैनिक कार्यों में डटे रहना चाहिए।

किसी मित्र की सेवा करने की इच्छा होने पर यह पूछना कि आपको चाय या दूध दू, केवल मौखिक सेवा है। बिना पूछे ही एक कप चाय उनके सामने नम्रतापूर्वक खुशी-खुशी रखो; यह सच्ची सेवा होगी। आपकी शिष्टता सदा

समान, भरपूर और सहज रहनी चाहिए। कुछ लोग बहुत चतुर होते हैं। वे मित्र से कहेंगे-"मैं जानता है कि आप खाना तो खायेंगे नहीं; फिर इस समय चाय लेंगे या दूध ?" मित्र को कहना पड़ता है- "नहीं-नहीं, अभी-अभी चाय पी कर ही आ रहा है।" वे कहेंगे-"कम-से-कम सुपारी या इलायची तो लीजिए।" प्रारम्भ से ही वे नहीं चाहते कि उस मित्र को दूध, चाय कुछ दें। सेवा करने की भावना केवल ओठों पर ही रह गयी। इस दुनिया में ऐसे लोग बहुत हैं। वास्तव में ये धरती के बोझ हैं।

नया साधक अनुभव करेगा- "मेरे गुरुजी तो मुझसे नौकर की तरह व्यवहार कर रहे हैं। मुझसे तुच्छ काम ले रहे हैं।" जिसने कर्मयोग का रहस्य जान लिया है, उसकी दृष्टि में सभी काम समान महत्त्व के हैं। सभी काम योगिक कर्म या भगवत्-आराधना हैं। उसकी दृष्टि में कोई भी काम तुच्छ नहीं है। सभी ईश्वर की पूजा है। कर्मयोग में सभी काम पवित्र हैं। साधारण लोगों की दृष्टि में जो काम तुच्छ है; उन्हें जो साधक सहर्ष एवं स्वेच्छा से सदा सम्पादन करता है, वह सचमुच में बड़ा प्रभावशाली योगी बन जाता है। उसमें अहङ्कार या उच्च भाव पूर्णतः समाप्त हो जायगा। उसका कभी अधः पतन नहीं होगा। गर्व का लवलेश भी उसे स्पर्श नहीं करेगा।

पाश्चात्य देशों में मोचियों और किसानों का स्थान समाज में बहुत ऊँचा है। उनके लिए सभी काम समान रूप से आदरणीय हैं। जो लड़का पैसों के लिए लन्दन की गलियों में प्रातःकाल बूट पालिश करता है और अपराह्न में समाचार-पत्र-पत्रिकाएँ वेचता है, वह रात को किसी पत्रकार की सहायता करता है। वह अध्ययन करता है, कठिन श्रम करता है, एक क्षण को भी व्यर्थ जाने नहीं देता है और कुछ ही वर्षों में एक अन्ताराष्ट्रीय ख्याति-प्राप्त अच्छा पत्रकार बन जाता है। पञ्जाब में कुछ स्नातकों ने नाई का व्यवसाय अपना लिया है। उन्होंने श्रम का महत्त्व समझ लिया है।

एक सच्चे योगी की दृष्टि में तुच्छ काम या श्रेष्ठ काम में कोई भेद नहीं है। उनमें भेदभाव रखना निरा अज्ञान है। कुछ साधक प्रारम्भ में, जब अध्यात्म में वे परिपक्व नहीं होते हैं, बड़े नम्र रहते हैं; परन्तु जब उनका कुछ नाम और यश हो जाता है, उनके कुछ अनुयायी, कुछ प्रशंसक, कुछ शिष्य और भक्त बन जाते हैं, तब वे गर्व के शिकार हो जाते हैं। वे कुछ भी सेवा नहीं कर सकते हैं। अपने हाथ से या अपने शिर पर वे कुछ भी नहीं ले जा सकते हैं। वह योगी वास्तव में स्तुत्य है जो कि रेलवे स्टेशन पर खुद अपना सामान हाथ में या शिर पर ले कर अपने भक्तों, शिष्यों और प्रशंसकों के बीच किसी विनम्रता का बाह्य प्रदर्शन किये बिना निःसङ्कोच भाव से चलता हैं। योगी जड़भरत ने चू तक किये बिना राजा की पालकी अपने कन्धों पर ढोयी । भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने भक्त नाई की अनुपस्थिति में उसके स्वामी के पैर दबाये। श्रीरामचन्द्र ने अपने सेवक के स्नान के लिए स्वयं पानी ला दिया। श्रीकृष्ण ने दामा जी का घन नवाब को चुकाने के लिए एक साधारण सेवक विठु का रूप धारण किया। यदि आप आध्यात्मिक उन्नति करना चाहते हो तो जीवनपर्यन्त प्रतिदिन सभी प्रकार की सेवाएँ करने को तैयार रहो। इसमें ही आपकी कुशलता है। प्रसिद्ध योगी बनने के बाद भी सेवा बन्द मत करो। आपके शरीर की नस-तस एवं रग-रग में सेवा-भाव समा जाना चाहिए। सेवा रक्तगत होनी चाहिए। तब आप सच्चे व्यावहारिक वेदान्ती बन जाओगे ।

भगवान् बुद्ध से भी बढ़ कर क्या कोई व्यावहारिक वेदान्ती या कर्मयोगी है? वे आज तक हमारे हृदय में घर किये हुए हैं; यह इसलिए कि वे सेवामय हो गये थे, नाना प्रकार से दूसरों की सेवा करने में ही उनका जीवन व्यतीत हुआ। वे एक अनुपम महान् आत्मा थे । समुचित मनोभाव से निःस्वार्थ सेवा में लीन हो कर आप भी बुद्ध बन सकते हो ।

महात्मा गान्धी की आत्म-कथा पढ़ो। उन्होंने कभी छोटे-बड़े काम का भेद नहीं किया। उनके लिए पाखाने की सफाई का काम महान् योग था । उनकी दृष्टि में यह महापूजा थी। उन्होंने स्वयं पाखाने साफ किये। विभिन्न सेवाओं के द्वारा उन्होंने -अपने क्षुद्र 'अहम्' को समाप्त कर दिया था। उनसे योग सीखने के उद्देश्य से कई पढ़-लिखे लोग उनके आश्रम में प्रविष्ट हुए । उन्होंने सोचा था कि गान्धी जी उन्हें योग सिखाने के लिए एकान्त कुटीर में बैठा कर प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, कुण्डलिनी का जागरण आदि सिखायेंगे। परन्तु, प्रारम्भ में ही जब गान्धी जी ने उन्हें पाखाने की सफाई करने में लगाया तो उन्हें निराशा हुई और वे तुरन्त आश्रम छोड़ गये। गान्धी जी अपने जूतों की मरम्मत स्वयं करते थे। आश्रम में वे प्रतिदिन आटा स्वयं पीसते और जब कभी कोई अपनी पारी में जितना : आटा पीसना चाहिए, उतना नहीं पीस पाता था तो उसका भी भाग स्वयं पीस देते थे। आश्रम में नया-नया आने पर जो कोई चक्की चलाने में शरमाता तो गान्धी जी स्वयं उसके सामने चवकी चलाते और फिर वह भी स्वेच्छा से चलाने लगता ।

भगवान् की सेवा करने वाले सभी समान हैं। उनको जाति, पन्य, रङ्ग आदि भेद छोड़ कर एक साथ बैठ कर खाना चाहिए । आध्यात्मिक विकास और भगवद्भक्ति में प्रगति करने के लिए उच्च-नीच भाव भूल जाना चाहिए। सारे भेदों को जला कर सर्वत्र एक ईश्वर का ही दर्शन करना चाहिए। सबके साथ एक-रूप होना चाहिए। सबमें घुल-मिल जाना चाहिए, सहिष्णु बनना चाहिए । सामञ्जस्य, शुद्ध प्रेम, क्षमा और समदृष्टि अपनानी चाहिए।

सर्वप्रकारेण अपने आदर्शों एवं सिद्धान्तों पर हढ़ रहिए । सारा संसार आपका विरोध करे तो भी डटे रहिए। उत्तम ध्येय के लिए प्राण तक अर्पण करने को तत्पर रहिए ।

काम करने की इच्छा हो तो स्वतन्त्र रूप से कीजिए । आरम्भ में ध्यान से विरत होने पर आराम लेने की दृष्टि से कुछ हलका काम हाथ में लेना चाहिए। लेकिन वह काम ऐसा हो जो रुचिकर तथा आध्यात्मिक विचार में सहायक हो ।

यदि आपमें निःस्वार्थ सेवा के प्रति प्रेम है और निष्काम कर्म के द्वारा आप चित्त-शुद्धि प्राप्त करने के इच्छुक हैं, तो प्रकृति आपका उपयोग अपने दिव्य कर्म में अवश्य ही करेगी। आपको अपना योग्य साधन बना लेगी। आपका विकास शीघ्र होगा ।.

सब-कुछ ईश्वरार्पण कीजिए। अपना अहङ्कार भी भगवान् के चरणों में अर्पित कर निश्चिन्त बन जाइए। वे आपका पूरा भार ले लेंगे। उन्हें अपनी इच्छा से आपको ढाल लेने दीजिए । उनकी ही इच्छा चलने दीजिए। वे सारी

दुर्बलताओं और क्षतियों को दूर कर देंगे। वे इस शरीर रूपी मुरली में सुन्दर सङ्गीत बजायेंगे। उनकी सुमधुर, रहस्यमयी आत्मिक मुरली की ध्वनि का आनन्दानुभव कीजिए।

सच्ची निःस्वार्थ सेवा करना बहुत कठिन है। कुछ लोग सच्चे निःस्वार्थ सेवी के वेश में मञ्च पर आ खड़े होते हैं। लेकिन वे अपनी ही सेवा करते हैं। कुछ संन्यासियों की भी यही स्थिति है। क्या यह अत्यन्त खेद का विषय नहीं ?

कर्त्तापन, भोक्तापन और स्वामीपन आदि भावनाओं को छोड़ दीजिए और मनुष्य-मनुष्य में अन्तर को; 'मैं', 'तू', 'वह' आदि भेदों को; भूल जाइए। इससे शीघ्र ज्ञान-प्राप्ति होगी। अविवेक के कारण ही कामनाओं का उद्‌भव होता है। विवेकोदय के साथ कामनाओं का नाश हो जायेगा। सत्य और मिथ्या का विवेक करना सीखिए। मोक्ष या परमानन्द के राज्य में आपका प्रवास शीघ्र सधे !

प्रत्येक कार्य अनासक्त भाव से करना चाहिए। कार्य करते समय यह भाव भी नहीं होना चाहिए कि आत्म-शुद्धि के लिए कर्म किया जा रहा है। केवल भगवान् के लिए ही कर्म कीजिए। भगवान् प्रसन्न हों, यह विचार भी न रखिए। काम चाहे जितना भी आकर्षक और रुचिकर हो उसे किसी भी समय छोड़ने के लिए सदा उद्यत रहना चाहिए। अन्तरात्मा के आदेश पर उस काम को तुरन्त छोड़ देना चाहिए। काम की आसक्ति बन्धन का कारण है। कर्म के सूक्ष्म रहस्यों को भलीभांति जान लीजिए और साहसपूर्वक आगे बढ़िए।

आत्म-विश्वास रखिए। भ्रमात्मक विचार न कीजिए। अन्धविश्वासी न बनिए। शुद्ध चेतन की अन्तर्वाणी के अनुसार चलिए। किसी का दास न बनिए। अपनी स्वतन्त्रता को न बेचिए। आप अमर आत्मा हैं। हीन भाव मिटाइए। अन्दर से शक्ति, धैर्य और तेज ग्रहण कीजिए। मुक्त रहिए। बन्धश्रद्धा न रखिए, बुद्धि से परख लीजिए और फिर किसी चीज को अपनाइए। भावनाओं के उद्रेक में आंख मूंद कर बह न जाइए।

'आवेगों का दमन कीजिए। विशाल बनिए। आपके अन्दर ही महान् शक्ति और ज्ञान का भण्डार है। उसे प्रकाशित करने की आवश्यकता है। फिर सम्पूर्ण रहस्य आप पर प्रकट हो जायेगा। आत्म-ज्ञान के प्रकाश से अज्ञानान्धकार नष्ट हो जायेगा। ज्ञान-राज्य का द्वार खोलने की उत्तम कुञ्जी है, सतत आत्म-चिन्तन। यहाँ कर्मयोग और वेदान्त का सार कुछ शब्दों में ही दे दिया है। अमृत-पान कीजिए और अमरता, परम शान्ति और अनन्त सुख पाइए। यही जीवन का ध्येय है। इस संसार में आने का यही लक्ष्य है और इसमें ही जीवन की सार्थकता है। इस उन्नत ध्येय की प्राप्ति में कर्मयोग और उपासना दोनों सहायक हैं।

नवम अध्याय: माया

(१) माया क्या है ?

माया ईश्वर की भ्रमात्मक और दुर्बोध शक्ति है। जिस प्रकार उष्णता को अग्नि से दूर नहीं किया जा सकता उसी प्रकार माया को भी ईश्वर से पृथक् नहीं किया जा सकता है। माया ईश्वर की उपाधि है। माया पर ईश्वर का नियन्त्रण है। माया न तो सत् है न असत्; इसलिए माया अनिर्वचनीय है। यह सारा विश्व माया की ही अभिव्यक्ति है। सारे सांसारिक अनुभव माया के ही कार्य हैं। आत्मसाक्षात्कार-प्राप्त योगी माया को पार कर जाता है।

माया ब्रहम की अभिन्न शक्ति है। अभिन्न से अर्थ है जो अलग न की जा सके। माया को ब्रहम से अलग नहीं किया जा सकता है। अग्नि और उष्णता के समान ही माया और ब्रहम अभिन्न हैं।

घड़ा एक कार्य है। उसे देखने पर यह निर्णय होता है कि उसका कोई कारण होना चाहिए। उसी प्रकार यह संसार देख कर इस निर्णय पर पहुँचना होता है कि इसका भी कोई कारण होना चाहिए। वह कारण ही माया, ब्रहम की भ्रमात्मक शक्ति है।

जो स्वभावतः एक अवर्णनीय है एवं जिसकी व्याख्या नहीं की जा सकती, वह है माया। माया अनिर्वचनीय है। वह ब्रहम की अवर्णनीय भ्रमात्मक शक्ति है जिससे यह सारा संसार उत्पत्र होता है।

माया बड़ी चतुर और धोखा देने वाली है। वह तो ईश्वर की भ्रमात्मक शक्ति है; वह एक ऐसा आवरण तत्त्व है जो असीम ब्रहम में ससीम रूपों की सृष्टि करता है। माया की दो शक्तियाँ हैं-आवरण-शक्ति और विक्षेप-शक्ति। आवरण-शक्ति के द्वारा माया सत्य को छिपाती है और विक्षेप-शक्ति के द्वारा विश्व की सृष्टि करती है और झूठे नाम-रूपों का निर्माण करती है।

आवरण-शक्ति आत्मा को छिपाती है और जीव पर आवरण डाल देती है। इसके कारण से ही जीव अपने पञ्च-कोशों से छूट नहीं पाता है। आवरण-शक्ति के दो प्रकार हैं- एक है असत्-आवरण और दूसरा अभान-आवरण। असत्-आवरण के कारण यह विचार प्रारम्भ होता है कि ग्रहम नहीं है। लोग कहते हैं-'यदि ब्रहम है तो वह दिखता क्यों नहीं?' इस विचार का कारण है अभान-आवरण। श्रुतियों के श्रवण द्वारा ब्रहम के परोक्ष ज्ञान से असत्-आवरण हटाया जा सकता है और अभान-आवरण निदिध्यासन द्वारा ब्रहम के अपरोक्ष ज्ञान से दूर किया जा सकता है।

अव्यक्त, माया, मूल-प्रकृति, प्रधान, गुणसाम्य-ये सारे शब्द पर्यायवाची हैं। माया के अप्रकट स्वरूप का नाम अव्यक्त है। जिस प्रकार बीज के अन्दर सारा वृक्ष सूक्ष्म रूप में समाया होता है, उसी प्रकार प्रलय-काल में इस अव्यक्त के अन्दर बीज-रूप में सारा ब्रह्माण्ड समाया रहता है। अव्यक्त और प्रधान ये दोनों साङ्खधशास्त्र के पारिभाषिक शब्द हैं। सत्त्व, रजस् और तमस् का संयोग ही मूल-प्रकृति है जैसे श्वेत, रक्त एवं कृष्ण वर्ण के तीन धागों से बटी हुई रस्सी हो। गुण-साम्यावस्था में ये तीनों गुण समान अनुपात में होते हैं। यह प्रलय या सुषुप्ति की स्थिति है। जिस प्रकार मनुष्य प्रतिदिन गहरी निद्रा का अनुभव करता है, उसी प्रकार सारा विश्व प्रलयकाल में सुषुप्ति अवस्था को प्राप्त होता है। प्रलय में कई जीव अपने संस्कारों के कारण मूल प्रकृति में लीन हो जाते हैं जैसे सोने के बारीक कण मोम की डली में चिपक जाते हैं। प्रलय के अन्त में जीवों के कर्म परिपक्व हो जाते हैं। उनके कर्मों का फल ईश्वर देना चाहता है और फिर इस सम्पूर्ण विश्व की पुनः सृष्टि होती है।

माया में शुद्ध सत्त्व की मात्रा अधिक होती है। माया में परब्रह्म का जो प्रतिबिम्ब पड़ता है, वही ईश्वर है। माया ईश्वर की उपाधि है। ईश्वर का वह कारण-शरीर है। माया ईश्वर के अधीन है। ईश्वर को अव्याकृत और अन्तर्यामी के नाम से पहचाना जाता है। ईश्वर इस विश्व का निमित्त कारण है। जैसे मकड़ी अपने अन्दर से ही जाल पैदा कर लेती है, उसी प्रकार ईश्वर स्वयं तमोगुण से एकरूप हो कर विश्व का उपादान कारण भी बन जाता है। अशुद्ध सत्त्व ही अविद्या है। इस अवस्था में सत्त्व में रजोगुण अधिक मात्रा में मिश्रित होता है। अविद्या जीव का कारण-शरीर है। यह आनन्दमय-कोश है। जीव और ईश्वर इस कारण-शरीर के द्वारा सुषुप्ति का अनुभव कर लेते हैं। यह कारण-विकास है।

कुछ ही दिनों पहले जूनागढ़ में एक विचित्र घटना हुई। एक लड़की की शादी हुई। वह बारह साल की थी। विवाह के छः 'साल बाद वह लड़की लड़के में परिर्वातत हो गयी। पुरुष के सारे विशिष्ट चिह्न उसमें आ गये। वह पति का घर छोड़ कर पिता के घर लौट आयी। उसका पिता धनी आदमी था। वह अभी हाल में मराः। वकीलों से परामर्श किया गया कि उसकी सम्पत्ति उस लड़की (लड़के) को मिलनी चाहिए या नहीं। माया सब-कुछ कर सकती है। वह नपुंसक पैदा कर सकती है। पुरुष में स्त्रियों की मधुर आवाज, स्त्रियों में पुरुष की कर्कश ध्वनि, स्त्रियों में दाढ़ी-मूछ, पुरुषों में नारि-सुलभ चिकनी मुखाकृति, पेट के अन्दर चेहरा, शिर पर खुर, आधा मनुष्य, आधा शेर, आधा घोड़ा-क्या-क्या नहीं कर सकती ! इससे स्पष्ट होता है कि सारा संसार एक भ्रम है, असत्य है और एकमात्र आत्मा ही सत्य और शाश्वत है। प्रकृति के गम्भीर अध्ययन से वैराग्य और विवेक होता है और प्रकृति के स्वामी आत्मा के साक्षात्कार की प्रेरणा मिलती है।

सूर्य ठण्ढा हो जाय, चन्द्रमा उष्ण हो जाय, अग्नि अधोमुख हो कर जलने लगे, बरफ गरम हो जाय, विष्ठा से गुलाब की 'सुगन्धि आने लगे तब भी ज्ञानी पुरुष को आश्चर्य नहीं होगा। वह जानता है कि यह सारा उस माया का मायाजाल है।

माया स्वयं बदलती रहती है और संसार को भी बदल देती है; परन्तु ब्रह्म अपरिवर्तनीय है। वह अचल, महान्, स्थिर और अजन्मा है।

राख के नीचे दवी हुई आग देखी नहीं जा सकती, किन्तु यह नहीं कह सकते कि वहाँ आग नहीं है; इसी प्रकार आत्मा शरीर, मन, प्राण और इन्द्रियों से आवृत है, दिखता नहीं है, इसलिए "यह नहीं कह सकते कि वह है ही नहीं।

(२) अविद्या

बुद्धि-रूपी उपाधि के साथ जीव का जो सम्बन्ध है, उसका कारण अविद्या है, अज्ञान है अथवा अयथार्थ ज्ञान है। यह अज्ञान एकमात्र ब्रहम-ज्ञान से ही दूर हो सकता है। जब तक ब्रहम-ज्ञान प्राप्त नहीं होता तब तक आत्मा का सम्बन्ध बुद्धि, मन और इन्द्रियों के साथ नहीं छूटता।

अविद्या दो प्रकार की है- एक मूलाविद्या, इससे जीवः का कारण-शरीर निर्मित होता है और दूसरी स्थूल अविद्या, यह पदार्थों को बाहर से ढक लेती है।

अविद्या इस संसार का मूल कारण है। अज्ञान का नाश हो जाय तो सारा दुःख दूर हो जाय, मनुष्य को जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्ति मिल जाय। वेदान्त-दर्शन में अविद्या का स्वभाव और प्रवृत्ति के कारण आदि प्रश्नों की चर्चा नहीं है। वह केवल इतना ही कहता है कि वह है और ब्रहम-ज्ञान से उसका नाश सम्भव है।

जिस प्रकार आग राख से ढकी रहती है, उसी प्रकार यह स्वयं-प्रकाश अविनाशी आत्मा भी अविद्या से तथा उसके फल-रूप मन, अहङ्कार, स्वार्थ, द्वेष, शरीर, प्राण और इन्द्रियों से ढकी रहती है। राख हटी कि आग धधकने लगी, वैसे ही आत्म-ज्ञान के द्वारा अविद्या हटी कि स्वयंप्रकाश आत्मा विभासित हो जाती है।

भ्रम से भेदभाव, पार्थक्य, द्वैत, अनेकता और विविधता पैदा होती है। भ्रम अज्ञान से पैदा होता है। सभी दुःख, विक्षेप, सङ्कट, पीड़ा आदि की जड़ में अज्ञान ही है। अतः ज्ञान-रूपी खड्ग से अज्ञान को काट देना चाहिए और स्वतन्त्र होना चाहिए।

भेद-भाव एक बड़ा बन्धन है। निःस्वार्थ सेवा और अद्वत भावना से इसे काट देना चाहिए। यह भेद-भाव माया अथवा अज्ञान से पैदा होता है, जो निरा भ्रम है।

म्यान को अलग करो तभी तलवार हाथ में आएगी, राख हटाओ तभी आग सुलगेगी, बादल हटे तभी सूर्य दिखेगा, चादर अलग करो तभी गद्दा दिखेगा, इसी प्रकार अज्ञान को हटाओ जो कि आत्मा को छिपाये हुए है, तब स्वयं-प्रकाशी आत्मा का दर्शन हो सकेगा।

जिस प्रकार धूल के कारण दर्पण धुंधला दिखता है, उसी प्रकार अविद्या के कारण ज्ञान धुंधला है। इसीलिए सभी लोग भ्रम में हैं। वे असत्य से चिपके रहते हैं और शरीर को ही आत्मा समझते हैं। नाम-रूपात्मक संसार को वे सत्य समझते हैं, जो निरा भ्रम है।

(३) अहङ्कार

(सारे दुःखों का कारण)

सृष्टि दो प्रकार की है-जीव-सृष्टि और ईश्वर-सृष्टि । ईश्वर-सृष्टि मे कोई दुःख नहीं है। पानी से प्यास बुझती है। अग्नि से उष्णता मिलती है। शुद्ध वायु स्वस्थता देती है। वृक्षों से छाया मिलती है। गायें बढ़िया दूध देती हैं। पर ममता-मेरी पत्नी, मेरा बच्चा आदि जो ममकार है, यह जीव-सृष्टि है। इसमें दुःख है। 'घोड़ा मर गया' इतना ही सुनने से कोई दुःखी नहीं होता है। जब सुनते हैं कि 'मेरा घोड़ा मर गया' तब रोने-पीटने लगते हैं। मनुष्य के सारे दुःखों की जड़ यह ममता है। इस ममता को समाप्त करके आत्मानन्द में लीन रहना चाहिए।

जिस मनुष्य में देहाभिमान की अतिशयता है, अपने शरीर के प्रति अत्यन्त आसक्ति है, उसके लिए आत्म-ज्ञान अथवा जीव-मात्र के एकत्व का ज्ञान प्राप्त करना असम्भव है।

अपने शरीर और उसके अहङ्कार में लोग कितने व्यस्त हैं ! 'मैं, मैं, हर कहीं मैं ही मैं। मैं वैद्य है, मैं अंग्रेज है, मैं अमरीकी है। मैं ब्राह्मण है। मैं सर्वज्ञ है। मैं चतुर है। मैं कुशल है। मैं बलवान् है। मैं कर्ता है। मैं धर्ता है। मैंने बहुत दान-पुण्य किये। मैंने अपने पिता के नाम पर अस्पताल बनवाया।' इस 'मैं' का कहीं अन्त नहीं है। परन्तु ज्यों ही इस शरीर के साथ, इस नाशवान् अशुचि शरीर का अध्यास मिटा, आपने जान लिया कि 'में' यह शरीर नहीं है, मैं तो सर्वव्यापी आत्मा है, तो तुरन्त सारे दुःख मिट जायेंगे। भयानक संसार से आप बच जायेंगे । आप परम आनन्द को प्राप्त हो जायेंगे, अमर हो जायेंगे, अविनाशी आध्यात्मिक ऐश्वर्य के मालिक हो जायेंगे और अमरत्व के अमृत-पान से अमर लोक के निवासी हो जायेंगे ।

पचास बम किसी भी बड़े शहर को मिटा सकते हैं; पर पचास हजार बम भी इस अहङ्कार को मिटा नहीं सकते। इतना बलिष्ठ है यह अहङ्कार ! अज्ञानी मनुष्य ने अपने व्यक्तित्व और ऐश्वर्य को ले कर बहुत सोचते-सोचते इस अहङ्कार को बहुतः बढ़ा लिया है। हीरा भी कभी गल सकता है; परन्तु यह अहङ्कार गल नहीं सकता, यद्यपि उसमें कोई सार नहीं। भक्त इसे आत्म-समर्पण के द्वारा तथा मुनि वैराग्य एवं आत्म-जिज्ञासाः से मिटा सकता है।

शिवाजी ने एक दुर्ग-निर्माण के कार्य में हजारों श्रमिकों को लगा रखा था। उन्हें बडा अभिमान था कि वे इतने लोगों का पालन कर रहे हैं। शिवाजी के गुरु स्वामी श्री रामदास जी यह समझ गये । उन्होंने शिवाजी को बुलाया और महल के सामने ही पड़े हुए एक बड़े पत्थर को तुड़वाने को कहा। शिवाजी ने एक नौकर से उसे तुड़वाया। पत्थर टूटा तो उसके अन्दर से एक मेढक बाहर कूद पड़ा। स्वामी रामदास जी ने पूछा-"शिवा, इस पत्थर के अन्दर इस छोटे से प्राणी को खाना कौन पहुँचाता है ?" शिवाजी लज्जित हुए, और गुरु को प्रणाम करके बोले- "गुरु महाराज, आप अन्तर्यामी हैं; मैं समझता था कि इन श्रमिकों को में खाना दे रहा है। तब आपने मेरा यह अभिमान जान लिया । मुझे अब विवेक आया है। मेरी रक्षा कीजिए, में आपका शिष्य है।"

बन्दरों को अपने बच्चों से बड़ी आसक्ति होती है। उनका बच्चा मर जाय तो वे उस शव को, कङ्काल को लिये लिये महीनों तक फिरते हैं। इस भौतिक शरीर की आसक्ति ही मोह है । ये संस्कार प्राणी जगत् से मानव जगत मेे आये हैं। इसीलिए पुरुष या स्त्री अपने बच्चे से बड़ा मोह रखते हैं।

आप अकेले पैदा हुए । मरोगे भी अकेले ही । जो भी प्रति- बन्ध सामन े आयेंगे, अकेले ही उनका अतिक्रमण आपको करना होगा। आपके भाग्य में जो कुछ है उसे आपको अकेले ही भोगना पड़ेगा। तब फिर क्यों अपने बच्चों, स्त्री आदि से आसक्ति रखते हो, मिथ्या मोह में क्यों पड़े हो ? आँख खोलो । खड़े हो जाओ। सावधान हो जाओ ।

प्रकृति को जीतने और आत्मा को पहचानने के लिए ही आपका जन्म हुआ है।

अहङ्कार के स्वभाव और गतियों को समझने का प्रयत्न करो। वह स्व-उन्नति, स्व-प्रगति, सत्ता, सम्पत्ति और सुख की 'ओर खींचता है। उस अहङ्कार को, उस स्वार्थ को समाप्त करो। अनासक्त बनो । देवी गुण, त्याग और निःस्वार्यता में अपनी श्रद्धा जमाओ । अपने जीवन का मुख्य लक्ष्य त्याग और निःस्वार्थ सेवा को बना । तुरन्त ही अतीव सम्पन्न और विशाल आध्यात्मिक जीवन मिलेगा ।

स्वयं को अपने शरीर, स्त्री, बच्चे या अन्य पदार्थों से मत.. जोड़ो । संग्रह की वृत्ति छोड़ो। किसी भी वस्तु के विषय में यह न कहो – 'यह मेरी (मेरा) है।' केवल एक विचार स्थिर करो-'एकमात्र ब्रह्म है। वही प्रकाशमान् है। मैं ब्रह्म है।' जीवन्मुक्त बनो। अद्वं तिक अथवा ब्राह्मी-अवस्था का, जीवन्मुक्ति का आनन्द लो ।

एक अँधेरे कमरे में एक घड़ा रखा है। उसके अन्दर जलती हुई बत्ती है। फिर भी कमरे में अंधेरा है; परन्तु ज्योंही वह घड़ा फोड़ दें तुरन्त सारा कमरा एक पल में प्रकाशमान् हो जाता है। उसी प्रकार सतत आत्म-ध्यान के द्वारा शरीर को तोड़ दिया जाय, अविद्या को और उसके परिणामस्वरूप देहाध्यास को समाप्त कर दिया जाय और शरीराध्यास से ऊपर उठा जाय तो सर्वत्र उस आत्म-प्रकाश का दर्शन होने लगेगा।

इस दृढ़मूल पुराने शत्रु अहङ्कार को मिटाने के लिए आत्म-विचार के अतिरिक्त और कोई सक्षम आयुध नहीं है।

मनुष्य माँस में जीता है। माँस खाता है। माँस को गले लगाता है। माँस ही अहङ्कार है। माँस ही विश्व है। माया माँस के द्वारा ही खेलती है। काली माता कभी माँस का भोग नहीं चाहती है। वह अहङ्कार का भोग चाहती है। वह अपने भक्तों से चाहती है कि वे अपना अहङ्कार समाप्त करें। काली माता को बलि देने के बहाने मूर्ख लोग बकरा काटते हैं और अपनी जिह्वा की लालसा बुझाते हैं। यह कितना भयङ्कर, अक्षम्य और घृणित पाप है।

संपेरा साँप के दो विषैले दाँत उखाड़ देता है और उसके साथ निर्भय हो कर खेलता है। तब भी साँप फण खोल कर फुफकारता है; पर सँपेरा जानता है कि वह इसका कुछ नहीं बिगाड़ सकता। इसी प्रकार आप भी अपने दो विषैले दाँतों -अहंता और ममता को उखाड़ दें तो फिर इस संसार में आप भी निर्भय हो कर रह सकते हैं। आप जीवन्मुक्त बन जायेंगे और अन्तरात्मा में आनन्दपूर्वक रहेंगे।

जो सांसारिक दुःखों के कारण आत्म-हत्या करते हैं वह पापमयी आत्म-हत्या है; परन्तु जो अहङ्कार, स्वार्थ, वासनाओं, इन्द्रियों, विचारों आदि की हत्या करते हैं, वे पवित्र हत्या करते हैं।

मामूली कण्डे की राख माये पर लगाने से क्या लाभ ? अहङ्कार को जलाओ और उसकी राख माथे पर और शरीरभर में लगाओ ।

यशोदा ने बालकृष्ण को एक छोटी-सी रस्सी से बाँध रखने का बहुत प्रयत्न किया। बाँधने के लिए एक रस्सी ले आयीं। वह दो अङ्गुल छोटी पड़ गयी। फिर बड़ी रस्सी ले आयीं। वह भी दो अङ्गुल कम पड़ गयी। इसी प्रकार वे कई रस्सियाँ लायीं फिर भी सभी रस्सियाँ दो अङ्गुल छोटी पड़ ही जातीं। इसका अर्थ क्या है? क्या इसमें कोई दार्शनिक सङ्कत तो नहीं है ? हाँ है। इसमें बड़ा दर्शन है। यशोदा अहङ्कार से भरी हुई थीं। उनमें ममता भी बहुत थी। अपने बच्चे पर उन्हें बड़ा मोह था। भगवान् कृष्ण उनका ममत्व और अहंभाव मिटा देना चाहते थे। अप्रत्यक्ष रूप से उन्होंने माता को सिखाया कि 'हे माँ, बहंता और ममता छोड़ो । तब प्रेम के द्वारा मुझे बाँध पायोगी ।'

रानी मक्खी को मार दें तो कोसों दूर तक फैल कर फूलों से मधु एकत्रित करने वाली सारी मक्खियाँ भी तुरन्त मर जायेंगी।

दीमक की भी यही स्थिति है। अफ्रीका के कुछ आदिवासियों में ऐसा है कि यदि एक आदमी को कोई पीड़ा हो जाय तो सैकड़ों मील दूर तक रहने वाले उस समाज के लोगों को भी वह पीड़ा होने लगेगी। पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों ने प्रत्यक्ष निरीक्षण करने के बाद इन बातों को सत्य प्रमाणित किया है। प्राचीन आदि-वासियों में इतनी गहरी आत्मीयता होती है, इसीलिए समाज का एक व्यक्ति पीड़ित हुआ तो शेष सारे पीड़ित हो जाते हैं। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि विश्वात्मा एक ही है। प्रत्येक व्यक्ति अपना पृथक् अहङ्कार छोड़ दे, अहमन्यता का सिद्धान्त छोड़ दे और प्रयत्न करे तो विश्वात्मा के साथ एकरूप हो सकता है और इस प्रकार सर्वोच्च दिव्य ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

दशम अध्याय: ब्रह्मविद्या

(१) शरीर-त्रय

(कारण, सूक्ष्म और स्थूल)

अनादि अविद्या का नाम कारण शरीर है।

लिङ्ग शरीर वस्तुतः सतरह तत्त्वों का बना है-पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ (कान, त्वचा, आँख, जीभ और नाक), पाँच कर्मेन्द्रियाँ (वाणी, पाणि, पाद, उपस्थ और गुदा), पञ्च प्राण, मन और बुद्धि। भौतिक शरीर से जब लिङ्ग शरीर अलग हो जाता है, तब उसे मृत्यु कहते हैं। लिङ्ग शरीर अपञ्चीकृत होता है। वह भोग का साधन है।

लिङ्ग शरीर में मन तीव्र गति से काम करता है और उसमें विचरता है। स्थूल शरीर कुछ नहीं जानता है, जड़ रहता है।

कर्मेन्द्रियों की उत्पत्ति तन्मात्राओं के रजो भाग से होती है। आकाश के रजो भाग से वाक्, वायु के रजो भाग से पाणि, अग्नि के रजो भाग से पाद, जल के रजो भाग से उपस्थ और पृथ्वी के रजो भाग से गुदा का निर्माण होता है। इन पाँचों तन्मात्राओं के रजोगुण के योग से पञ्च प्राणों की प्राण, अपान, ब्यान, उदान और समान की उत्पत्ति होती है। सूक्ष्म या लिङ्ग शरीर सतरह तत्त्वों से बनता है। स्वप्न में लिङ्ग शरीर ही काम करता है। प्राणमय, मनोमय और विज्ञानमय कोश इसी लिङ्ग शरीर से सम्बन्धित हैं।

श्रवण का अधिष्ठातृ देवता दिक्, स्पर्श का अधिष्ठातृ देवता वायु, नेत्र का अधिष्ठातु देवता सूर्य, रसना का अधिष्ठातृ देवता वरुण और गन्ध का अधिष्ठातृ देवता अश्विनीकुमार है। वाणी का अधिष्ठातृ देवता अग्नि, पाणि का अधिष्ठातृ देवता इन्द्र, पादों का अधिष्ठातृ देवता उपेन्द्र (विष्णु), पायु इन्द्रिय का अधिष्ठातृ देवता यम और उपस्थ का अधिष्ठातृ देवता प्रजा-पति है।

पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ कर्मों की भी इन्द्रियाँ हैं। श्रवण, स्पर्श, दर्शन, स्वादन और घ्राणन भी कर्म ही हैं। रही, दोष-दृष्टि रही तो एक स्त्री दिखी तो किया जाता है। दृष्टि यदि शुद्ध नहीं आँख द्वारा दुष्कर्म किया जाता है ।

कान, त्वचा, आँख, जिह्वा और नाक पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ हैं; जिनसे सुनना, स्पर्श करना, देखना, चखना और सूंधना होता है। इन्द्रियों का विषय से सम्पर्क होता है तब शीत-उष्ण और सुख-दुःख आदि संवेदनाएँ होती हैं। शरीर को अपने वश में रखिए। सन्तुलन रखिए। शरीर के दास न बनिए। शरीर को अपना साधन बनाइए ।

आत्मा या ब्रह्म इन तीनों शरीरों से परे है।

माया ने कारण शरीर, सूक्ष्म शरीर और स्थूल शरीर रूपी तीन आवरण जीव पर डाले हैं। सबसे अन्दर का आवरण कारण शरीर है। उसके ऊपर है लिङ्ग शरीर और फिर स्थूल शरीर । जैसे सबसे अन्दर बनियाइन फिर कमीज और ऊपर कोट पहनते हैं वैसे ही हैं ये। जब जीव माया-रचित इन आवरणों को धारण कर लेता है तब अपना दिव्य स्वभाव भूल जाता है।

ईश्वर के कारण शरीर का निर्माण शुद्ध सत्त्व से अर्थात् माया से होता है। मलिन सत्त्व अर्थात् रजोगुण (अविद्या) से जीव का कारण शरीर बनता है। माया पर ईश्वर का नियन्त्रण होता है। जीव अविद्या से बहक जाता है।

कारण शरीर कर्म-प्रवृत्तियों का परिणाम है; मानो वह कर्म का बच्चा है। वह उसी में जीता है, पलता है और कर्म के प्रभाव समाप्त हो जाने पर उसी में लीन भी हो जाता है।

कारण शरीर बीज के समान है जिसके अन्दर सूक्ष्म रूप में सम्पूर्ण वृक्ष निहित रहता है। इसीलिए वह बीज शरीर भी कहा जाता है। इसी बीज शरीर में से यह स्थूल शरीर, मन, प्राण और इन्द्रियाँ उत्पन्न हुई हैं।

मनुष्य की बुद्धि में जो कुछ संस्कार गहराई तक प्रवेश कर जाते हैं, उनमें जो कुछ उच्चतर भावनाएँ और आकांक्षाएँ रहती हैं, वे सब उस मनुष्य के कारण शरीर में अमिट रूप से अङ्कित हो जाती हैं।

योगी का लिङ्ग शरीर जब अन्नमय कोश में से गुजरता है तो स्वयं पार्थिव वन जाता है, जल-कोश में से गुजरता है तब वह जल-रूप बन जाता है और अग्नि-कोश में से गुजरता है तब अग्नि-रूप बन जाता है। अग्नि-रूप शरीर से वह वायु-कोश में जाता है और वहाँ से आकाश कोश में । वह तन्मात्राओं और इन्द्रियों के आवरण में से भी गुजरता है। वह प्राण में से भी जाता है और सम्पूर्ण कर्म-रूप बन जाता है। इस प्रकार स्थूल और सूक्ष्म शरीर में से गुजरने के बाद योगी छठे आवरण में -अहङ्कार-तत्त्व में- प्रवेश करता है जो तन्मात्राओं और इन्द्रियों का समावेश कर लेता है। उसके पश्चात् महत्-तत्त्व (प्रज्ञा) में जा कर फिर प्रधान (मूल प्रकृति) में जाता है और वहाँ सारे गुण विश्राम करने लगते हैं। वहाँ वह स्वयं प्रधान-रूप बन कर सारी उपाधियों से मुक्त होता है और शान्ति और आनन्द के अधिष्ठान - आत्मा - में परिर्वात्तत होता है।

जिस प्रकार घी, मलाई, काड लिवर आयल आदि से पार्थिव शरीर में स्थूलता आती है, उसी प्रकार भावनाएँ और पाशविक प्रवृत्तियाँ लिङ्ग शरीर को स्थूल बनाती हैं; अतः भावना और उद्वगों को रोकने से लिङ्ग शरीर पर विजय पायी जा सकती है।

लिङ्ग शरीर में भी पुरुष-स्त्री आदि काल्पनिक लिङ्ग-भेद रहता है। स्वर्ग में भी मैथुन है, पर गर्भधारण नहीं। स्वर्ग में सुखानुभव करने की दृष्टि से लिङ्ग शरीर तेजोमय शरीर से युक्त हो जाता है।

लिङ्ग शरीर इस स्थूल शरीर का वाष्प के समान धुंधला दिखायी देता है। शरीर को स्थूल शरीर से अलग करके उस द्वितीय रूप-सा है और सिद्ध योगी इस लिङ्ग सूक्ष्म शरीर के साथ विभिन्न स्थानों में भ्रमण करते हैं। पहुँचे

हुए योगी इस स्थूल शरीर को ही सूक्ष्म रूप में बदल कर जहाँ चाहे विचरण करते हैं। इन सब क्रियाओं के लिए बहुत शक्ति की आवश्यकता होती है।

इस सूक्ष्म देह को अग्नि जला नहीं सकती ।. सूक्ष्म शरीर चट्टानों के अन्दर सुगमता से प्रवेश कर सकता है, वायु में उड़ सकता है, धधकती आग में कूद सकता है और सागरों के तले तक डुबकी लगा सकता है। बिजली के वेग से वह चल सकता है। एक सेकण्ड में वह कोलम्बो से लन्दन जा सकता है। पर्वतों के शिखरों पर से गिर जाय तो भी उसे रत्तीभर चोट नहीं लगती ।

भौतिक शरीर आता है, टिकता है और जाता है। वह पाँच तत्त्वों का मिश्रण है। वह जड़ है। वह सादि तथा सान्त है। शुद्ध आत्मा न तो आता है न जाता है। फिर उसके लिए शोक क्यों ? बच्चो, आप स्वयं वह आत्मा हैं।

यह शरीर रथ के समान है। वह अचेतन है। इस शरीर का चालक आत्मा है। वह चेतन आत्मा इस शरीर में बसता है। इस आत्मा के कारण शरीर में कुछ चैतन्य है।

शरीर अचेतन है, जीवात्मा के रहने के कारण वह भी चेतन जैसा बन जाता है। शरीर से जीवात्मा निकल गया तो वह सूखी लकड़ी की तरह निश्चेष्ट हो जाता है। उसके तत्त्व अलग-अलग हो कर विकीर्ण हो जाते हैं। यद्यपि जीवात्मा इस शरीर को पूरा व्याप्त कर लेता है तब भी वह शरीर से भिन्न स्वतन्त्र अस्तित्व वाली शक्ति-विशेष है और उससे पृथक् रह सकता है। यह जीवन्त सत्य है; शुद्ध ज्ञान है।

जीवात्मा पञ्च-कोशों से समावृत है। जो मनुष्य अपने आध्यात्मिक जीवन में क्रमशः विकास करता जाता है, उसके ये कोश शनैः शनैः ढीले पड़ते जाते हैं। उसकी प्रज्ञा निम्न स्तर से उच्च स्तर की ओर बढ़ती जाती है। वह अधिकाधिक आनन्द और मुक्ति अनुभव करता है। वह बलवान्, शुद्ध और अजेय होता है। वह अपनी इच्छा-शक्ति से इन्द्रियों और मन को नियन्त्रित कर सकता है। इच्छा-शक्ति आत्म-बल ही है।

पञ्च-कोशों का ज्ञान स्पष्ट होने से व्यक्ति भ्रम में नहीं पड़ता है; अतः पहले इन पञ्च-कोशों का स्वभाव और कार्य जानने का प्रयत्न करना चाहिए। इन पञ्च-कोशों से भिन्न जो है वही सत्-चित्-आनन्द-रूप आत्मा है, यही मानव स्वयं है। यह आत्मा प्राणिमात्र में विद्यमान है। सर्वत्र, सर्वदा वह है। इन कोशों का, इन भ्रमात्मक उपाधियों का निषेध कीजिए, इनको समाप्त कीजिए और इनके अधिष्ठान-रूप अमर अखण्ड आत्मा के साथ तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न कीजिए ।

अपने ऊपर छाये हुए अनन्त जन्मों की सञ्चित वासनाओं के कारण जीवात्मा इन कोशों तथा इनकी प्रवृत्तियों के साथ एक-रूप हो जाता है और इसके ही कारण आप अपने आत्म-प्रकाश या अनन्त आनन्द का अनुभव नहीं कर पाते हैं। वह आपकी पकड़ के बाहर हो जाता है; लेकिन सतत ध्यान और अन्वेषण के द्वारा ये बाधाएँ दूर हो जाती हैं जिससे उस चरम लक्ष्य की प्राप्ति हो सकती है।

प्राणिमात्र में विद्यमान आत्मा ही ब्रह्म है। उस ब्रह्म का न कोई कारण है न कार्य, न अन्तः है न बाह्य। उसमें कोई अभाव नहीं है, अशुद्धि नहीं है, लम्बाई-चौड़ाई नहीं है, वर्ण नहीं है, न रूप हैन आकार ही। उस ब्रह्म का कोई अङ्ग नहीं, अव्यव नहीं, नाम नहीं, जात नहीं, हाथ-पैर नहीं। वह ब्रह्म प्रज्ञा का, शान्ति और आनन्द का प्रतिरूप है।

वह आत्मा या ब्रह्म शुद्ध, शान्त, स्वयं-ज्योति, अव्यय, अविनाशी, शाश्वत और मुक्त है। वह अशरीरी, अजन्मा, अनन्त है। वह अपनी ही महिमा से महिमान्वित है, उसका कोई अन्य आधार नहीं है और अपने ही वैभव से प्रकाशमान है।

(२) अवस्था-त्रय

इस जाग्रत अवस्था का अभिमानी विश्व है। स्वप्नावस्था का अभिमानी तैजस् और हढ़ सुषुप्ति का अभिमानी प्राज्ञ है। यह पिण्डाण्ड का सूक्ष्म दर्शन है।

पिछले पाठों में संसार के स्वरूप की चर्चा करते हुए हमने एक दृष्टान्त दिया था कि मायावी डोरी का एक सिरा आकाश में फेंकता है और उस डोरी के सहारे चढ़ता है, फिर कुछ समय के लिए वह अदृश्य हो जाता है। उसके बाद उसका शरीर टुकड़े-टुकड़े हो कर भूमि पर बिखर जाता है। वे टुकड़े फिर एकत्रित हो कर जुड़ते हैं और वही मायावी उठ खड़ा होता है। इस इन्द्र-जाल का रहस्य जानने की चिन्ता दर्शकों को नहीं होती है। वे तत्काल के लिए स्तम्भित रह जाते हैं। वे आश्चर्य से चकित हो जाते हैं। इसी प्रकार यह जाग्रति, स्वप्न और सुषुप्ति डोरी फेंकने के समान है। विश्व, तैजस् और प्राज्ञ वह मायावी है जो उस डोरी पर चढ़ते हुए दिखायी देते हैं। वास्तव में इस सम्पूर्ण खेल का सूत्रधार उस डोरी से भिन्न और उस मायावी से भी भिन्न कोई और ही है। जिस प्रकार शुरू से अन्त तक वह मायावी माया के बल पर वहीं पड़ा रह कर भी दर्शकों को दृष्टिगत नहीं होता. उस प्रकार ब्रह्म भी सर्वदा सामने रह कर भी मौन साक्षी मात्र ही रहता है। वह सांसारिक मनुष्यों को दिखता नहीं है; क्योंकि अविद्या का आवरण बीच में है। ध्यान-योग के बल से वह आवरण ज्यों ही हटा दिया जाय त्यों ही ब्रह्म अपने प्राकृतिक वैभव और ऐश्वयं से विभासित हो जाता है। ध्याता उसको (ब्रह्म को) जान कर वही (ब्रह्म) बन जाता है।

जाग्रत-अवस्था में पुरुष अपने श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, नासिका आदि पाँच ज्ञानेन्द्रियों द्वारा पाँचों प्रकार के स्थूल विषयों का भोग करता है। वह सारी सृष्टि के प्रति सजग रहता है। उसकी बुद्धि बहिःप्रज्ञा कहलाती है। इस स्थिति में जीव विश्व कहलाता है।

राजा अपनी मोटर-कार में बैठ कर सारे नगर में घूमता है। वैसा ही है वह जीव का जाग्रतावस्था में विश्व-भ्रमण करना । राजा लौट कर अपने राजप्रासाद में आता है। इसी प्रकार जीव की स्वप्नावस्था है। राजा रात को सो जाता है और यह जीव की सुषुप्तावस्था जैसा है।

सरोवर की सतह की उपमा अवचेतन मन से दी जाती है। सरोवर का तलप्रदेश अवचेतन मन (चित्त) जैसा माना जाता है। सरोवर के तल से ऊपरी सतह तक जिस प्रकार कई चीजें आती हैं उससे अवचेतन मन से चेतन मन तक आने वाली भाव-नाबों की तुलना की जाती है। मन को विचलित करने वाली विक्षेप-शक्ति की उपमा सरोवर के पानी को विक्षुब्ध करने वाली वायु से दी जाती है। जाग्रत अवस्था में विक्षेप-शक्ति, व्यक्ति के सङ्कल्प और वासनाएँ मन को कलुषित करते हैं। स्वप्नावस्था में एकमात्र विक्षेप-शक्ति हलचल करती है। सुषुप्ति में मन सम्पूर्ण शान्त रहता है।

जाग्रतावस्था में भी मन कभी-कभी कुछ समय के लिए पूर्ण शान्ति अनुभव करता है और सभी सङ्कल्पों और राग-द्वेषादि द्वन्द्वों से मुक्त रहता है। इस स्थिति में प्रज्ञा आन्तरिक बनती है, वह अन्तःप्रज्ञा कहलाती है। वह मानसिक वृत्तियों से मिली नहीं होती है।

जाग्रतावस्था के ये ही अनुभव स्वप्न में, वासनाओं और संस्कारों के द्वारा दोहराये जाते हैं। कुछ परिवर्तन, कुछ मिश्रण होता है, कुछ गूढ़ता भी आ जाती है। स्वप्न का निर्माण करने वाला मन ही होता है। मन ही विषय है, मन ही कर्म है। मन ही स्त्री, घोड़ा, गाड़ी, गाड़ीवान्, सड़क, नदी, शहर आदि नाना रूप लेता है।

निद्रा के समय आत्मा पर आवरण रहता है और जाग्रता-वस्था में विक्षेप रहता है। जो इन आवरण और विक्षेप से परे है, वही आत्मा है। योग-शास्त्र कहता है-

"निद्रालुर्जागरत्यन्ते यो भाव उपजायते ।
तं भावं भावयन् नित्यं मुच्यते नेतरो यतिः ।।"

वैज्ञानिक केवल जाग्रत-अवस्था के ही निरीक्षण और परीक्षण के द्वारा निर्णयों पर पहुँचता है; इसीलिए वे सही नहीं हैं। 'सही अनुभव के लिए जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं का निरीक्षण आवश्यक है। वेदान्ती तीनों का अध्ययन करता है। इनसे उसे चतुर्यावस्था का सङ्केत मिलता है। सुषुप्ति-अवस्था के अध्ययन से तुरीयावस्था के आंस्तत्व की बात समांत में आती है।

स्वप्नावस्था में मनुष्य पाँचों विषयों का उपभोग करता है। इस अवस्था में उसकी शेष इन्द्रियाँ तो आराम करती हैं; पर मन जाग्रत रहता है। मन ही विषय है, वही कर्म भी है। वही सारे स्वप्न-चित्र तैयार करता है। इस स्थिति में जीव तैजस् कहलाता है। यहाँ अन्तःप्रज्ञा होती है। शास्त्र कहता है :-"जब वह सोता है तब न रथ होता है, न घोड़ा होता है और न सड़क; पर वह स्वयं रथ, घोड़ा, सड़कादि सब निर्मित कर लेता है" (बृहदारण्यक : ४, ३-६-१०) ।

स्वप्न-जगत् इस जाग्रत जगत् से भिन्न है। एक व्यक्ति जो पूर्ण स्वस्थ है और कलकता में सोया है, वह उसी समय दिल्ली में एक बीमार बन कर घूमता रहता है और इसका विपरीत दृश्य भी दिखता है। सुषुप्ति इन दोनों से- स्वप्नलोक और जाग्रत-लोक से-भिन्न है। जागते हुए पुरुष को यह संसार और यहाँ की वस्तुएँ जितनी सत्य हैं

स्वप्नावस्था में उसे वहाँ का लोक और वहाँ की चीजें भी उतनी ही सत्य हैं। स्वप्न देखने वाला आदमी यह नहीं जानता कि वे चीजें असत्य हैं।

साथ ही स्वप्न-जगत् के अतिरिक्त जाग्रत-लोक के अस्तित्व की बात भी उसे मालूम नहीं रहती है। अन्तःकरण बदलता है। इस परिवर्तन ही के कारण जाग्रति और स्वप्न के अलग-अलग अनुभव आते हैं। विषयों में कोई परिवत्तंन नहीं होता है। केवल मन में परिवत्तंन होता है। जागना या स्वप्न देखना यह मन का ही खेल है।

स्वप्न चाहे जितने असम्बद्ध हों, पर जब तक वे हैं तब तक स्वप्न देखने वाला उन्हें सत्य ही समझता है। कभी-कभी वह ऐसा भी दृश्य देखता है कि उसका शिर कट गया है और वह आसमान में उड़ता जा रहा है।

स्वप्न देखने वाले को स्वप्न में दिखी हुई सारी चीजें सत्य लगती हैं और स्वप्न में जो-कुछ अनुभव होता है, वह भी सत्य-सा प्रतीत होता है। जब नींद से जागता है, तभी समझ पाता है कि अब तक जो देखा, झूठ था, भ्रम था। इस जाग्रतलोक में जीव की यही स्थिति है। अज्ञानी जीव इस दृश्य जगत् के सारे वैषयिक सुखों को सत्य ही मानता है। लेकिन जब वह पदार्थों की वास्तविकता समझ लेता है तब उसका दृष्टिकोण बदल जाता है। जब उस पर से अविद्या का परदा हट जाता है तब वह अनुभव करता है कि स्वप्नलोक के ही समान यह जाग्रतलोक भी असत्य है।

स्वप्न में एक गरीब आदमी शक्तिशाली राजा बन जाता है। अनेक प्रकार का सुख भोगता है। राजकुमारियों से विवाह करता है। भव्य राजमहल में रहता है। बाल-बच्चे होते हैं। अपनी बड़ी लड़की का दूसरे राजकुमार से विवाह करता है। पत्नी समेत दूसरे राष्ट्रों में भ्रमण के लिए जाता है। तीर्थ-यात्रा करता है। काशी में निमोनिया हो कर मरता है। पाँच मिनट के अन्दर ये सारे अनुभव उसको हो जाते हैं। क्या ही आश्चर्य है !

स्वप्नावस्था की ही तरह जाग्रत अवस्था में भी जो-कुछ है सब निःसार है; परन्तु दोनों में इतना अन्तर है कि स्वप्नलोक की वस्तुएँ आन्तरिक और सूक्ष्म होती हैं और जाग्रतलोक में वस्तुएँ स्थूल और प्रत्यक्ष हैं। स्वप्न और जाग्रत के वैषयिक अनुभव एक समान होने से विवेकी मनुष्य दोनों को एक समान ही मानता है। स्वप्न या भ्रम जैसे हवा के महल हैं वैसे ही यह दृश्य जगतु भी है। यह वेदान्त की घोषणा है।

स्वप्न में कई असङ्गतियाँ दिखायी देती हैं। जो राजा अपार धन का स्वामी है, स्वप्न में गलियों में भीख माँगता हुआ दिखता है। जो साधक परिशुद्ध है स्वप्न में उपदंश रोगों से तड़पता दिखता है। महापराक्रमी योद्धा स्वप्न में शत्रुओं से डर कर युद्ध छोड़ भागता हुआ दिखता है। कमजोर बीमार आदमी किसी पहलवान से कुश्ती लड़ता हुआ दिखता है। जीवित मनुष्य मरा हुआ दिखता है। उसे दिखता है कि उसका जीवित पिता मर गया है और वह रो रहा है। पिता के दाहकर्म में वह स्वयं भाग ले रहा है। शहर में सोया हुआ व्यक्ति स्वप्न में कभी शेर देखता है और जोर से चीख उठता है। अपने तकिये को ही पेटी मान कर उठा लेता है और रेलवेस्टेशन चल देता है। थोड़ी दूर जाने

के बाद देखता है, सारा सपना है, तो लौट आता है। कुछ लोग समझते हैं कि वे पाखाने में बैठे हैं और वास्तव में बिस्तर खरान कर देते हैं।

राजा जनक ने कई पण्डितों से पूछा- "यह असत्य है कि वह असत्य है?" एक पण्डित ने कहा- "वह असत्य है।" जनक ने पूछा- "वह असत्य है। इससे आपका क्या अभिप्राय है?" पण्डित ने उत्तर दिया- "वह का अर्थ है स्वप्न ।" जनक को इससे सन्तोष नहीं हुआ। दूसरे पण्डित ने कहा- "यह (विश्व) असत्य है।" अष्टावक्र ने कहा- "दोनों असत्य हैं।" जनक ने पूछा- "हे अष्टावक्र ऋष; दोनों से आपका क्या तात्पर्य है?" अष्टावक्र ने कहा- "दोनों जाग्रति और स्वप्न की अवस्थाएँ असत्य हैं। एकमात्र ब्रह्म ही सत्य है।" तब जनक को सन्तोष हुआ ।

स्वप्न में भी आप भगवान् की सनिधि में ही रहते हैं। किसी प्रापञ्चिक चित्र को पहचानते नहीं हैं।

राजा अजातशत्रु गार्ग्य ब्राह्मण को एक सोते हुए आदमी के पास ले गया। उसको राजा ने बुलाया, पर वह बोला नहीं। जब अजातशत्रु ने उसे हाथ से छुआ तब वह उठ बैठा। तब राजा ने ब्राह्मण से पूछा- "मनुष्य का मन जो ज्ञान से पूर्ण है, नींद में कहाँ जाता है? और जागने पर कहाँ से लौट आता है ?" लेकिन गार्ग्य ने कोई उत्तर नहीं दिया। तब अजातशत्रु ने पूर्णरूप से समझाया कि कैसे स्वप्न में मन घूमता-फिरता है, कैसे वह सब-कुछ अपना मानता है, स्वेच्छा से यह रह सकता है, कभी बड़ा राजा बनता है तो कभी ब्राह्मण बनता है। फिर कैसे वह परम आनन्द और उन्नततर स्थिति में रहता है, अर्थात् निःस्वप्न निद्रा की स्थिति में जब किसी भी वस्तु का उसे भान नहीं रहता है। इस स्थिति में मनुष्य की आत्मा दृश्य जगत् की वस्तुओं से अप्रभावित रह कर अपने स्वरूप में विश्राम लेता है। इस स्थिति में धौर ब्रह्म में कोई अन्तर नहीं रहता ।

पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक मानते हैं कि गहरी निद्रा में भी अवचेतन मन काम करता रहता है, उस समय भी चैतन्य कुछ जाग्रत रहता है; क्योंकि गहरी निद्रा समाप्त होने के बाद मनुष्य को उस नींद का स्मरण होता है। यह ठीक नहीं है। अवचेतन मन केवल स्वप्नावस्था में ही काम करता है। सुषुप्ति की अवस्था में मन रहता ही नहीं। वह अपने कारण रूप में चला जाता है, अर्थात् कारण शरीर में या आनन्दमय-कोश में लीन हो जाता है। सुषुप्ति में कारण शरीर या मूल अविद्या काम करती रहती है। सुषुप्ति में चैतन्य, अथवा प्राज्ञ भी रहता है। गहरी नींद के आनन्द का स्मरण करने वाला वह प्राज्ञ ही है। बुद्धि जब सुषुप्ति-अवस्था से जुड़ी रहती है वह प्राज्ञ कहलाती है। स्वप्नावस्था के साथ जुड़ी रहती है तब तैजस् कहलाती है और जाग्रत अवस्था से जुड़ी रहती है तब विश्व कहलाती है। बुद्धि की ये सारी अवस्थाएँ एक ही हैं। कारण शरीर, बीज शरीर, आनन्दमय- कोश, मूल अविद्या अथवा अज्ञान- ये सारे पर्यायवाची शब्द हैं।

जीव माया के इस नवद्वारयुक्त नगर में सुषुप्ति-अवस्था का आनन्द लेता है। इस अवस्था में कोई वृत्ति या सङ्कल्प नहीं है, भावपरिवर्त्तन या विषय-भोग नहीं है, रागद्वेष का प्रभाव या बुद्धि का काम भी नहीं होता है। इस स्थिति में सत्य या असत्य का ज्ञान कुछ नहीं रहता है।

निद्रा में मनुष्य अपनी सारी इन्द्रियों को बाह्य विषयों से परावृत्त करके अन्तमुख हो जाता है। प्रौढ़ मनुष्य की अपेक्षा बच्चा अधिक सोता है। प्रौढ़ मनुष्य एक वृद्ध से अधिक सोता है। निद्रा से मनुष्य के मन, शरीर तथा इन्द्रियों को आराम मिलता है और उत्साहपूर्वक काम करने की शक्ति मिलती है। अतः निद्रा ही जीवन है। जब भूख लगती है तब आदमी बाहर दौड़ता है। यह उसके विपरीत स्थिति है।

सुषुप्ति में मन और इन्द्रियाँ पूर्ण विश्राम करती हैं। मन कारण शरीर धारण कर लेता है। जीव इस अवस्था में प्राज कहलाता है। आनन्दमय-कोश काम करता रहता है। जीव और ब्रह्म के बीच एक परदा रहता है।

सुषुप्ति का आनन्द भावात्मक सुख नहीं है। वह आनन्द इन्द्रियातीत है। वह आनन्द इन्द्रियों का विषयों से प्रत्यक्ष संयोग द्वारा प्राप्त नहीं होता है। सुषुप्ति में तो काम करने वाला कारण शरीर या आनन्दमय कोश है। सुषुप्ति में अविद्या-वृत्ति और प्राज्ञ (कारण शरीर युक्त चैतन्य) रहते हैं। मन और अहङ्कार अज्ञान में लीन हो जाते हैं। वे सुषुप्ति में नहीं रहते हैं। प्राज्ञ को घन सुषुप्ति के आनन्द का भान रहता है। यह प्राज्ञ ही जाग्रतावस्था में विश्व के रूप में सुषुप्ति के आनन्द को स्मरण करता है। व्यक्ति ने जो-कुछ भी अनुभव किया है, वह उसे स्मरण कर सकता है। कुएँ में अंगूठी गिर गयी हो और उसे निकालने के लिए आदमी ने पानी में गोता लगाया हो तो पानी के अन्दर का अनुभव वह पानी के अन्दर रहते हुए नहीं व्यक्त कर सकता है। इसी तरह प्राज्ञ सुषुप्ति-अवस्था के आनन्द को सुषुप्ति-अवस्था में ही नहीं व्यक्त कर सकता; किन्तु विश्व (जाग्रत अवस्था से जुड़ा हुआ चैतन्य) उसका अनुभव कर सकता है। इस प्रकार विश्व, तेजस् और प्राज्ञ तीनों एक ही हैं।

जाग्रत होते ही स्वप्न असत्य हो जाता है।' जाग्रति की स्थिति स्वप्न में नहीं रहती है। सुषुप्ति में ये दोनों जाग्रति और स्वप्न की स्थितियाँ - नहीं रहती हैं। सुषुप्ति की स्थिति स्वप्न और जाग्रति में नहीं रहती है। अतः तीनों स्थितियाँ असत्य हैं। सत्त्व, रजस् और तमोगुण के कारण ये होती हैं। ब्रह्म इन तीनों स्थितियों का मौन साक्षी है। वह इन तीनों स्थितियों से परे है। वह शुद्ध आनन्द है, शुद्ध चेतन्य है और परम सत्ता है।

सुषुप्ति और समाधि में यह अन्तर है कि सुषुप्ति समाप्त होने पर आत्मज्ञान नहीं रह जाता है। सुषुप्ति के पहले का वही मन, वे ही वासनाएँ, वे ही विचार, वे ही संस्कार फिर घेर लेते हैं; परन्तु समाधि में योगी पूर्ण प्रकाश ले कर आता है। आत्म-ज्ञान से वह परिपुष्ट रहता है। उसके पुराने संस्कार पूर्णतः जल जाते हैं। वहाँ मनोनाश हो जाता है। अब वह एक नया मनुष्य हो जाता है। उसकी दृष्टि समदृष्टि होती है। उसका मन सन्तुलित होता है। वह सभी संशयों, सभी भयों और सभी आकांक्षाओं से मुक्त रहता है। वह सबका संशय दूर कर सकता है।

मूर्च्छा केवल अर्द्धनिद्रा है। इसलिए यह नहीं समझना चाहिए कि मूर्च्छा में जीव ब्रह्मानन्द प्राप्त कर सकता है अथवा उसका आत्मा ब्रह्म का आधा अङ्ग बन जाता है।

मूर्च्छा एक प्रकार से आंशिक निद्रा है। अचेतनावस्था का आधा भाग गहरी नींद की ओर होता है और बाकी आधा मृत्यु की ओर। वह मृत्यु का द्वार है। यदि जीव के कर्म अवशेष रहे तो वह चैतन्यावस्था में लौट आता है, अन्यथा

मर जाता है। मूर्च्छावस्था में मन न तो कारण शरीर में रहता है और न कण्ठस्थ हितानाड़ी में ही। वह जड़ हो जाता है, स्तब्ध हो जाता है। हितानाड़ी और कारण शरीर दोनों के बीच वह विश्राम लेता है।

मूर्च्छा में जाग्रति, स्वप्न और सुषुप्ति से भिन्न अद्धं निद्रावस्था होती है। मूच्छित मनुष्य कुछ भी नहीं समझ पाता है। मूच्छित मनुष्य का शरीर धरती पर गिर जाता है। अतः मूच्छित मनुष्य जाग्रतावस्था में नहीं रहता है। चूंकि वह पूर्ण अचेतन होता है, इसलिए स्वप्नावस्था में भी नहीं रहता है। तो क्या वह मृत है ? नहीं; उसमें जीव है, उष्णता है। वह साँस लेता है, इसलिए बह मरा नहीं है। मूच्छित मनुष्य का शरीर काँपता है। उसका चेहरा विकृत हो जाता है। उसकी आँखों की टकटकी बंध जाती है। इसके विपरीत सुषुप्ति-अवस्था में मनुष्य शान्त और स्वस्थ दिखता है। आँखें बन्द रहती हैं। उसका शरीर काँपता नहीं है। सोया हुआ आदमी थोड़ी-सी आवाज से या उसका नाम ले कर पुकारने से आसानी से जाग जाता है; पर मूच्छित मनुष्य छड़ी से पिटने पर भी जागता नहीं है। शिर पर जोर से चोट लगने पर मूर्च्छा बाती है, जबकि नींद परिश्रम के थकान से आती है।

सुषुप्ति वीज-रूप है और जाग्रति और स्वप्न उसके फल हैं। सुषुप्ति कुछ अंशों में समाधि से भिन्न हो जाती है। सुषुप्ति यदि जाग्रति या स्वप्न में बदल न जाती तो वह समाधि या अपरोक्षा-नुभूति ही हो जाती है।

तुरीयावस्था उपयुक्त तीनों अवस्थाओं से परे है। जो योगी मन और इन्द्रियों पर नियन्त्रण स्थापित कर सका है, देहाध्यास से मुक्त है, त्रिगुणातीत है और सच्चिदानन्द ब्रहम से अपनी एकात्मता अनुभव करता है, वह उस आनन्दमय या परम चैतन्य-मय अवस्था का उपभोग करता है। यही परम गति अथवा मोक्ष है।

सुषुप्ति और जाग्रति के बीच जो सन्धि-अवस्था है, वह तूष्णीभावावस्था कहलाती है। इसी प्रकार जाग्रति और सुषुप्ति के बीच में भी सन्धि-स्थिति है। पहली सन्धि-स्थिति में मन सुषुप्ति का रसास्वाद करके बाहर निकलता है तो दूसरी में प्रापञ्चिक विषय-सुखों का आस्वाद ले कर हृदय के अन्तराल में प्रवेश करता है। इन दोनों सन्धियों में मन में कोई सङ्कल्प, आकर्षण या विकर्षण नहीं रहता है। शास्त्रों ने कहा है:-

"स्वप्नप्रबोधयोः सन्धौ आत्मनो गतिमात्मवृक् ।
पश्यन् बन्धं च मोक्षं च मायामात्रं न वस्तुतः ।।

- आत्मतत्त्व के अन्वेषकों को जाग्रति और सुषुप्ति के बीच की सन्धि-स्थिति में उसे खोजना चाहिए। यह समझ लेना चाहिए कि बन्ध या मोक्ष केवल माया के भ्रममूलक हैं, वास्तविक नहीं" (भागवत ७-३-५) ।

(३) ब्रहमविद्या (ब्रहमज्ञान)

ब्रहमविद्या का अधिकारी वह मनुष्य है, जो कर्तव्यकर्मों द्वारा चित्तशुद्धि प्राप्त कर चुका हो और कर्मफल के प्रति अनासक्त हो ।

केवल ज्ञान ही मोक्ष का एकमात्र साधन है। ज्ञान महा-वाक्यों के विचार अर्थात् सही-सही ज्ञान से उत्पन्न होता है। महावाक्य हैं- तत्त्वमसि आदि। इनसे आत्मा और परमात्मा की एकरूपता प्रकट होती है।

मृत्युरूपी आग ज्ञानरूपी जल से बुझायी जा सकती है। आत्मचिन्तन से ज्ञान मिलता है। आत्मज्ञान से मुक्ति प्राप्त होती हो सो बात नहीं है, क्योंकि आत्मज्ञान ही मुक्ति है।

ऋषियों ने कहा कि संसार में जितने भी भले काम किये जाते हैं, उनमें ऐसा कोई काम नहीं है जो दूसरों की सहायता के बिना अकेले ही मनुष्य को मोक्ष दिलाने की क्षमता रखता हो।

भृगु ऋषि ने उत्तर दिया कि 'मुख्य बात है वास्तविक तत्त्व आत्मा का ज्ञान प्राप्त करना; क्योंकि वह सर्वोत्तम विद्या है, उत्कृष्ट विज्ञान है और वही अमरत्व दिलाने में समर्थ है' (मनुस्मृति अ० १२) ।

गङ्गा नदी की तीन अवस्थाएँ हैं। जाड़ों में वह शुद्ध ब्रह्म की तरह स्वच्छ निर्मल रहती है। उस समय वह पारदर्शी होती है। गरमी के दिनों में उसका स्वरूप बदलता है। तब बरफ का पानी भर जाता है। उस समय उसका स्वरूप ईश्वर का माया विशिष्ट चैतन्य का होता है। वर्षा ऋतु में उसका जल मटमैला होता है। तब उसका स्वरूप अविद्यायुक्त चैतन्य या जीव का होता है। इसी प्रकार जीव भक्ति के द्वारा ईश्वर का रूप लेता है और ज्ञान के द्वारा परब्रह्म के साथ एकरूप हो जाता है।

ब्रह्म सत् और शाश्वत है। यह शरीर असत् और नश्वर है। आत्मा और अनात्मा के विवेक से अमरत्व का स्रोत बहता है। `यही प्राचीन उपनिषदों का ज्ञान है।

आत्मज्ञान प्राप्त करना चाहिए जो परम पुरुषार्थ द्वारा मुक्ति प्राप्त कराता है। ब्रह्मज्ञान मुक्ति का सीधा साधन है। ब्रह्मज्ञान से उत्तम गति प्राप्त होती है। ब्रह्मज्ञान-प्राप्ति को ही पराविद्या कहते हैं। इससे अज्ञान का, संसार के मूल कारण का सर्वथा नाश होता है।

जिस प्रकार मनुष्य को जब तक पता नहीं चलता कि अमुक स्थान में धन गड़ा हुआ है, तब तक उसी स्थान से हो कर बार-बार आने-जाने पर भी उस धन को प्राप्त करना उसके लिए सम्भव नहीं होता है, उसी प्रकार यद्यपि सुषुप्ति में आप उस 'अमर बात्मा का नित्यप्रति अनुभव करते रहते हैं फिर भी उसको पहचानने में आप असमर्थ हैं। ज्ञान द्वारा इस अज्ञान के मिटाने पर ही उस परम तत्त्व के साथ एकरूपता प्राप्त की जा सकती है।

जिस प्रकार गहन अन्धकार को सूर्य मिटा देता है, उसी प्रकार महामोह-रूपी अन्धकार को ज्ञान-सूर्य दूर कर देता है। दीपक की शिखा अंधेरा दूर कर देती है, उसी प्रकार मनुष्य के सारे दुःखों और सङ्कटों की कारणरूप अविद्या को ज्ञान दूर करता है। अतः आत्मज्ञान प्राप्त कीजिए । स्वयं प्रकाशित होइए और आनन्दपूर्वक विचरण कीजिए ।

जो न छोटा है न बड़ा, जो न यह है न वह, जो न इतना है न उतना, उसे ही ब्रह्म समझना चाहिए। एकमात्र ब्रह्म को जान लेने से बाकी सब ज्ञात हो जाता है; जानने को कुछ शेष नहीं रह जाता है। ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने से सारा अस्पष्ट स्पष्ट हो जाता है, सारा अज्ञात ज्ञात हो जाता है।

केवल मात्र वैराग्य से मूल अविद्या का नाश और मोक्ष की प्राप्ति सम्भव है। केवल एक आत्मज्ञान ही ऐसा है जिससे मूल 'अविद्या, मन, इन्द्रियाँ, प्राण और स्थूल शरीर सबका अन्त हो 'सकता है।

विद्या और अविद्या का उतना ही विरोध है जितना कि प्रकाश और अन्धकार का है। अविद्या को ही माया कहते हैं। अविद्या से संसार का बन्धन हढ़ होता है और विद्या संसार को तरने में सहायक होती है।

एक महान् गृहस्थ शौनक ने आङ्गिरस ऋषि से पूछा, "हे भगवन् ! वह कौन-सी वस्तु है जिसके जान लेने से सब-कुछ जाना जाता है (कस्मिन् भगवो विज्ञाते सर्वं विज्ञातं भवति) ?" वह है पराविद्या जिससे अविनाशी ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त होता है।

ज्ञानोदय के होते ही मोक्ष प्राप्त होता है। वह सभी दुःखों और कष्टों से मुक्त होता है। वह परमानन्द की अनुभूति प्राप्त करता है।

वेदान्त में प्रमाण निम्न प्रकार माने जाते हैं: -

१- प्रत्यक्ष प्रमाण

४- उपमान प्रमाण

२-अनुमान प्रमाण

५- अनुपलब्धि प्रमाण

६- शब्द प्रमाण

जप, तप आदि से संस्कार क्षीण होते हैं; पर उनका सम्पूर्ण विनाश करने की सामर्थ्य केवल ज्ञान में ही होती है।

एकाग्रता और ध्यान के बिना आत्मज्ञान प्राप्त करना सम्भव नहीं है। साधनचतुष्टय के द्वारा चित्त को शुद्ध और स्थिर कर लेने के बाद अन्तःशोध और परमात्मा में मन स्थिर करने के लिए तैयार होना चाहिए ।

आत्मज्ञान के समान कोई दूसरा प्रकाश नहीं है। सन्तोष के समान कोई दूसरी निधि नहीं है। सत्य के समान कोई दूसरा सद्गुण नहीं है। आत्मानन्द के समान दूसरा कोई आनन्द नहीं है। आत्मा के समान कोई मित्र नहीं है। अतः

अपनी ही आत्मा को जानना चाहिए। सन्तोष की वृद्धि करनी चाहिए। सत्य-भाषण करना चाहिए। आत्मानन्द का पान करना चाहिए। आत्मा से एकरूप होना चाहिए ।

एकमात्र ब्रह्मज्ञान से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। श्रुतियों ने उद्घोष किया है: "ब्रह्मज्ञानी मृत्यु को पार कर लेता है। मोक्ष के लिए दूसरा कोई मार्ग नहीं।" ऋते ज्ञानान्मुक्तिः-आत्मज्ञान से स्वातन्त्र्य को प्राप्ति होती है। वह फिर कभी जन्म नहीं लेता है।

संसार की कारणीभूत अविद्या का नाश कर्मकाण्डों से नहीं हो सकता है; परन्तु निष्काम भाव से करने से उनसे चित्तशुद्धि होती है। अज्ञान और तज्जन्य प्रभावों को एकमात्र आत्मज्ञान ही निर्मूल कर सकता है।

जिस प्रकार रज्जु में सर्प का आरोप किया जाता है, उसी प्रकार अज्ञान के कारण शुद्ध, व्यापक और अमर आत्मा पर यह नाम, रूप क्रियात्मक संसार आरोपित किया जाता है। आत्म-ज्ञान प्राप्त होते ही कर्तृत्व, भोक्तृत्व आदि उपाधि-सहित द्वत-भाव का नाश हो जाता ।

(४) अध्यास

एक के गुणों का आरोप दूसरे पर किया जाता है, उसे अध्यास कहते हैं। जैसे सीप में चाँदी के गुणों का आरोप किया जाता है।

इसका अभिप्राय यह है कि जिस वस्तु में जो गुण-धर्म नहीं हैं, उनका उसमें आरोप करना अध्यास है। रज्जु को सर्प समझा गया तो यह अध्यास है। कल्पना, भ्रान्ति, अध्यास ये सब पर्याय-वाची शब्द हैं। इस विश्व और शरीर का ब्रह्म अथवा आत्मा में अध्यास किया गया है।

शरीर और आत्मा का सम्बन्ध संयोग सम्बन्ध या समवाय सम्बन्ध नहीं है। प्रकृति और पुरुष के बीच कोई भी सही सम्बन्ध हो नहीं सकता। यह जो सम्बन्ध है वह केवल अध्यास सम्बन्ध है। मन की गलत धारणा के फलस्वरूप ही शरीर को आत्मा से जोड़ते हैं। आत्मा सर्वदा अशरीरी अथवा अतनु है।

इस विश्व में जो भिन्नता दिखायी देती है, उसका कारण है उपाधि । चूंकि ये उपाधियाँ भ्रममूलक हैं, इसलिए इन उपा-धियों के कारण जो भिन्नता दिखती है, वह भ्रान्तिमूलक है।

इसलिए जो अद्वितीय एकमेव ब्रह्म है, वही सबके पीछे है। तीनों कालों में वही एक है।

अध्यास मन का एक भाव है, जिससे भूल के कारण एक को दूसरे रूप में और सच को झूठ के रूप में देखा जाता है। इसमें दृश्य जगत् कारण नहीं है। उसे भूल से सत्य मानना ही कारण है। यह अज्ञानमूलक है। शरीर को ही सत्य आत्मा समक्ष लिया जाता है। मनुष्य अपने को शरीर समझता है। उससे उसकी आसक्ति हो जाती है, लगाव हो

जाता है। यही देहाध्यास है। इस अध्यास का नाश अमर आत्मा के ज्ञान से होता है। प्रवाह के विरुद्ध चलना चाहिए और यही चिन्तन करना चाहिए कि मैं सर्वव्यापक आत्मा है।

यह विश्व ब्रह्म पर आरोपित है। अपवाद युक्ति से यह आरोप निवारण किया जाता है। गलतफहमी को दूर करने का नाम अपवाद है। जिस प्रकार सीप में चाँदी, मृगजल में पानी आदि की भ्रान्तियाँ हैं, उसी प्रकार विश्व को ब्रह्म में समझने की गलतफहमी को दूर करना ही अपवाद है अर्थात् वस्तुस्थिति का सही ज्ञान और भ्रम से प्रभावित न होना। जो भी कार्य है वह कारण से भिन्न नहीं हो सकता। घड़ा मिट्टी से भिन्न नहीं है। गहना स्वर्ण से भिन्न नहीं है। इसी प्रकार सारा विश्व ब्रह्म ही है। विश्व ब्रह्म में है, ऐसा समझना अशुद्ध है।

ज्ञान का आधार आत्मा है। वह दो प्रकार का है- जीवात्मा और परमात्मा । परमात्मा ही भगवान् है, सवंश है। वह एक ही है और सुखदुःखातीत है। जीवात्मा प्रत्येक शरीर में रहता है। वह व्यापक और अविनाशी है।

शरीर आपका साधन है, आप ही नहीं है। भय बढ़ा पाप है। स्वार्थ बड़ा अपराध है। स्वयं को शरीर समझना बहुत बड़ा दोष है। अपना आत्मस्वरूप भूल जाना महान् भूल है।

एक छोटी कहानी सुनिए। एक शेर का बच्चा था। वह बहुत छोटा था तभी उसकी माँ मर गयी। उस समय वह बच्चा भेड़ों के बीच में था। भेड़ों ने उस शेर के बच्चे का पालन-पोषण किया। वह बच्चा बढ़ा और शेर बन गया। वह भी भेड़ों की तरह 'में-में' करता रहता था। एक दिन एक दूसरा शेर वहाँ आ निकला। उसने देखा कि एक शेर 'में-में' कर रहा है, भेड़ों की तरह रह रहा है। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ और धक्का भी लगा। उस शेर से उस वास्तविक शेर ने पूछा, "क्यों भाई ! यह क्या बात है ? तुम यहाँ ऐसी दुःस्थिति में क्यों हो ?" वह शेर बोला, "मुझे क्या दुःख है? मैं तो भेड़ है और अपने भाई-बहनों के साथ सुखी है।" वास्तविक शेर ने कहा, "तुम्हें भ्रम हो गया है।" वह उसे पानी के पास ले गया और कहा, "अब अपनी परछाईं देखो। तुम तो शेर हो। मैं भी शेर है।" उस भेड़ (शेर) ने अपनी परछाईं देखी और अत्यन्त प्रसन्नता से बोला, "यह कितनी बड़ी भूल थी मेरी ? मैं तो वास्तव में शेर है। मैं किसी प्रकार भेड़ नहीं है।" वह तुरन्त गरज उठा और उस नये शेर के साथ भाग गया ।

भाइयो, आप लोग भी उसी भेड़ बने शेर की तरह हैं। आप अपना वास्तविक और दैविक स्वभाव भूल गये हैं। आप पर माया का जादू चल गया है। उस जादू को हटायें। ॐ ॐ की गर्जना करें और वेदान्ती शेर बनें। आप अमर आत्मा है। अपने को यह विनाशी शरीर न समझें। आप अमर शुद्ध, मुक्त, ब्रह्म-स्वरूप हैं।

कुरसी का साक्षी कुरसी से भिन्न है। वह स्वयं कुरसी नहीं है। उसी प्रकार इस शरीर का साक्षी भी स्वयं शरीर नहीं है। साक्षी का स्वभाव है सत्, चित् और आनन्द। कुरसी और शरीर दोनों जड़ हैं। हे राम ! इसलिए समझ लो कि आप यह शरीर नहीं हो। आप केवल उसके साक्षी हो।

दृश्य जगत्, यह द्व'त अथवा नामरूपात्मक यह विश्व आत्म-ज्ञान के मार्ग में बाधा-रूप हैं। इन्हें हटाना चाहिए, तभी ब्रह्म का वास्तविक स्वरूप जाना जा सकता है। द्वत भावना मिटनी चाहिए। नाम और रूप दोनों को छोड़

कर उनमें अन्तनिहित सारतत्त्व को ग्रहण करना चाहिए। अज्ञान का नाश होते ही सारा नामरूपात्मक संसार मिट जाता है जो आपके ब्रह्म को छुपाये हुए है। मानो यह सब चित्र रहा हो अथवा सपना रहा हो।

समुद्र में एक घड़ा रखा रहे और उसके फूटते ही उसके अन्दर का पानी बाहर के पानी से जिस प्रकार मिल जाता है, वैसे ही शरीररूपी घड़ा फूटते ही अन्दर का जीवात्मा उस अनन्त आत्मा के साथ एक हो जाता है।

आत्मा अखण्ड, अनन्त और सर्वव्यापक है। वह सच्चिदानन्द है। शरीर में कई अवयव हैं। वह विनाशी है और रक्त-माँसादि से बना है। फिर भी अज्ञानी लोग दोनों को एक समझते हैं। इससे बड़ा और अज्ञान क्या हो सकता है !

आत्मा सर्वदा साक्षी है। वह विषय नहीं बन सकता । विषयी चिदात्मक आत्मा है। विषयी जढ़ वस्तुओं में शरीर, इन्द्रियाँ और इन्द्रियों के विषय आदि में व्याप्त है।

ब्रह्म की महिमा और गरिमा का वर्णन कौन कर सकता है ? वेदों को भी आखिर अपनी सोमित क्षमता के अनुसार ही उन गुणों को गाना पड़ा। उसका आदि और अन्त कोई भी नहीं जान सका। वह बिना पैर के ही चलता है, बिना हाथ के पकड़ता है, बिना कान के सुनता है, बिना आँख के देखता है, जिह्वा के बिना ही चखता है, बिना नाक के सूघता है, बिना त्वचा. केः स्पर्श अनुभव करता है, बिना मुँह के बोलता है; क्योंकि वह शुद्ध चिद्धन है। वह सर्वव्यापी है। उसके हाथ, पैर, शिर, मुह सर्वत्र हैं। उसकी सत्ता अद्भुत है। वह अवाङ मनस गोचर है।.

ब्रह्म की व्याख्या करने का अर्थ है ब्रह्म का निषेध करना ।

ब्रह्म की व्याख्या करने का पर्याप्त प्रकार है अभाव परम्परा । इसीलिए वृहदारण्यकोपनिषद् में याज्ञवल्क्य ऋषि ब्रह्म के विषयः में कहते हैं 'नेति, नेति' अर्थात् यह नहीं है, यह नहीं है। तात्पर्य यह कि नाम, रूपादि को निकाल लेने के उपरान्त जो बचता है, वही ब्रह्म है।

ब्रह्म के स्वभाव के विषय में ज्ञान प्राप्त कर लेना ही मोक्ष या पूर्णता है। अपने को अशरीरी समझना चाहिए, उस परमात्मा के साथ एकरूप मानना चाहिए और तब परम शान्ति, अखण्ड आनन्द और चिर सुख की प्राप्ति होती है।

'ब्रह्म का कोई रूप नहीं है। आप कैसे ब्रह्माकार-वृत्ति कह सकते हैं?' 'भाई ! ब्रह्म का रूप वह नहीं है जो माया का है। उसका अपना स्वरूप है सत्-चित्-आनन्द । सत्यं, ज्ञानं, अनन्तम् है वह ।!

जिस प्रकार परदे से चित्र को और खुदाई से पत्थर को अलग नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार ब्रह्म से, जो कि विश्व का अधिष्ठान है, नाम और रूप को अलग नहीं किया जा सकता ।

कान की बाली, कङ्गन, बाजूबन्द, कण्ठहार ये सारें स्वर्ण पर आरोपित रूप हैं। इसी प्रकार इस सारे विश्व का जो आधार है, उस ब्रहम पर सारे नाम और रूप आरोपित हैं।

आत्मा सभी प्राणियों में एक और समान है। उपाधि और अन्तःकरणों की भिन्नता के कारण वह आत्मा प्रत्येक प्राणी में विभिन्न रूपों में दिखायी देता है। आकाश एक और समान है। घड़ा, बादल, कमरा आदि भिन्न-भिन्न उपाधियों के कारण वह भी घटाकाश, मेघाकाश, मठाकाश आदि विभिन्न नामों और रूपों से पहचाना जाता है। जब वह उपाधि घड़ा टूट जाय, परदा हट जाय तो घटाकाश विश्वाकाश में लीन हो जाता है। जब अन्तः-करणरूपी उपाधि का नाश साधना द्वारा हो जाता है, तब जीवात्मा विश्वात्मा में एक हो जाता है।

केवल अज्ञानी ही कह सकता है कि जीवात्मा और ब्रहम एक नहीं है। वह कहता कि जीवात्मा अनेक दुःखों का भाजन है, जबकि ब्रहम दुःखों से परे है। यह सही नहीं है। जीव दुःखों का पात्र इसलिए होता है कि वह अपने को मन या शरीर समझता 'है। जीव चूंकि ज्ञानविहीन है और शरीर तथा मन से एकरूप है, इसलिए वह सांसारिक दुःख उठाता है। अज्ञान दूर हो जाय, आत्मज्ञान हो जाय तो शरीर और मन के साथ की एकरूपता नष्ट होती है। तब जीव का अहङ्कार, विचार, दीनता, आकांक्षा आदि सारी भावनाएँ समाप्त होती हैं और जीव ब्रहमरूप हो जाता है। जीव का जीवत्व नहीं रहता है। ब्रहमत्व या जाता है।

सीप को उसके सत् रूप अथवा असत् रूप से देखने से उसके 'गुणधर्म में कोई परिवर्तन नहीं आता। जानने वाला ही केवल भ्रम में पड़ कर कुछ-का-कुछ समझ लेता है।

जो सांसारिक अज्ञानी मनुष्य अपने को शरीर ही समझता है, वह उस रेलवे कुली के समान होता है, जो हमेशा जहाँ-जहाँ जाता है वहाँ अपने शिर पर सब बोझा लादे फिरता है।

वस्तुतः मनुष्य आत्मा है। मूलतः वह चैतन्य है। उसको यह शरीर इसलिए मिला है कि उसी के हृदय के अन्दर छिपे हुए आत्मा को पहचाने, अखण्ड शान्ति पाये और मानवता की आत्मभाव से सेवा करे।

क्यों रोते हो ? आप पर्म सत् हो। आप परमानन्द हो। आप अपरिवर्तनीय सत्ता हो। आप मन और इन्द्रियों की पहुँच -से परे हो। आप अनन्त, अखण्ड और अमर हो। आप सर्वव्यापी हो, शुद्ध हो। आप काल और देश के बन्धन से मुक्त हो। आप अजन्मा हो, अमर्त्य हो। भलाई और बुराई आपको स्पर्श नहीं करती हैं।

जन्म-मरण से छुटकारा ही मोक्ष है। वह अखण्ड आनन्द की प्राप्ति है। उसका अपना कोई काल नहीं, समय नहीं है। न उसकी कोई आन्तरिक या बाहय अवस्था है। आपको मोक्ष मिलना ही चाहिए। मोक्ष आपका ध्येय है। इस छोटे से 'मैं' को मार दो। 'मैं कौन हैं', यह पहचानो और अहङ्कार छोड़ दो। आपको मोक्ष की प्राप्ति होगी और आप इस विश्व के सम्राट् की तरह प्रकाशित होओगे । इस जन्म में आपको मोक्ष की प्राप्ति हो !

देहाध्यास दूर करने में बहुत समय लगता है। जब आप : पूर्णतया ब्रह्मनिष्ठ हो जाओगे तभी वह निःशेष रूप से समाप्त होगा। ब्रह्मभावना ज्यों-ज्यों बढ़ती जाती है त्यों-त्यों देहाध्यास क्षीण होता जाता है। अतः निरन्तर ब्रह्मचिन्तन के द्वारा नित्य-प्रति ब्रह्मभावना को बढ़ाते जाओ ।

एकादश अध्याय: वेदान्त

(१) वेदान्त-दर्शन

सभी दर्शनों में वेदान्त-दर्शन का स्थान प्रथम है। यह ऐसा । दर्शन है, जिसमें मानव की विचार-सरणी पराकाष्ठा पर पहुँच गयी है। यह अन्यादृश विचार है। इसके मूलभूत विचार को . ग्रहण करने के लिए सूक्ष्म और तीव्र बुद्धि की आवश्यकता है। यह अपने निर्णयों और सिद्धान्तों को जिस साहस और निर्भीकता के साथ प्रस्तुत करता है, वह अनुपम है। यह हर प्रकार की ..प्राचीन धारणाओं और मान्यताओं से सर्वथा मुक्त है।

वेदान्त कोई मत-सम्प्रदाय या उपासना-विधि नहीं है। यह सत् का विज्ञान है। वह निर्भय घोषणा करता है कि तू वास्तव में अमर और व्यापक आत्मा है, विश्वात्मा है, परब्रह्म है।

वेदान्त बहुत व्यावहारिक है। वह कोई अव्यावहारिक आदर्श का उपदेश नहीं करता है। वामदेव, जड़ भरत, श्री शङ्कर तथा कई अन्य लोगों ने उसका साक्षात्कार किया है और प्रत्येक कर सकता है। इसके लिए केवल नियमित और सतत साधना की आवश्यकता है। श्रुतियों के सिद्धान्तों और गुरु के वचनों पर पूर्ण विश्वास होना चाहिए। सर्वप्रथम अपने ऊपर दृढ़ श्रद्धा होनी चाहिए ।

वेदान्त कोई संन्यासियों और हिमालय की गुफा में बसने वाले तपस्वियों की ही एकाधिकार सम्पत्ति नहीं है। उपनिषदों के अध्ययन से पता चलता है कि अपने राज-काज में अतीव व्यस्त रहने वाले कई क्षत्रिय राजाओं ने भी इस ब्रहमज्ञान को पाया था। उन्होंने ब्राहमणों तक को उपदेश दिया था।

वेदान्त उपनिषदों का धर्म है। वह सबकी वस्तु है। संसार के किसी भी धर्म से उसका विरोध या झगड़ा नहीं है। संसारभर के धर्मों के मूलस्रोत में जो धर्म है, उसी का उपदेश वेदान्त करता है। वह साम्यवाद का बड़ा समर्थक है। वह सबको जोड़ता है। उसमें सबके लिए स्थान है।

जिन्होंने पूर्ण, वास्तविक और गम्भीर वैराग्य प्राप्त किया है, जो पूर्ण संयमी हैं, वे ही वेदान्त का अभ्यास कर सकते हैं। जो गृहस्थ प्रदीप्त वैराग्य को अपना नहीं सकते हैं; पत्नी, बच्चे और घरबार के प्रति जिनकी आसक्ति अभी बनी हुई है, जिनमें मन्द वैराग्य है, उनके लिए निःस्वार्थ सेवा-युक्त भक्ति-मार्ग अधिक अनुकूल है।

वेदान्त का अर्थ है 'दासता से मुक्ति'। वह सबको स्वतन्त्र कर देता है, सबको गले लगाता है। वह उपनिषदों का धर्म है। वह परमहंस संन्यासियों का धर्म है।

वेदान्त का कुल सार यह है मैं सर्वव्यापी है, स्वयंप्रकाश है, अमर है, अखण्ड है, अविनाशी है और सच्चिदानन्द ब्रहम-स्वरूप है।

श्री शङ्कराचार्य के मतानुसार बेदान्त के जो मूलभूत सिद्धान्त हैं, वह संक्षेप में बड़े सुन्दर ढङ्ग से निम्न श्लोकार्थ में संगृहीत

"ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्म व नापरः ।"

जो करोड़ों ग्रन्थों में विस्तार से कहा गया है, वह सब संक्षेप में इतना ही है कि, 'ब्रह्म सत्य है, यह जगत् मिथ्या है और यह जीव ब्रह्म ही है और कुछ नहीं है।'

निष्ठावान् साधक के लिए आत्मा एक अमूल्य निधि है। आध्यात्मिक सम्पत्ति अक्षय सम्पत्ति है। प्रभु ईसा ने कहा, "आत्मराज्य धरती में गड़े हुए धन के समान है, जिसे एक व्यक्ति ने ढूंढ निकाला और फिर धरती के अन्दर उसे गाड़ दिया और उंस शोध से अपने मन में हर्षित हो कर घर चला गया और अपनी सारी सम्पत्ति बेच डाली तथा वह जमीन खरीद ली"

(मैथ्यू : १३-४४) ।

कर्म के द्वारा निष्पन्न होने वाले फल विनाशशील हैं; अतः विवेकी पुरुष कर्म के प्रति कोई आसक्ति नहीं रखता। बह केवल आत्मसाक्षात्कार के लिए ही प्रयत्नशील रहता है।

मैत्रेयी ने भगवान् याज्ञवल्वय के चरण कमलों में बैठ कर उस आत्मा का ज्ञान प्राप्त किया जो अविनाशी है, असङ्ग है, मुक्त है और दुःख-कष्टों से अस्पृष्ट है। यही सही शिक्षण है।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक श्री जगदीशचन्द्र बसु ने अपने शोध के नये उपकरणों द्वारा यह प्रदर्शित कर दिया कि धातुओं और वन-स्पतियों में भी नाड़ी का स्पन्दन होता है, है, संवेदना होती हैं। उनका कहना है कि वृक्ष को भी दवा दी जा सकती है, विष दिया जा सकता है, प्रसन्न, दुःखी और क्लान्त बनाया जा सकता है।

सोने के एक टुकड़े में वैज्ञानिक प्रयोगों की जो प्रतिक्रिया होती है, वही प्रतिक्रिया उसके छोटे-छोटे टुकड़े कर देने पर भी होती है। प्राणियों और वनस्पतियों में कोई विशेष अन्तर नहीं है। उनके अद्भुत प्रयोगों से बहुत से पाश्चात्य वैज्ञानिकों की भी आँखें खुल गयीं। उनसे जीव और चैतन्य की एकताः सिद्ध हुई और वेदान्त के सिद्धान्तों की परिपुष्टि हुई ।

आप सिंह हैं; परन्तु वर्षों से मेमना बना दिये गये हैं। अब जाग उठिए। अब फिर मेमना न बनने का निश्चय कीजिए । गरज उठिए, ॐ ॐ, ॐ ।

कभी-कभी सपने में आप देखते हैं कि आप मर गये हैं और आपके सगे-सम्बन्धी रो रहे हैं। उस कल्पित मृत्यु में भी आप अपने सगे-सम्बन्धियों को रोते हुए देखते हैं, सुनते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि वास्तविक मृत्यु में

भी आपका अस्तित्व रहता है। इस भौतिक कोश के निकल जाने पर भी आप जीवित रहते हैं। वह सत् ही आत्मा है, महान् अहं है।

आपको स्पष्ट अनुभव होता है कि आप हैं। यह इस बात-का समर्थक है कि भगवान् हैं। अस्तित्व जो-कुछ भी है, वह ब्रह्म या ईश्वर ही है। अपने पास सभी सुख-सुविधा और सम्पत्ति के होते हुए भी आपको कुछ अभाव-सा अनुभव होता रहता है; पूर्णता का अनुभव नहीं होता है। सर्वतः पूर्ण परमात्मा को अपने साथ संयोजित करने पर ही आप पूर्णता का अनुभव कर पायेंगे । जब कभी आपके हाथों से कोई दुष्कर्म हो जाता है तो आप भय अनुभव करते हैं, आपके अन्तःकरण में चुभता है। इन सबसे प्रमाणित होता है कि भगवान् है और वह आपके बिचारों और कर्मों का साक्षी है।

पाश्चात्य दार्शनिक जिसे परमात्मा (Over-Soul) कहते हैं, वह वेदान्तियों का आत्मा है, उपनिषदों का ग्रहा है। वह परमात्मा सभी जीवात्माओं का आधार है और इसे ही पाश्चात्य दार्शनिक परमात्मा (Over-Soul) कहते हैं। यह परमात्मा (Over-Soul) बही है, जिसे स्पिनोजा 'सारतत्त्व' (Sub-stance) कहता है और काष्ट जिसे 'वस्तुतत्त्व' (Thing in Itself) कहता है। बेदान्त का सार अब धीरे-धीरे पाश्चात्य दार्शनिकों के मस्तिष्क में उतर रहा है और वे अब उस शाश्वत तत्त्व या अमर आत्मा को मानने लगे हैं, जो शरीर और मन से भिन्न है।

किसान ने भले ही महाराजा को न देखा हो तब भी वह जानता है कि राज्य पर शासन करने वाला एक महाराजा है; क्योंकि राज्य में सारा कारोबार और व्यवस्था दिखती है। इसी प्रकार यद्यपि भगवान् को किसी ने प्रत्यक्ष नहीं देखा हो, तब भी निसर्ग में जो व्यवस्था और नियम है, उससे भगवान् के अस्तित्व को समझा जा सकता है।

इस मिट्टी के पुतले शरीर को कौन नचा रहा है? इस शरीर का सूत्रधार कौन है ? उसे पहचानो ।

मन, वाणी, कान, आँख आदि इन्द्रियाँ सोयी रहती हैं, तब प्राण अकेला जागता रहता है। इस प्राण के स्पन्दन का कौन कारणीभूत है? इस प्राण का आधार कौन है ? वह ब्रह्म है। वही सारे जगत् की योनि है।

यद्यपि यह सारा दृश्य प्रतिक्षण बदलता रहता है और एक-दूसरे से सर्वया भिन्न है, तथापि इन सबके अन्दर बसने वाला वह जो परम सत्य है, वह अपरिवर्त्तनीय है और सबमें समान है।

तैत्तिरीयोपनिषद् की ब्रह्मानन्द-वल्ली में लिखा हुआ है: "इस आत्मा से आकाश पैदा हुआ, आकाश से वायु, वायु से, अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी, पृथ्वी से औषधियाँ, औषधियों से अन्न और अन्न से मनुष्य पैदा हुआ। इस प्रकार मनुष्य पूर्णतया अन्न का बना हुआ है" (अध्याय ११-१) ।

यह संसार-चक्र अनादि है। कर्म ही अनादि है। जो अनादि है वह अनन्त भी होता है। यह सर्वमात्य नियम है। इसलिए इस संसार का कोई अन्त नहीं है; परन्तु जो आत्मदर्शी योगी है, उसके लिए यह संसार समाप्त हो जाता है।

लोग अपनी इन्द्रियों से भरमाये हुए हैं। जो परिवर्तनशील और विनाशी है, वह सत्य नहीं होता है। मन या वस्तु मात्र का, विश्व और उसकी सृष्टि का अस्तित्व सत्य नहीं है। एकमात्र ब्रह्म ही अपनी महिमा में विराजमान है। यही परम सत् है।

एकमात्र ब्रह्म का अपरोक्ष साक्षात्कार ही जीव को जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्त कर सकता है। यहाँ कोई दूसरा उपाय नहीं है। श्रुतियों ने जोरों से कहा है-

"वेदाहमेतं पुरुषं महान्तं श्रावित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वा अतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यते अयनाय ।।

- मैं उस महान् पुरुष को जानता है. जो आदित्य के समान तेजयुक्त है, जो अज्ञानरूपी अन्धकार से परे है। उसी को जानने से मृत्यु को पार कर अमरत्व प्राप्त किया जा सकता है, परमः आनन्द की प्राप्ति के लिए दूसरा कोई मार्ग नहीं है" (श्वेता-श्वतरोपनिषद् : ३-८) ।

ब्रह्म-साक्षात्कार मनुष्य के लिए सम्भव है। कई लोगों ने आत्मदर्शन किया है; कई लोगों को निविकल्प समाधि का आनन्दः मिला है। श्री शङ्कराचार्य, श्री दत्तात्रेय, मंसूर, शम्सतबरेज, प्रभु ईसा और भगवान् बुद्ध आदि ने आत्मदर्शन किया था और इन सबको अपरोक्षानुभूति हो गयी थी। लेकिन एक व्यक्ति स्वयं जो अनुभव कर चुका है वह दूसरों को अनुभव नहीं करा पाता है; वयोंकि उसका कोई साधन नहीं है। इन्द्रियों द्वारा जो साधारण ज्ञान प्राप्त होता है उसका भी अनुभव नहीं कराया जा सकता। जिसने मिश्री नहीं खायी हो उसे उसका स्वाद कैसे समझाया जाय ? जन्मान्ध को वर्षों का परिचय कैसे कराया जाय ? गुरुः शिष्य के लिए यदि कुछ कर सकता है तो यही कि सत्य को पहचानने का मार्ग, जो कि प्राकृतिक शक्तियों का उद्घाटन् कर सके, बता सकता है।

अनन्तकाल से वेद कहते आये हैं: "एकं सत् विप्रा बहुधा बदन्ति' सत्ता एक ही है जिसे योगी कई नामों से पहचानते हैं (ऋग्वेदः १, १६४-४६)। परमेश्वर, ब्रह्म, अल्लाह, भगवान्) जुहोवा, आहुरमज्द आदि सब एक ही हैं। मैं उस परमसत्ता की उपासना करता है, जो कि शाश्वत एकरस सार है; आनन्द और प्रज्ञा का अखण्ड पुञ्ज है, प्रज्ञा के वैविष्य के आधार पर योगी-जन जिसे अनेकविध कहते हैं।

उसे आप विश्राम, शान्ति, पूर्णता, स्वतन्त्रता, जीवन की सिद्धि, निर्वाण, निविकल्प समाधि, सहजावस्था, कैवल्य या मोक्ष आदि किसी भी नाम से पहचानें, पर आप जाने-अनजाने अपनी उन सभी प्रवृत्तियों के द्वारा उसी की ओर बढ़ रहे हैं; क्योंकि इन परिवत्तंनशील नश्वर सांसारिक विषयों से आपका पूर्ण समाधान नहीं होता है। आपका प्रत्येक पग उस सच्चिदानन्द की ओर ही उठ रहा है। चाहे वह आवारा हो, लफङ्गा हो, वह भी उसी ब्रह्म के अमर साम्राज्य की ओर ही जा रहा है, यद्यपि उसका मार्ग उलझा हुआ और टेढ़ा है।

ब्रह्म शुद्ध चैतन्य है। पूर्ण सत्य तो वह चैतन्य ही है। यह जड़ संसार हमारे इन सांसारिक व्यवहारों तक ही सत्य है।

काल समय का प्रवाह है। काल ब्रह्म की शक्ति है। ब्रह्म अथवा आत्मा कालातीत है। प्रत्येक पदार्थ काल, देश और कारण में बंधा हुआ है, अन्त में सब नाशवान् हैं। जो कालातीत है, वही अविनाशी है।

- ब्रह्म दुःखरहित है। जीव दुःखों से भरा है। ब्रह्म पूर्णतः मुक्त है। जीव बद्ध है। ब्रह्म सर्वशक्तिमान् है, सर्वज्ञ है; अपरि-च्छिन्न है और विभु (सर्वव्यापी) है। जीव अल्पज्ञ है, अल्प-शक्तिमान् है, परिच्छिन्न है और एकदेशीय है।

ब्रह्म वह सर्वोत्कृष्ट पुरुष है जो सब प्राणियों के हृदय में विराजमान है। वह गुरुओं का गुरु है, देवताओं का देवता है, ईश्वरों का ईश्वर है, सूर्यों का सूर्य है, प्रकाशों का प्रकाश है। वह असीम 'मैं' है, बानन्द और ज्ञान का सागर है। वह सर्वाधार है। वहीं आपका सही आत्मा है। वह अजन्मा है, मरणशून्य है, काल-देश-कारण-गति-परिवत्तंन से शून्य है।

आप अमर आत्मा हो । बमों या किसी प्रकार के शस्त्र से उस आत्मा का नाश नहीं किया जा सकता है। वह अच्छेद्य है। अजेय है, अक्षुण्ण है। उसी अन्तरात्मा में बसो। विचारों से परे हो कर बसो । उसमें शोक या भय का कोई स्थान नहीं है। साहसी बनो और प्रसन्न रहो ।

बिसने यह अनुभूति पा ली है कि 'मैं वह परम आत्मा है जो अपरिवत्तंर्तनीय, स्वयंप्रकाशी, पूर्ण, शुद्ध, नित्य, अविभाज्य, सर्वव्यापी है।' वह बन्धन से मुक्त हो जाता है। जिसने यह अनुभूति। नहीं पायी, वह बन्धन में रहता है।

यदि आप अपने हृदयान्तर्वासी आत्मा को पहचान लें, अविद्या, काम और कर्म रूपी तीनों गाँठों को फाड़ कर टुकड़े-टुकड़े कर दें, अविवेक, अहङ्कार, राग-द्वेष, कर्म, शरीर आदि की शृङ्खला तोड़ दें, तो जन्म-मरण के चक्र से आप मुक्त हो जायेंगे और अमरत्व के साम्राज्य में प्रवेश करेंगे ।

महत् प्रकृति की पहली विकृति है। महत् का अर्थ है बुद्धि । वह दो प्रकार की है-व्यष्टि और समष्टि । ब्रह्माण्डगत महत् ही ब्रह्म है, विधाता है।

माया अथवा अव्यक्त का दूसरा नाम है मूल-प्रकृतिः। दृश्य जगत् का वही आधार है, वही बीज हैं। प्रलय में सारा ब्रह्माण्ड उसी में वैसे ही लीन हो जाता है, जैसे टिफिन कैरियर में सारे बर्तन समा जाते हैं या बिस्तर के अन्दर तकिया, चादर, कम्बल आदि सारे कपड़े समा जाते हैं।

..... स्वरूप का अर्थ है आत्मा, अथवा ब्रह्म। स्वरूप ध्यान का अर्थ है सत्य का, आत्मा का या ब्रह्म का ध्यान। वेदान्त का अर्थ.. है वेदों का अन्त। चारों वेद ब्रह्म के निःश्वास से निकलते हैं। ब्रह्म का समग्र ज्ञान प्राप्त करने के लिए केवल माण्डूक्योपनिषद् ही पर्याप्त है।

ब्रह्म से विश्व की उत्पत्ति होने से यह कोई आवश्यक नहीं कि ब्रह्म भी विकृत हो जाय, परिवत्तंनशील हो जाय। ब्रह्म को इसका लवलेश भी लेप नहीं होता है। वह परिवत्त'न कोई रासा-यनिक परिवत्तन नहीं है। ब्रह्म स्वयं निलिप्त रह कर ही विश्व की सृष्टि करता है। ब्रह्म अपनी शक्ति के द्वारा अनन्त नाम और रूप प्रदान कर सकता है। उसमें कोई परिवत्त'न नहीं होता है। जगत् तो केवल दिखावा है। ब्रह्म ही वृक्ष, पर्वत, नदी, नक्षत्र आदि नाना रूपों में दिखता है। इन सारी आकृतियों को निर्माण करने के लिए उसे हथियार या हाथों की कोई आव-श्यकता नहीं है। वह चैतन्य है, स्वयंप्रकाशी प्रज्ञा है। केवल सङ्कल्पमात्र से वह असंख्य विश्व-सृजन कर सकता है। जिस प्रकार बीज के अन्दर पूरा वृक्ष प्रकट करने की क्षमता होती है, वैसे ही विश्व को प्रकट करने की क्षमता ब्रह्म का स्वभाव है। जहाँ अस्तित्व है उसके साथ सृजन भी रहता है। सीमित बुद्धि से. यह समझना मुश्किल है कि यह विश्व कंसे है और क्यों है तथा एक ही ब्रह्म में असत्, जड़ और दुःख से मिश्रित अविद्या तथा सत्-चित्-आनन्द-रूपी गुण एक साथ कैसे रह सकते हैं और बयों हैं? ब्रह्मज्ञान प्राप्त कीजिए, उसके बाद ही इस अतिप्रश्नः का उत्तर मिल सकेगा।

वेदों में एक स्थान पर ब्रह्म को अवाङ्मनस-गोचर अर्थात् वाणी और मन की पहुँच से परे बताया है तो दूसरे स्थान पर कहा है- 'मनसैव द्रष्टव्यम्' अर्थात् ब्रह्म को मन से ही देखना चाहिए। इन दोनों में कोई विसङ्गति या विरोध नहीं है। इसका अर्थ यही है कि जो मन शुद्ध हो, सूक्ष्म हो और तेज हो तथा जो अहङ्कार, मोह, काम, क्रोध आदि दोषों से मुक्त हो और साधन-चतुष्टय से सम्पन्न हो, उसी मन से ब्रह्म का साक्षात्कार किया जा सकता है। शुद्ध मन साक्षात् ब्रह्म ही है।

सारा दृश्य संसार वस्तुतः मृगतृष्णा की तरह अवास्तविक है; केवल झूठी अभिव्यक्ति है। जो क्षणभङ्ग र है वह अवास्तविके होना चाहिए और जो स्थायी है वह वास्तविक होना चाहिए ।

जो अन्तिम सत्य है वह न तो कारण हैं न कार्य। वह परम कारण है। अतः सत्यनिष्ठ रहो, सत्य का स्मरण करो।

स्थान, काल, चित्त, मन, जीव और मायां वास्तव में हैं ही नहीं। एकमात्र अनन्त, अद्वितीय ब्रह्म है। वही अपनी अखण्ड महिमा में, अपने स्वरूप में विराजमान है। उसका कोई बाहरी आवरण नहीं है, वह निःस्पन्द है, आदिमध्यावसानशून्य है। हमेशा चिन्तन करो- 'जो-कुछ है, एकमात्र ब्रह्म ही है। ब्रह्म ही सत्य है। मैं ब्रह्म है।'

प्रत्येक पदार्थ ब्रह्म है, परन्तु क्रिया-अद्वैत सम्भव नहीं है। हम केवल भावना-अद्वत पा सकते हैं। क्रिया अद्वैत तभी सम्भव है, जब हम कुछ भी काम न करें, जब सारे समाज से सम्पर्क त्याग कर दूर किसी गुफा में रहने लगें।

केवलाद्वत का उपदेश देने वाले श्री शङ्कराचार्य ने बौद्धों का खण्डन करने के लिए नागा संन्यासियों का एक दल खड़ा किया।

श्री शङ्कराचार्य कहते हैं- "बाहर भी कुछ है। उससे इनकार नहीं किया जा सकता; परन्तु वह केवलं आभास है। वह केवल *विवर्त (अध्यारोप) है। जैसे साँप रस्सी का विवर्त है, अंगूठी स्वर्ण का विक्तं है, वैसे ही यह विश्व, यह शरीर, यह मन, प्राण, ये इन्द्रियाँ सब ब्रह्म के विवर्त हैं।" विवर्तवाद श्री शङ्कराचार्य का वाद है।

जिस प्रकार पानी में सूर्य का प्रतिबिम्ब होता है उसी प्रकार अविद्या अथवा मन-बुद्धि में ब्रह्म-चैतन्य प्रतिबिम्बित होता है। पानी के सूख जाने पर सूर्य का प्रतिबिम्ब भी नष्ट हो जाता है। .. जीव अपनी अविद्या को मिटा दे, अन्तःकरण-रूपी सागर ज्ञान से सूख जाय तब मन में चैतन्य का प्रतिबिस्व भी नष्ट हो जाता है। 1.- यह वेद्रान्त का आभासवाद है। इसे प्रतिबिम्बवाद भी कहते हैं।

आभास का अर्थ है प्रतिबिम्ब, छाया । ब्रह्म या कूटस्थ बिम्ब है। प्रतिबिम्ब है। जीव या मनुष्य। मन या अन्तःकरण दर्पण है। इस प्रकार बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव रहता है।

आत्मा शुद्ध, शाश्वत, अपरिवत्त'नीय, अमर और स्वयं-प्रकाशी है; लेकिन शरीर अपवित्र है, परिवत्त 'नीय है, विनाशी और जड़ है। फिर भी अज्ञानी लोग दोनों को एक समझते हैं।

"क्या इससे बढ़ कर कोई दूसरा अज्ञान हो सकता है ?

घड़ा फूट जाय तो घड़े के अन्दर का आकाश विश्वाकाश में लीन हो जाता है। इसी प्रकार शरीर, मन आदि उपाधियाँ समाप्त हो जायें तो जीवात्मा परमात्मा के साथ एक हो जाता है।

पहले भौतिक आकाश है। फिर मन का आकाश है। अर्थात् मन से परिपूर्ण मानसिक आकाश है। उसके बाद चिदाकाश है जो ज्ञानमय है। वे तीनों ताने-बाने की तरह गुंथे हुए हैं।

जलती लकड़ी को घुमायें तो ऐसा भ्रम होता है मानो आग का ही कोई वत्तुल (अलात-चक्र) घूम रहा हो। उसी प्रकार सारे दृश्य जगत् की विविधता भी है। वह अलात-चक्र भ्रान्ति है। वैसे ही यह विश्व भी भ्रान्ति है। एक ब्रह्म ही सत्य है. जो पदार्थमात्र का साक्षी है, विश्व का आधार है। भ्रान्ति का कारण है अविद्या। आत्मज्ञान से अविद्या हटायी जाय तो नाम और रूप भी नष्ट हो जाते हैं। तब सर्वत्र एक आत्मा ही दिखायी देगा।

हे मानव, आप दिव्य हो। आप अमर आत्मा हो। आप राजाओं के राजा हो। यह भ्रम दूर कर दो कि आप शरीर हो । उस सर्वव्यापी चैतन्य आत्मा या ब्रह्म से एकरूप होओ। आपका

वास्तविक और अपरिहार्य स्वभाव सच्चिदानन्द है। इसका अनुभव करो ।

मन में किसी प्रकार की आकांक्षा मत रखो। किसी के प्रति आसक्ति या लगाव मत रखो। एकमात्र अक्षर (अविताशी) ब्रह्म से प्रेम करो। द्वं तरहित मार्ग अपनाओ। संसार में रह कर भी संसार से परे रहो। अपने को शरीर और मन से अलग करो । उस आत्मा के साथ एकरूप होओ। मैं और तुम इस प्रकार का भेद-भाव न रखो। अपनी वृत्तियों और विचारों के साक्षी रहो। अनेक में एक को पहचानो। प्राणिमात्र में अमर आत्मा को पहचानो ।

जहाँ कोई साधन है तो उसका उपयोग करने वाला भी कोई-"न-कोई होना चाहिए। मन, बुद्धि आदि साधन हैं, तो उनका प्रयोग करने वाला, उनको चलाने वाला भी कोई होना ही चाहिए ।

जैसे कोई घर किसी-न-किसी के निवास के लिए है, वैसे ही आँख, कान, नाक, हाथ, पैर नादि भी इनके स्वामी के उपयोग "के लिए ही हैं और वह स्वामी इनसे निश्चित ही भिन्न है। वह सञ्चालक वास्तव में असीम 'मैं' है। वह अन्तःशास्ता है, अमेर है, शुद्ध चैतन्य है। कानों की जो सुनने की शक्ति है, आँखों की जो देखने की शक्ति है, वह सारा उसी चैतन्य पर अवलम्बित है। जिस प्रकार चन्द्रमा सूर्य से प्रकाश लेता है, उसी प्रकारं इन्द्रियाँ अपना प्रकाश, चेतना और शक्ति उस आत्मा से लेती हैं; जो ! इनका सन्चालक है। इसलिए यह कहना सर्वथा सङ्गत है कि ऑत्मा कानों का कान है, आंतों की आंख है, प्राणों का प्राण है और मनों का मन है।

अग्नि राख से दबी है। तलवार स्यान से ढकी है। सूर्य पर बादल छाये हैं। नारङ्गी छिलके से ढकी है। रत्न पर धूल चढ़ी है। गद्दे के अन्दर स्प्रिङ्ग है। बिछौना चादर के नीचे है। इसी प्रकार रक्त, मांस, हड्डी आदि पदार्थों के नीचे आत्मा छिपा है।

यही चिन्तन करना चाहिए कि चैतन्य इस भौतिक शरीर के बाहर है। तब उस विश्व-चैतन्य के साथ एकरूपता सघ सकेगी । ' शीघ्र ही साक्षित्व प्राप्त हो सकेगा। तब मालूम होने लगेगा कि यह शरीर हमारे हाथ का साधन है। जिस तरह हाथ में छड़ी ले कर हम चला करते हैं उसी प्रकार यह शरीर भी एक छड़ी जैसा होगा।

क्रिकेट खेलने वालों से खेल देखने वाले अधिक आनन्द लेते हैं। खेलने वालों के मन में हार-जीत का विचार और उसी का 'कौतूहल भरा रहता है। उनका मन शान्त नहीं रह सकता। हम विश्व के ही नहीं, अपने भी साक्षी बन सकें। उस साक्षी के साथ एकरूप हो सकें तो हम भी आत्मानन्द पा सकेंगे। आंत्मज्ञान पा सकेंगे ।

प्रारब्ध पिछले जन्म का पुरुषार्थ है। सञ्चित कर्म अविद्या पर निर्भर है। क्रियमाण कर्म अहङ्कार पर अवलम्बित है। प्रारब्ध कर्म भौतिक शरीर से सम्बन्धित है। ज्ञानोदय के कारण जीवन्मुक्त के सारे अज्ञान नष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार सञ्चित कर्म भी नष्ट होते हैं। उसमें अहङ्कार नहीं होता है। अतः क्रियमाण कर्म भी नष्ट हो जाते हैं। क्योंकि वे सर्वव्यापी ब्रह्म से-एकरूम हो जाते हैं। इसलिए उनका शरीर भी नहीं रहता है। इस प्रकार आत्मज्ञान प्राप्त करने से तीनों कर्मों का नाश हो जाता है।

भाग्य अपने ही कर्मों का फल है। सब अपने-अपने भाग्य के स्वयं निर्माता हैं, स्वामी हैं। विचार करने का मार्ग परिवर्तितत कर दीजिए। 'मैं शरीर है", इस प्रकार के अशुद्ध विचार को छोड़ कर विचार कीजिए: 'मैं आत्मा है।'

आज हमारी यह सोचने की आदत हो गयी है कि 'मैं शरीर है। मैं मन है। मैं प्राण है। मैं इन्द्रियाँ है।' इस आदत को इसमें बदलना चाहिए कि 'मैं ब्रह्म है। मैं सर्वव्यापी चैतन्य है।' तब भाग्य पर विजय प्राप्त हो सकेगी। यदि तिरछा अक्षर लिखने की किसी की आदत है तो वह उसे बदल कर सीधा लिखने की आदत डाल सकता है। इसी प्रकार सोचने की भी आदत बदली जा सकती है। आदत पर विजय मिली कि भाग्य पर विजय मिली ।

'मैं शरीर है और यह संसार सत्य है', इस प्रकार का विपरीत भावना-रूपी साँप फुफकारने लगे तो 'मैं ब्रह्म है' इस प्रकार की ब्रह्म-भावना का डण्डा लीजिए और अटूट आत्मभावना की धारा अखण्ड चलने दीजिए ।

देहाध्यास दुःख का कारण है। आत्मज्ञान प्राप्त होने पर कुछ भी दुःख नहीं रहता, भले ही शरीर में कोई रोग हो। वह देह-भाव से ऊपर उठ गया है। केवल हठयोगी, जिसने अपनी काया-सिद्धि के द्वारा शरीर के कण-कण को अपने अधीन कर लिया होगा, शरीर को हर प्रकार की बीमारी से बचा सकता है। शरीर से ऊपर उठना चाहिए और दुःख-रोग-विहीन आत्मस्वरूप बनना चाहिए। तब सारे दुःख दूर होंगे। सुषुप्ति यदि है तो भारी बीमारी के होते हुए भी शरीर में कोई पीड़ा नहीं रहती है। क्लोरोफार्म दे कर बेहोश कर दिया जाय तो पैर काट दें, तब भी पता नहीं चलता। दुःख का कारण है शरीर और मन का संयोग। यदि ध्यान-योग के द्वारा मन को शरीर से हटा कर आनन्दमय आत्मा में लीन कर दिया जाय तो लाख बीमारी के होने पर भी कोई दुःख नहीं रहेगा। यह ज्ञान-योग-साधना है। प्रारब्ध को तो भोगना ही पड़ता है। इसलिए शरीर बीमार पड़ता है; पर जीवन्मुक्त पर किसी दुःख का कोई प्रभाव नहीं पड़ता । बाहर से देखने वालों को लगता है कि योगी भी बीमारी से पीड़ित है, पर यह भूल है। श्री रामकृष्ण परमहंस गले के कैन्सर से पीड़ित थे, बुद्ध को पुरानी पेचिश थी, श्री शङ्कराचार्य को बबासीर थी; परन्तु उन लोगों को कोई दुःख नहीं था। डाक्टरों ने श्री रामकृष्ण परमहंस से पूछा- "क्यों आप यों दुःख भोगते हैं? आपरेशन क्यों नहीं करवा लेते ?" उन्होंने उत्तर दिया, "मैंने अपना मन काली माँ को सौंप दिया है। में शरीर के बारे में कैसे ध्यान दू? इस माँस-पिण्ड की बोर मन को वापस कैसे लाऊँ? मुझे तो सदा आनन्द है।"

(२) वेदान्त के उपदेश

वेदान्त वह भव्य दर्शन है जो हमें उपदेश देता है कि जीवात्मा और परमात्मा एक हैं। जीव के सम्बन्ध का सारा भ्रम दूर कीजिए। वेदान्त आत्म-सम्बन्धी विज्ञान है जिसके आधार पर साधक सारे भयों, दुःखों, सङ्कटों और भ्रमों से मुक्त हो कर स्वतन्त्रता भोग सकता है। वेदान्त ऐसा अद्भुत दर्शन है जो अज्ञानी जीव को ब्रह्मत्व के उच्चतम शिखर तक पहुँचा देता है। वेदान्त सभी रोगों के लिए सञ्जीवन औषध है। वेदान्त जन्म-मृत्यु-रूपी रोग की महान् औषध है। केवल वेदान्त-सिद्धान्तों की शिक्षा पर्याप्त नहीं है। हमें व्यावहारिक वेदान्ती होना चाहिए । वेदान्त-प्रतिपाद्य आत्मा का साक्षात्कार करना चाहिए। तभी हम मुक्त-आत्मा बन सकेंगे ।

वेदान्त इस शरीर, स्त्री, सन्तान, सम्पत्ति आदि का मोह छोड़ने को कहता है, सारी प्रापञ्चिक आकांक्षाओं, चाहों, प्रतीक्षाओं और अपेक्षाओं को छोड़ने को कहता है। वेदान्त सत्ता, नाम और यश की इच्छा छोड़ने को कहता है। वेदान्त संसार के साथ के सारे मानसिक बन्धनों और सारे सम्पर्कों को काट देने को कहता है। वेदान्त सारी आसक्तियों को विवेकरूपी तलवार से निर्दयता के साथ काट देने को कहता है।

कुछ अज्ञानी कहते हैं कि वेदान्त अनैतिकता, घृणा और निराशावाद सिखाता है। यह बड़ी भारी भूल है। वेदान्त न तो अनैतिकता की शिक्षा देता है, न नैतिकता की उपेक्षा ही सिखाता है। जो अनैतिक हो उसके लिए ब्रह्मज्ञान असम्भव है। साधक को पूरा नैतिक होना चाहिए और साधन-चतुष्टय-सम्पन्न होना ही चाहिए, तभी वह वेदान्त का विद्यार्थी बन सकेगा। जो साधक विवेकी हो, निस्पृह हो, संयमी हो, सहिष्णु हो, धैर्यशील हो, श्रद्धालु, एकाग्रचित्त हो और मुक्ति के प्रति तीव्र उत्कटता रखता हो, उससे अनैतिक व्यवहार की कल्पना कैसे की जाय ? यह निरर्थक बात है। वेदान्त का कहना है कि हम शरीर के प्रति मोह न रखें, स्वार्थी न रहें और उद्विग्न न रहें तथा शुद्ध और विश्वव्यापी प्रम विकसित करें। वह निराशावाद नहीं, महान् सञ्जीवन-रूप आशावाद सिखाता है। तुच्छ और भ्रम-पूर्ण सुखों को छोड़ने की बात वेदान्त कहता है। मनुष्य शाश्वत और अनन्त आनन्द पायेगा। इस छोटे से 'मैं' को समाप्त करो । जब आप उस परब्रह्म से एक हो जाओगे तब अमर हो जाओगे । मिथ्या जगत् को त्यागो। भगवान् का शान्तिमय साम्राज्य पाओगे। क्या यह निराशावाद है ? निश्चित ही नहीं। यह तो अद्भुत आशावाद है।

विषय-वासनाओं में डूबा हुआ व्यक्ति करोड़ों जन्म ले तब भी वेदान्त के उपदेशों को समझ नहीं सकता, ब्रह्मज्ञान पा नहीं सकता ।.

आज आप अपने को इस नाशवान् भौतिक शरीर से एक समझते हो । आपमें दृढ़ देहाध्यास है। आप आत्मा के बारे में कुछ भी नहीं जानते हो। उसके अस्तित्व के बारे में भी आपमें अडिग विश्वास नहीं है। अब आप केवल शरीर हो। आप अमुक-अमुक हो। आपके मन में वासनाएँ और अहङ्कार भरे हैं। आप मृत्यु से डरते हो। प्रत्यक्षानुभव से अमर आत्मा को समझना होगा। तभी आपकी समझ में आयेगा कि आत्मा अमर है।

जब तक जीव संसार की अवस्था में है, जब तक संसारा-वस्था आत्म-ज्ञान के द्वारा समाप्त नहीं हो जाती, तब तक आत्मा का सम्बन्ध बुद्धि से नहीं छूटता । जब तक आत्मा का सम्बन्ध बुद्धि से है तब तक शरीर से भी रहेगा और बुद्धि अर्थात् सीमित उपाधि से वह जब तक सम्बन्धित रहेगा, तब तक वह छोटा 'मैं' ही रहेगा, इस संसार में दुःख, दर्द, बुढ़ापा, रोग आदि कष्ट भोगता हुआ भटकता रहेगा। वास्तव में तो जीवात्मा वैसा कुछ है नहीं। यह केवल भ्रान्ति है, भ्रम है, कल्पना है, मानो दर्पण के अन्दर का प्रतिबिम्ब हो, मानो आसमान का नीला रङ्ग हो।

जो-जो सीमित है, वह सब अनित्य है। इसका अनुभव क्या दैनिक जीवन में नहीं आता ? यह ब्रह्म शरीर, मन और इन्द्रियों का सार है, अपरिच्छिन्न है, नित्य है, इसलिए आत्मानुभव करो । ॐ, ॐ गाते हुए सारे दुःखों को समाप्त करो। प्रत्येक मनुष्य श्री शङ्कराचार्य या दत्तात्रेय बन सकता है।

रूढ़िवादिता से बुद्धि का विकास रुक जाता है, हृदय संकुचित हो जाता है। सांसारिक पदार्थों की रूढ़िवादी सीमाओं से ऊँचे उठो। नीच प्रकृति को छोड़ो। रूढ़िग्रस्त न रहो। अपने सही स्वभाव को, सत्-चित्-आनन्दरूप को पहचानो । आत्मा या ब्रह्म का चिन्तन करो। ज्ञान-सूर्य से अज्ञानान्धकार को मिटाओ ।

तीनों शरीरों को या पाँचों आवरणों को हटाओ। अनन्त शान्ति का आश्रय लो। असीम आनन्द के सागर में, श्रीराम में आनन्द लो ।

यदि आप अन्तर्मन का विकास करो, आत्म-ज्ञान प्राप्त करो तो वह अखण्ड ब्रह्म-ज्योति, अमर आत्मा आपके अन्दर प्रकाशित होगा। आपको अपनी आत्मा का भान रहना चाहिए। तभी परमोत्कृष्ट ज्ञान प्राप्त कर सकोगे। वह अन्तरात्मा सत्य है, अनन्त ज्ञान है।

प्रत्येक व्यक्ति स्वतन्त्र रहना चाहता है। प्रत्येक व्यक्ति स्वयं सार्वभौम शक्ति-सम्पन्न शासक बनना चाहता है। दूसरों की इच्छा के अनुसार चलना कोई पसन्द नहीं करता। हर कोई यह चाहता है कि दूसरे सब उसी की इच्छा के अनुसार चलें । मन ही मन प्रत्येक की यही इच्छा रहती है कि उसका बस चले तो हर कोई उसी से शासित हो। सभी की अपेक्षा रहती है कि उसका कोई विरोधी न रहे। इन सबका कारण वास्तव में यह है कि प्रत्येक के अन्दर वह अमर और तेजस्वी आत्मा है जो सारे ब्रह्माण्ड का आधार है। वस्तुतः आप वही आत्मा हो । इसीलिए आपमें वैसी इच्छा और भावना पैदा होती है। चक्राधि-पति बनने की इच्छा आपके लिए स्वाभाविक है। अधिपतित्व आत्मा का गुण है। गलती से आपने अपना स्वरूप शरीर मान लिया और शरीर में, व्यवसाय, कार्यालय, कालेज, खेलकूद, राज्य और जीवन की प्रत्येक प्रवृत्ति में विरोधी न होने की अपेक्षा रखते हो । यदि आत्मानुभूति प्राप्त कर लो तो सम्पूर्ण आधिपत्य आपके अधीन हो जाये। आत्म-स्वराज्य ही आपको पूर्ण स्वतन्त्र कर सकेगा। आत्म-स्वराज्य से ही आप सारे विश्व के एकमात्र सार्वभौम चक्राधिपति बन सकोगे। इसलिए इस अद्भुत आत्मा का अनुभव करो और तीनों लोकों के सच्चे राजा बनो ।

हे मानव ! वास्तव में आप वह दिव्य आत्मा हो। आप अमर और आनन्दमय आत्मा हो। इस भौतिक सौन्दर्य के प्रति, हरियाली के प्रति, फूलों के प्रति क्यों आर्षित होते हो जबकि आप स्वयं सौन्दयों के सौन्दर्य हो, संसारभर के सौन्दयों के मूल स्रोत हो ? जब आप स्वयं असीम हो तो फिर क्यों काल से बँधे हुए हो ? क्यों कहते हो कि मैं ४० वर्ष की आयु का है ? मृत्यु से क्यों भयभीत होते हो ? क्यों कहते हो कि समय बीत गया, जबकि आप कालातीत हो ? क्यों कहते हो कि मैं मोटा है, मैं साढ़े पाँच फुट ऊँचा है आदि ? जबकि आप स्वयं सूर्यों के सूर्य हो, प्रकाशों के प्रकाश हो तब फिर इस सूर्य, चन्द्र, तारे और प्रकाशों को देख कर क्यों आश्चर्यचकित हो जाते हो ? जबकि आप सम्राटों के सम्राट् हो, सर्वप्रकार की सम्पत्ति के स्रोत हो तो फिर क्यों कहते हो कि 'मेरे पास पैसे नहीं, मैं गरीब है; मेरे पास

कौड़ी भी नहीं ?' क्यों भीख मांगते हो ? जब आप सारे विश्व के सञ्चालक और शासक हो तब क्यों कहते हो- 'मैं लाचार है; मैं आपका नम्र सेवक है आदि ?' जब आप उस आनन्द और शान्ति के प्रतिरूप हो, तब क्यों कहते हो- 'मैं दीन है, दुःखी है, अशान्त है ?'

आप अमर सत्ता हो तब मृत्यु से क्यों डरते हो ? जब आप सर्वशक्तिमान् हो; तब क्यों अपने को दुर्बल अनुभव करते हो ? आप सर्वथा स्वस्थ हो; फिर क्यों अपने को बीमार समझते हो ? आप शुद्ध ज्ञान हो तो क्यों अपने को अज्ञानी, मूढ़ मानते हो ? शुद्धि, एकाग्रता, ध्यान और एकात्मता के द्वारा उस आत्मा को पहचानो। उस आत्मा में रहा। सुख 'तत्त्वमसि - तुम वह हो ।'

हमेशा यही अनुभव करो कि आप सर्वव्यापी, अमर, अनन्त, चैतन्यस्वरूप आत्मा हो। इसी से आपको सच्ची मुक्ति और अखण्ड सुख मिल सकेगा। अपने सम्पर्क में आने वाले अपने सारे मित्रों को भी यह सन्देश दो। नये समाज की रचना करना आपके हाथ में है। आप लाखों को सुख-शान्ति दे सकते हो ।

हृदयरूपी बत्ती में वैराग्यरूपी तेल डालो। भक्तिरूपी बाती रखो। सतत ध्यान द्वारा ज्ञानाग्नि से उसे जलाओ। देखो, सारा अज्ञानान्धकार दूर हो जायेगा। आपको सत्य की प्रबल शक्ति प्राप्त होगी। आप प्रकाशित हो उठेंगे ।

विवेक करना सीखो । निर्विकार बनो। वासनाओं को दूर करो। इन्द्रियों को नियन्त्रण में रखो। मन को एकाग्र करो। सङ्कल्प-विकल्पों को मिटा दो। इस विश्व को समाप्त करो। अविद्या को निकाल दो। ब्रह्म का साक्षात्कार करों। यह वेदान्त-सार है।

ब्रह्म का दर्शन करो। अविद्या का नाश करो। संसार को छोड़ो। द्वैत मिटाओ। निर्भय बनो। प्रसन्न रहो। आत्म-सुख प्राप्त करो। अपने निजी स्वरूप में रहो। 'उसे' जानो, उसमें लीन होओ और वही बन जाओ ।

दिन में प्रकाश कहाँ से मिलता है? सूर्य से। रात में जब सूर्य नहीं रहता तब प्रकाश कहाँ से मिलता है ? चन्द्रमा, नक्षत्र और बत्ती से। चन्द्रमा, नक्षत्र, बत्ती, सूर्य आदि कोई न रहे तब प्रकाश कहाँ से आता है? आँखों से। आँखें बन्द रखो तब प्रकाश कौन देता है ? बुद्धि । बुद्धि में स्वच्छता है या मैल, यह

कौन देखता है ? 'अहम्', मैं। यह अहम् प्रकाशों का प्रकाश है, परमात्मा है।

रूप को पहचानना आँखों का धर्म है। रूपमात्र का आधार या अधिष्ठान ब्रह्म है। जब कोई रूप देखो तो उसके अन्दर सार-द्रव्य जो ब्रह्म है, उसी को पहचानो। बाहरी रूप को छोड़ दो। वह असत्य है, भ्रमात्मक है। दूसरी सभी इन्द्रियों के विषयों के प्रति भी इसी दृष्टिकोण से देखो। "सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज" सभी धर्मों को छोड़ कर एकमात्र मेरी (मुझ भगवान् की) शरण में आओ (गीता १८-६६) । इस श्लोक का यही अर्थ है।

विवेक बीज है। वैराग्य जड़ है। गुरु-कृपा वर्षा है। ब्रह्म-ज्ञान फल है। यह है ज्ञानयोग का मार्ग ।

नित्य और अनित्य वस्तुओं का विवेक करना जानो । प्रत्येक प्राणी और पदार्थ में आत्मा को पहचानो। नाम-रूप सब भ्रम है, इसलिए उन्हें हटाओ। यही सोचो कि उस आत्मा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। आपके पास जो-कुछ है- भौतिक, मानसिक, नैतिक अथवा आध्यात्मिक, उसका दूसरों के साथ बाँट कर उपयोग करो। सबमें उसी आत्मा की सेवा करो। जब दूसरों की सेवा कर रहे हो तब यही सोचो कि अपनी ही सेवा कर रहे हो। पड़ोसी से वैसा ही प्रेम करो जैसा अपने से करते हो। भ्रममूलक सारे भेदभावों को 'मूल जाओ। मनुष्य-मनुष्य को अलग करने वाली सारी बाधाओं को दूर करो। सबमें घुल-मिल जाओ । निरन्तर आत्मचिन्तन द्वारा, शरीर और लिङ्ग रहित आत्मा के निरन्तर घ्यान द्वारा अपने मन से लैङ्गिक और शारीरिक भावनाओं को भूल जाओ। काम करते समय भी आत्मा में मन को लगाओ। यह व्यावहारिक वेदान्त है। यह है उपनिषदों और प्राचीन ऋषियों का उपदेश। यह है आत्मा में ही सच्चा जीवन जीने का अर्थ । दैनिक जीवन-संग्राम में इनका आचरण करो। निस्सन्देह ही आप तेजस्वी योगी के रूप में विभासित होओगे, जीवन्मुक्त बनोगे ।

प्रत्येक को व्यावहारिक वेदान्ती बनना चाहिए। सिद्धान्तों का समर्थन और व्याख्यान केवल बौद्धिक व्यायाम है, वाग्युद्ध है। इससे काम नहीं चलता। वेदान्त यदि व्यावहारिक नहीं हुआ तो कोई भी सिद्धान्त कौड़ी के मूल्य का भी नहीं है। अतः दैनिक जीवन की प्रत्येक क्रिया में वेदान्त का अभ्यास करना चाहिए। वेदान्तनिष्ठा रग-रग में, रोम-रोम में, हड्डी-माँस में सर्वत्र फैल जानी चाहिए; प्रत्येक का स्वभाव बन जाना चाहिए। हमें एकता की बात सोचनी चाहिए, एकता की बात करनी चाहिए और एकता का ही काम करना चाहिए। मञ्च पर खड़े हो कर व्याख्या दें कि 'मैं सर्वरूप है, मैं सबमें विद्यमान आत्मा है; मेरे सिवा कुछ और है ही नहीं।' और फिर दूसरे क्षण अपने व्यवहार में स्वार्थी और भेद-भाव का दृष्टिकोण अपनायें तो समाज पर कोई प्रभाव नहीं होगा। तब वह शुष्क वेदान्ती कहलायेगा। उसकी परवाह कोई नहीं करेगा।

अद्वत-सुरभि वेदान्ती से निकलती है और चारों तरफ फैलती है। सच्चे वेदान्ती के सम्पर्क में आने वाले सभी लोग इस सुगन्धि का आनन्द पाते हैं। उसको कहना नहीं पड़ेगा कि 'मैं वेदान्ती है, मैं वेदान्त की साधना कर रहा है।' यदि वेदान्ती के पास से एकात्मता या समानता की सुगन्धि अपने-आप नहीं निकल रही है और वह वेदान्त का व्याख्यान ही देता फिरता है तो समझना चाहिए कि वह एक शुष्क व्यक्ति है और ग्रामोफोन की भाँति शब्द दोहराने के सिवा और कुछ नहीं कर रहा है। उसके शब्द हवा में चलायी जाने वाली गोली की तरह पोले हैं, खोखले हैं। श्रोताओं के मन पर वह कोई छाप नहीं डाल सकता ।

(३) अनेकता में एकता

यह कल्पना की जा सकती है कि जड़ तत्वों (प्रोटोप्लोज्म) के अतिरिक्त विश्व में कुछ भी नहीं है। तब सारे रूप लुप्त हो जाते हैं। सारे पदार्थों की रचना एक ही तत्व से हुई है। मनुष्य, वृक्ष, कुत्ता, गधा, खटमल, मच्छर आदि सब एक उसी तत्व से (प्रोटोप्लोज्म से) बने हैं। प्रोटोप्लोज्म तत्वों का एक साँचा है जिसमें सारा जीवन ढाला जाता है। वह सर्वसमान है, उसका अपना कोई आकार नहीं है। वह जीवन का भौतिक आधार है। अल्बुमन (श्वेति) नामक

रासायनिक तत्त्व से मिलते-जुलते तत्त्वों के मिश्रण से वह संकुचनशील है। जो जड़ तत्त्व का धागा सभी पदार्थों को जोड़ता है, वह एक और समान है। यह भी कल्पना की जा सकती है कि विश्व में मन अथवा शक्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। ज्ञानयोग का विद्यार्थी देखता है कि शुद्ध चैतन्य-सूत्र एक ही है। भगवान् कृष्ण अर्जुन से कहते हैं, "मयि सर्व-मिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव" सूत में धागे की मणियों की तरह सारा विश्व मुझमें पिरोया हुआ है (गीताः ७-७) ।

विश्वभर के सभी नाम और रूप के पीछे वह ब्रह्म छिपा हुआ है। विभिन्न आकृतियों के अन्तरस्थ सत्य को जानना चाहिए । तुच्छ जीवों का तिरस्कार नहीं करना चाहिए। जो जीव हमारे अन्दर स्पन्दित हो रहा है, वही जीव चींटी, कुत्ता, हाथी और समस्त प्राणियों में भी स्पन्दित हो रहा है। उन प्राणियों के साथ एकरूपता अनुभव करनी चाहिए और उनके साथ मिलना-जुलना चाहिए। यह अभिव्यक्ति की एक क्रमिक श्रेणी मात्र है। सभी रूप उसी सगुण ब्रह्म के रूप हैं। पेड़ देखें, पौधा देखें, कुत्ता या मोटर-कार कुछ भी देखें, जो रूप दिखता है वह केवल परदा है और उसके पीछे वह आत्मा या चैतन्य छिपा हुआ है। कुछ समय तक इसका अभ्यास करते रहें तो अवर्णनीय आनन्द का अनुभव होगा। सारी घृणा समाप्त हो जायेगी। विश्व-प्रेम विकसित होगा। यह अनुभव बड़ा भव्य और दुलंभहै। इसका सुनिश्चित परिणाम वेदान्तीय एकता के अनुभव में होगा।

पेड़, पौधा, चींटी, पक्षी, प्राणी और मनुष्य सबमें आत्मा समान है। सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र कुरसी, दीवाल, पत्थर, प्राणी, पक्षी और मनुष्य सबमें सामान्य गुण क्या है ? अस्तित्व । मेज का अस्तित्व है, वृक्ष का अस्तित्व है। यह अस्तित्व सच्चिदानन्द ब्रह्म का सत्-स्वरूप है।

शरीर और मन के बीच जो अन्तर है, वह बाह्य है, दिखावा भर है, असत्य है। वर्षों में अन्तर है, विचार में अन्तर है; पर सबमें आत्मा समान है। चोर, वेश्या, भङ्गी, राजा, गुण्डा, सन्त, कुत्ता, बिल्ली, चूहा- सबमें वह आत्मा समान है। उस झूठे दिखावे और अन्तर को दूर करके सार, सत्य को ग्रहण करना चाहिए ।

पूर्ण एकत्व की भावना के विकास द्वारा द्वत की भावना को 'निमू'ल करना चाहिए। भेद-बुद्धि को मिटा देना चाहिए जिससे ये सारे भेद-भाव. विशेषताएँ और अलगाव पैदा होते हैं। तब परमानन्द और अद्धं तात्मा का आनन्द प्राप्त होगा। तब मनुष्य 'जीवन्मुक्त कहलायेगा ।

अलग-अलग घड़ों में एक ही सूर्य जिस प्रकार अनेक दिखेगा, उसी प्रकार एक ही आत्मा विभिन्न व्यक्तियों में विभिन्न दिखता है। अनेक सूर्य-असत्य हैं, वे प्रतिबिम्ब मात्र हैं। इसी भाँति जीव की अनेकता भ्रामक है। एक ही सूर्य सत्य है। इसी भाँति एक ब्रह्म ही सत्य है।

विश्व के अणु-अणु में स्पन्दित होने वाला दिव्य जीवन मानव के जीवन के अन्दर भी निवास करता है। चींटी का आत्मा ही मनुष्य का आत्मा है। पापी का आत्मा सन्त का आत्मा भी है। भिखारी का आत्मा राजा का आत्मा भी

है। प्रकृति का जो चरम सत्य है, वही मनुष्य का चरम सत्य है। उस आत्मा का प्रत्यक्ष दर्शन करना ही मानव-जीवन का ध्येय है।

समझ लेना चाहिए कि सारी मानव-जाति एक है। सारी दीवारों को, जो मनुष्य से मनुष्य को अलग करती हैं, दूर कर दो। सभी धर्मों का मूल सिद्धान्त एक ही है।

सबके साथ अपनी एकात्मता अनुभव करो। सूर्य, आकाश, वायु, फूल, पेड़, कली, प्राणी, पत्थर, नदी और सागर सबके साथ अपनी एकता अनुभव करो। सभी जीवों का चैतन्य मात्र का एकत्व अनुभव करो। सभी वस्तुओं में, सभी प्राणियों में और वनस्पतियों में विद्यमान उस एकात्मा का अनुभव करो ।

सभी मनुष्यों, पौधों और चट्टानों से अपनी एकता अनुभव करो। सबसे घुल-मिल कर रहो। पारसी, अमरीकी, इटली निवासी, जापानी, रूसी सब आपके ही हैं, आप उनके हो । उनसे एक हो जाओ ।

पहले अपने परिवार के लोगों के साथ अपनी एकात्मता अनुभव करनी चाहिए, तत्पश्चात् समाज के लोगों से, फिर जिले-भर के लोगों से, फिर राज्यभर के लोगों से, फिर देशभर के लोगों से और अन्त में विश्वभर के लोगों से एकात्मता साधनी चाहिए। यह प्रयत्न यदि सफल हुआ तो परमेश्वर के साथ एकात्मता स्थापित करना आसान हो जायेगा ।

जो समदृष्टि वाले योगीजन होते हैं, वे विद्याविनय-सम्पन्न ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ता और चाण्डाल के बारे में समान भाव रखते हैं। इस समहष्टि का स्वभाव क्या है? क्या उन्हें हाथी कुत्ते जैसा दिखेगा ? क्या उन वस्तुओं का गुणधर्म एक हो जायेगा ? गुण सदैव विभिन्न ही होते हैं। योगसिद्ध मुनि ब्राह्मण, हाथी, कुत्ता और चाण्डाल सबमें एक आत्मा को पहचानता है। सभी जगह उसी को पहचानता है और समदृष्टि ही अनुभव करता है। आत्मा का साम्य सर्वत्र दिखायी देता है। यह स्पष्ट समझ लेना चाहिए ।

जो-कुछ भी दिखायी देता है, सब भगवान् ही है। जो सुनायी देता है, वह भगवान् ही है। जो-कुछ स्वाद मिलता है, सब भगवान् ही है। जो कुछ गन्ध आती है, सब भगवान् ही है। जो-कुछ अनुभव होता है, सब भगवान् ही है। भगवान् का व्यक्त रूप यह. है.। भौतिक शरीर विराट् का है। लिङ्ग शरीर हिरण्य-गर्भ का है और कारण शरीर ईश्वर का है। फिर वह छोटा 'मैं' कहाँ रहा ?

समन्वयात्मक विश्व-दृष्टि को अपनाना चाहिए। विविधता में एकता को पहचानना चाहिए। विवेक, निरीक्षण और ज्ञान के द्वारा भेदजनक दीवारों को गिरा देना चाहिए। एकता की आध्यात्मिक दृष्टि अपनानी चाहिए। अनन्त सुख के उच्च लोक में विचरण करो। सुखी वह है जो आत्मा की एकता अनुभव करता है, जो अन्यादृश आत्मा की दिव्यदृष्टि-सम्पन्न है।

सृष्टिमात्र में भगवान् का अस्तित्व देखो। सबके मित्र रहो, सबसे प्रेम करो, सब पर दया करो। विश्वव्यापी प्रम पैदा करो। मनुष्य-मनुष्य के बीच का परदा हटाओ। फैलो, सबमें मिल जाओ । उच्च-नीच भाव छोड़ दो। भूल और अन्यायपूर्ण व्यवहार करना बन्द करो । शुद्ध चैतन्य का विकास करो। लोगों में ज्ञान, सुख और शान्ति को फैलाओ। सत्य और न्यायनिष्ठा का अभ्यास करो ।

बच्चे की दृष्टि भी योगी या जीवन्मुक्त की तरह समान होती है। उसके सामने शत्रु-मित्र जैसी कोई भावना नहीं रहती। उसे आप अभी पीट दीजिए, फिर कुछ देर में मिठाई हाथ में ले कर बुलाइए। वह अत्यन्त प्रसन्नता से दौड़ा आयगा। पर उस सम-दृष्टि में अज्ञान है जबकि योगी की समदृष्टि ऐक्य-ज्ञान से प्रेरित है।

हे अमृत पुत्रो, संबमें विराजमान उस एक आत्मा को पहचानो। यह मन्त्र मन में जपो 'ओङ्कार सच्चिदानन्द आत्मा ।' जब भी कोई रूप दिखे, तब नामरूप का अपवाद कर अन्र्तानहित आत्मा को पहचानो। आत्मभाव से सबकी सेवा करो। भ्रमजन्य सारे भेद-भाव दूर करो। अलगाव हटाओ । निष्कारण द्वेष और पूर्वाग्रह मिटाओ। सबके साथ मिलो, सबको मिला लो। सबको गले लगाओ। आपके पास जो-कुछ है, सबके साथ बाँट लो क्षणभर के लिए भी आलसी न रहो। कार्यरत रहो। मन शान्त रखो। यही व्यावहारिक वेदान्ती के लक्षण हैं.। ऐसे व्यावहारिक वेदान्ती धन्य हैं। वे सर्वत्र सुख, शान्ति और प्रम फैलायें ! वे हाथ में दिव्य ज्योति और दिव्य प्रकाश ले कर विचरण करें ! अपने प्रायोगिक जीवन द्वारा व्यावहारिक वेदान्ती का उदाहरण प्रस्तुत करें !
जिसने आत्मा की एकता को पहचान लिया, उसके लिए कोई दुःख या कष्ट नहीं; क्योंकि उसके लिए उस एक के सिवा दूसरा है ही नहीं। वैसा योगी स्वयं ब्रह्म है। जब सर्वत्र एक ब्रह्म का ही दर्शन होता है, तब ब्रह्म के सिवा और है ही क्या ! इसीलिए वेद उद्घोष करते हैं कि 'सब-कुछ ब्रह्म ही है। अनेकता जैसी कोई वस्तु है ही नहीं ।'

जीव ब्रह्म बन सकता है। वह ईश्वर नहीं बन सकता । अविद्या, उपाधियाँ जब मिटती हैं तब जीवात्मा ब्रह्म से एक हो जाता है (यह एक विचार-सरणि है)।

गङ्गा-जल भले बहता रहे या किसी बोतल में भर कर वन्द किया हो, है तो वह गङ्गा-जल ही। इसी प्रकार जीवात्मा और परमात्मा दोनों एक ही हैं।

जो विविधता में एकत्व का दर्शन करता है, वही वास्तविक धार्मिक पुरुप है। हमें जो चीजें अलग करती हैं, उनकी अपेक्षा हमें एक और समान बनाने वाली चीजें अधिक गहरी और सुन्दर लगती हैं।

जहाँ द्वत है वहाँ एक दूसरे को देखता है। जब आत्मा सर्वत्र एक ही है, तब कौन किसको देखता है ? द्वत में भय है। द्वैत में लड़ाई-झगड़े हैं। दूत अज्ञान है। उसमें दुःख, कष्ट, बीमारी और मृत्यु है। द्वत से परे उठो। परदा हटाओ । आवरण फाड़ दो। केवलाद्व'त का अनुभव लो ।

दयाहीन विचारों को प्रश्रय मत दो। दयाहीन बातें मत बोलो। दूसरों से आपको अलग करने वाली सारी दीवार तोड़ दो। भेद दिखता है तो अज्ञान निश्चय है। यह सोचो पेड़ में, पत्थर में, सूर्य में, चन्द्रमा में, नक्षत्रों में, प्राणियों में

सर्वत्र आप ही हो। सब आत्मस्वरूप हैं। सब एक हैं। सारा विश्व आपका शरीर है। सबके साथ एकात्मभाव प्राप्त करो।

मैं फिर दोहराता है जिससे कि आपके मन में गहरी छाप पड़े। 'विश्व कुछ नहीं है। आप शरीर नहीं हो। आप सर्वव्यापी आत्मा हो। आप अकर्ता हो। आप मौन साक्षी हो। इन्द्रियाँ अपना धर्म पालन करती हैं। सर्वत्र आत्मा व्याप्त है। अन्तर्यामी चैतन्य को पहचानो। फल दिखता है, तब सोचो 'यह एक आत्मा है।' सभी रूपों में सार-तत्त्व देखो। बाह्य आवरण और भ्रमपूर्ण दृश्यों को भूल जाओ। इससे बहिनिविकल्प समाधि की तरफ बढ़ोगे। आँखें बन्द करने की आवश्यकता नहीं है और न इस पद्धति की साधना करने के लिए आसन करने की आवश्यकता है और न अलग कमरे की। बुद्धिशाली सांसारिक मनुष्यों के लिए यह पद्धति अनुकूल है। यह ज्ञान-कर्म समुच्चय है। स्वयंप्रकाशी परब्रह्म ही चित्त और विश्व के रूप में प्रतिभा सित हो रहा है। विश्व अन्ततोगत्वा मन के सिवा कुछ नहीं है। विश्व एक लम्बा स्वप्न है। वेदान्त या ज्ञानयोग का सार मैंने संक्षेप में कह दिया है। इसे आत्मसात् करो। हृदयङ्गम कर लो। साहसपूर्वक सर्वत्र व्यवहार में लाओ। निर्भय बनो। ब्रह्म के समान प्रकाशित होओ। निडर हो कर बढ़ो। सबमें सच्चिदानन्द ब्रह्म का आनन्द लूटो।

(४) वेदान्त की महिमा

वेदान्त परम सुख के साम्राज्य का राजमार्ग है। अमरता और अनन्तं आनन्द का आश्रयस्थल है। यह वह सञ्जीवनी है जो मरते हुए मनुष्य में प्राण भर दे। भले ही मनुष्य के पास खाने के लिए कुछ भी न हो, भले ही वह चिथड़ों में लिपटा पड़ा हो; किन्तु यह उसको सम्राटों का सम्राट्, राजाओं का राजा, शाहों का शाह बना देता है। वह अन्तःशक्ति निर्माण करता है, प्रेरणा देता है, ताजगी देता है, स्फूत्ति देता है, जीवन सञ्चारित करता है और शक्ति प्रदान करता है। निरुत्साही में यह उत्साह, अशक्त में शक्ति, निराश में आशा और दुःखी में सुख भर देता है।

मनुष्य को ऊँचा उठाने वाला एकमात्र दर्शन है वेदान्त। वह सर्वसुलभ है। वह वैदिक धर्म है। वह निराश और हतोत्साही लोगों में आशा, उत्साह, शान्ति और स्फूत्ति का सञ्चार करता है। वेदान्त का अध्ययन कितना ऊँचा उठाने वाला है ! वेदान्त का अभ्यास कितना अधिक उन्नायक है! वेदान्त के आचार्यों और ब्रह्मविद्या के गुरुओं को प्रणाम !

ज्यों-ज्यों द्वैतभःवना बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों प्रापञ्चिक वस्तुओं से भय भी अधिक लगेगा। जब सर्वत्र एक ही आत्मा दिखायी देने लगे, जन ब्रह्म के साथ एकात्मता का अनुभव होने लगे, तब भय कहाँ ? वह व्यक्ति परमानन्द का अनुभव करेगा। जब देखने, सुनने और छूने के लिए कोई है नहीं, तब भय कैसा ?

सन्तजन जोर दे कर उद्घोष करते हैं कि आत्म-प्राप्ति से बढ़ कर कोई दूसरी प्राप्ति नहीं है। व्यक्ति को आत्मज्ञान प्राप्त होते ही उसकी सारी कामनाएँ समाप्त हो जाती हैं। उसे आत्मा-नन्द उपलब्ध होता है। वह आत्मा में ही सन्तुष्ट रहता है।

वेदान्त सर्वसुलभ है। वह सर्वात्मक है। वह उपनिषदों का धर्म है। वह सबकी सम्पत्ति है। उसे किसी भी धर्म से झगड़ा नहीं है। वह सार्वभौम तत्त्वों का उपदेश देता है। विश्वभर के घों का मूल-स्रोत जो है, उसी का उपदेश वह करता है। वह साम्य लाने वाला धर्म है। वह सबको जोड़ता है, उसमें सबको स्थान है।

वेदान्त के अन्दर सारे सम्प्रदाय, सारे धर्म, सारी परम्पराएँ, सारी जातियाँ और सारे राष्ट्र समाविष्ट होते हैं। वह उपनिषदों और प्राचीन ऋषि-मुनियों का धर्म घोषित करता है। वह सबकी समान सम्पत्ति है। उससे हृदय विशाल होता है; आँखें खुलती हैं। वह नवजीवन देता है, अखण्ड सुख और अनन्त आनन्द देता है। वह मनुष्य-मनुष्य के बीच का परदा हटा कर सबको मिलाता है। उससे शान्ति, बल तथा समाधान प्राप्त होता है और भय, संशय, आकांक्षा, भ्रान्ति और अज्ञान दूर होते हैं।

आत्मज्ञान से अविद्या का वैसे ही नाश होता है जैसे कि सूर्य से अन्धकार का। तब सारे विश्व में उस ब्रह्म पर पड़ा हुआ नाम-रूपात्मक आवरण हट जाता है।

ब्रह्मज्ञान साक्षात् ब्रह्मा से गुरुओं तक परम्परा से प्राप्त होता आया है। श्री गौड़पाद ने श्री गोविन्दपाद को दिया, श्री गोविन्द-पाद ने श्री शङ्कराचार्य को दिया और श्री शङ्कराचार्य ने श्री पद्मपाद को दिया और इसी प्रकार परम्परा चल पड़ी ।

न्यायदर्शन में पदार्थ के सात विभाग किये गये हैं:- द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव ।

न्याय-शास्त्र में चार प्रमाण हैं- प्रत्यक्ष (इन्द्रियजन्य-ज्ञान), अनुमान (तर्क से प्राप्य ज्ञान), उपमान (सादृश्यजन्य-ज्ञान) और शब्द (आप्तवाक्यजन्य-ज्ञान) ।

प्रमाता वह है, जो ज्ञान प्राप्त करता है। प्रमाण वह है जिससे वस्तु का ज्ञान प्राप्त होता है। प्रमेय वह है जिसका ज्ञान प्राप्त होता है।

प्रत्यक्ष प्रमाण पर बहुत अधिक निर्भर नहीं रहा जा सकता ।

आकाश की ओर देखो। वह गुम्बद की तरह और नीला दिखता है। ये दोनों ज्ञान सत्य नहीं हैं। अनुमान पर भी भरोसा नहीं किया जा सकता। सभी प्रमाणों में शब्द-प्रमाण ही अधिक विश्वसनीय है; क्योकि वह ब्रह्मज्ञानियों के प्रत्यक्ष अनुभव की चीज है। उसमें बिलकुल घोखा नहीं रहता है। श्रुतियाँ सच्चे ब्रह्मज्ञान को प्राप्ति का साधन हैं।

आत्मज्ञान अनुभव का विषय है, चर्चा का नहीं। वह अनुभव-ज्ञान है। यह आत्मा का ज्ञान है। इस आत्मज्ञान को प्राप्त करने के लिए केवल उपनिषदों का या ब्रहमसूत्र का अध्ययन पर्याप्त नहीं है। केवल व्याख्यान देने से भी कोई लाभ नहीं है। कुएँ का मेढक समुद्र की गहराई क्या जाने ? आप लाख वर्णन करें, तब भी क्या कोई जन्मान्ध सूर्य-प्रकाश जान सकता है ? मिश्री के बारे में चाहे जितना व्याख्यान दिया जाय पर जिसने उसे न खाया हो, वह उसका स्वाद क्या जाने ? आत्मज्ञान भी अनुभव से समझने की, स्वयं प्राप्त करने की वस्तु है। उसका साधन है श्रवण, मनन और निदिध्यासन ।

(५) वेदान्त-साधना

ज्ञान-प्राप्ति की पहली सीढ़ी है गरीवों और रोगियों की सतत सेवा । दूसरी सीढ़ी इन्द्रियनिग्रह है। तीसरी सीढ़ी है नम्रता, सहिष्णुता, दया, सत्यनिष्ठा और ब्रहमचर्य का विकास । चौथी सीढ़ी है नियमित ध्यान । तब सुमधुर अन्तर्वाणी सुनायी देगी। तब अन्तर्ज्ञान की तीसरी आँख खुलेगी। मनुष्य प्रकाश पा लेगा ।

'उपदेश-साहस्री' नामक ग्रन्थ में श्री शङ्कराचार्य ने लिखा है कि 'वेदान्त उसी को सिखाना चाहिए जिसका मन शान्त हो, जो जितेन्द्रिय हो, जो वासना आदि दोषों से मुक्त हो, विनम्र हो, सद्गुण-सम्पन्न हो, सदा विनयशील हो और मुक्ति के लिए आतुर हो' (३२४-२६ : ७२) ।

वेदान्त के विद्यार्थियों को नित्यप्रति कठोपनिषद् पढ़ना चाहिए । उसमें आत्मज्ञान के सम्बन्ध में नचिकेता और यमराज के बीच सम्भाषण है। उसमें छः अध्याय हैं।

वेदान्त के कुछ विद्यार्थी अपने शरीर का ध्यान नहीं रखते ।

यह बड़ी भूल है। शरीर के प्रति मोह नहीं होना चाहिए। विष्णु और प्रहलाद के बीच जो संवाद हुआ है, उसे घ्यान से सुन लें- "हे निर्दोष प्रहलाद ! अपने शरीर की ओर देखो । यह शरीर अभी तक पूरा प्रौढ़ नहीं हुआ है। प्रौढ़ होने से पूर्व ही इसे त्यागने का विचार क्यों करते हो ? जब तक प्रापञ्चिक विषयों की ओर आसक्ति पैदा नहीं होती, तब तक उनका कोई आकर्षण नहीं होता है और ऐसी दशा में शरीर रहे या न रहे, बया अन्तर पड़ता है? अब समाधि से उठो। जीवन्मुक्त-अवस्था में इस शरीर के द्वारा संसार में न्याय की स्थापना करो; पर संसार के भार से उ.ब नहीं जाना ।"

हम अपनी भौतिक आँखों से जो गङ्गा देखते हैं, यह असली गङ्गा नहीं है। वास्तविक गङ्गा तो अमरत्व प्रदान करने वाला आत्मज्ञान अथवा शिवज्ञान है। असली गङ्गा आकाश की तरह सर्वव्यापी है । कात्तिकी-पूर्णिमा के अवसर पर गढ़-मुक्तेश्वर के पास गङ्गा जी में स्नान करना निश्चय ही वहुत पवित्रकारी है; पर केवल स्नान ही पर्याप्त नहीं है। श्रवण, मनन और निदिध्यासन के द्वारा उस आत्मगङ्गा में चित्तशुद्धिपूर्वक नहाना आवश्यक है।

चूंकि चित्त अशुद्ध है. इसलिए ब्रह्म का दर्शन नहीं होता है। जिनका चित्त शुद्ध है, वे मन और इन्द्रियों के निरोध द्वारा ध्यान-समाधि में उसका साक्षात्कार कर लेते हैं। स्मृतियाँ भी कहती हैं- "योगी निद्रा-रहित हो कर, प्राणायाभपूर्वक, निविकार मन से, इन्द्रिय-निग्रह द्वारा ध्यान-समाधि में उस अखण्ड ज्योति का दर्शन करते हैं।"

आत्मा अथवा परमात्मा के स्वभाव को पहचानना चाहिए।

वह कर्म, दुःख, राग और पापों से अस्पृष्ट है। वह एक है, शाश्वत है, अशरीरी है, सर्वव्यापी है, स्वतन्त्र है. अपरिवर्तनीय है, निराधार और आत्मतुष्ट है।

इन्द्रियाँ, भौतिक शरीर, मन, प्राण, बुद्धि आदि सब अविद्या के परिणाम हैं। ये सब उपाधियाँ हैं। वेदान्त के नेति-नेति सिद्धान्त द्वारा इन सबको त्यागो। सबके निषेध के पश्चात् जो शेष रह जाता है, वही आत्मा या ब्रह्म है। 'फेवलोऽहम्'- मैं एक ही है- का भावपूर्वक जप करो। इसी समय आत्मानन्द प्राप्त करो। इसी क्षण साधना प्रारम्भ करो।

अन्तर्जीवन अधिक महत्त्व का है। बाह्य जगत् मिथ्या है। यह एक छाया है, माया का इन्द्रजाल है, स्वप्न है। एकमात्र ब्रह्म ही सत्य है। आप उपाधि (मन, शरीर, इन्द्रियाँ) रहित ब्रह्म हो। 'तत्त्वमसि' - तुम वह (ब्रह्म) हो। इन विचारों को दोहराते-दोहराते मैं नहीं थकता है। प्रत्येक के रग-रग में, रोम-रोम में, हड्डी-माँस में यह विचार व्याप्त हो जाना चाहिए। अपने सम्पर्क में आने वाले व्यक्ति के मस्तिष्क में भी इन विचारों को भर देना चाहिए । भक्ति और निष्काम-सेवा का उपदेश देना चाहिए ।

एक बार पार्वती जी ने भगवान् शिव जी से प्रश्न किया, "हे स्वामी, कुछ लोग कहते हैं कि जन्म-मृत्यु के चक्र से छूटने का उपाय एकमात्र ज्ञान ही है। ऐसी दशा में योग की बया आव-श्यकता है ?" भगवान् शङ्कर ने कहा, "तलवार से युद्ध जीता जा सकता है; पर सिपाही ही न रहा तो तलवार का क्या प्रयोजन ?" इसलिए ज्ञान और योग दोनों की अनिवार्य आवश्यकता है। प्रश्न उठ सकता है कि 'कई सन्तजन योग का अभ्यास किये बिना ही आत्मज्ञान प्राप्त कर चुके हैं। यह कैसे सम्भव हुआ ?' इसका निश्चित उत्तर यह है कि उन लोगों ने अपने पूर्व-जीवन में योग का अभ्यास किया था।

श्री शङ्कराचार्य ने कहा है "तरङ्ग समुद्र की हैं, समुद्र तरङ्गों का नहीं है। इसी प्रकार मैं ब्रह्म का है, ब्रह्म मेरा नहीं है।" यद्यपि श्री शङ्कराचार्य ने आत्यन्तिक अर्द्धतानुभूति प्राप्त कर ली थी, यद्यपि वे केवलाद्वैत वेदान्त के समर्थक थे, तो भी उन्होंने भक्ति का निषेध नहीं किया। वे परम भक्त थे। उन्होंने दक्षिणामूत्ति, हरि, देवी आदि के स्तोत्र लिखे हैं जो भक्तिभाव की परमावधि के उदाहरण हैं। वे शुष्क वेदान्ती नहीं थे।

श्री शङ्कराचार्य के कथनानुसार 'स्वस्वरूपानुसन्धानं भक्तिरित्यभिधीयते" अपने स्वरूप के अन्वेषण का नाम ही भक्ति है। वे और कहते हैं "मोक्ष प्राप्ति के सभी साधनों में भक्ति ही सर्वोच्च साधन है।"

जीव जब जागता है, तब कहता है- 'बड़ी अच्छी नींद आयी; मुझे कुछ भी पता नहीं था।' मन जब अपने विश्रामस्थल से, लय-स्थान से जागता है, तब उस पर मूल गज्ञान का अर्थात् प्राज्ञ का प्रभाव रहता है।

ॐ, सोहं और आत्मा का स्मरण करो। मौन ही बात्मा है। केन्द्र ही आत्मा है। उस केन्द्र में विश्राम करो और शान्ति तथा बल प्राप्त करो। आकांक्षा करो और प्राप्त करो।

श्वास लेते समय 'सो' कहने में कठिनाई अनुभव होती हो तो 'रा' कहो, 'शिवो' कहो या 'ओ' कहो। फिर निश्वास छोड़ते समय 'म' कहो, 'हम्' कहो या 'म्' कहो। 'सोऽहम् सः अर्थात् वह, अहं अर्थात् मैं हूँ। वह मैं है। यह सोऽहं का अर्थ है। इससे ब्रहम और जीव की एकता परिलक्षित होती है।

उस आत्मा को - राम को न भूलना जो कि मन और इन्द्रियों को प्रकाश और शक्ति से भर देता है। क्या आप उसको अपने काम के समय पहचान पाते हो ? उसको पहचानना चाहिए। काम करते समय 'ॐ राम' का उच्चारण करो। आत्म-ज्ञान प्राप्त करने के लिए यह सरल साधन है।

श्रोकृष्ण का साक्षात् दर्शन हो सकता है। उनसे बार-बार बातचीत भी की जा सकती है। उनके साथ आप खेल और खा भी सकते हो; परन्तु यदि मोक्ष की इच्छा है तो आत्म-साक्षात्कार करना अनिवार्य है। नामदेव ने कई बार श्रीकृष्ण के दर्शन किये थे; परन्तु गोरा ने उन्हें कच्चा कह दिया और केवल ज्ञान प्राप्त करने के लिए उन्हें विशोबा केसर के पास भेजा ।

ईश्वरोपासना, वेदाध्ययन और गुरु-सेवा से हृदय शुद्ध होता है और अनन्त सुख-प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त होता है।

ज्ञान, तृप्ति, शान्ति, आनन्द और समहष्टिरूपी पुष्पों से आत्मदेव की पूजा करनी चाहिए। यह सच्ची पूजा है। इन वस्तुओं की तुलना में गुलाब, चमेली, गन्ध, धूप, दीप, मिष्टान्न आदि का भोग चढ़ाना कुछ नहीं है। ये तो प्रारम्भ में नये साधकों के लिए हैं।

एक दिन आपको इसका अनुभव होगा कि जिसे अपने से भिन्न समझ कर आप पूजते हैं, वह भिन्न नहीं, हमारे अन्दर निवास करता है। वह हमारे हृदय-मन्दिर में विराजमान् है। वह अन्तर्यामी है।

निश्चय करो- 'किसी भी वस्तु की सत्ता नहीं है। मेरा कुछ नहीं है। मैं सर्वभूतस्थित आत्मा है।' यह वेदान्त की साधना है । यह विचार विश्वचैतन्य की ओर ले जाता है। इससे अद्धं तानुभूति सिद्ध होती है।

यह सच है कि साधना पर बहुत-कुछ निर्भर करता है। अभ्यास से ही मनुष्य कुशल बनता है। ज्यों-ज्यों हम लक्ष्य के निकट पहुँचते हैं त्यों-त्यों आनन्द का अनुभव होने लगता है। तब अद्भुत शान्ति का भान होता है। आत्मपुष्प पूर्णतः विक-सित होता है। गम्भीर मौन का अमृत पान करना चाहिए। उस प्रगाढ़ मौन में आत्मरहस्य

हस्तामलकवत् स्पष्ट हो जायगा । अविद्या, माया तथा तज्जन्य मोह, शोकादि समाप्त हो जायेंगे । तब परम ज्योति, ज्ञान, पवित्रता और आनन्द सर्वत्र फैलेगा।

जटा बढ़ाने से, ओजस्वी भाषणों से, चमत्कारों के प्रदर्शन से पूर्णता या आत्मज्ञान प्राप्त नहीं होता। जो राग-द्वष, अहङ्कार, काम, क्रोध आदि द्वन्द्वों से सर्वया मुक्त है, वह सर्वदा सुखी है, वही ब्राह्मण है, वही जीवन्मुक्त है।

विचार के विना सत्य या ब्रह्म का ज्ञान या साक्षात्कार सम्भव नहीं है। विचार का अर्थ है 'मैं कौन है'; 'आत्मा का स्वरूप क्या है", इसकी जिज्ञासा । ब्रह्मविचार से अमरत्व की ओर अग्रसर हुआ जाता है, इसलिए ब्रह्म-विचार में निरन्तर लीन रहना चाहिए । 'जैसा विचार करोगे, वैसा बनोगे ।' ब्रह्म का विचार करोगे तो ब्रह्म बनोगे। ब्रह्म बनने का अर्थ है अमरत्व प्राप्त करना, अखण्ड शान्ति पाना ।

अनुसन्धान का अर्थ है खोज, निरीक्षण। अनु का अर्थ है पश्चात्, सं का अर्थ है परिपूर्ण, धान का अर्थ है ध्यान देना, लगन । आत्मानुसन्धान का अर्थ है आत्मस्वरूप की खोज। यह 'विचार' शब्द का पर्यायवाची है।

ज्ञानयोग के मार्ग में भ्रमपूर्ण वैषयिक वस्तुओं को मिटाने के लिए विवेक अर्थात् नित्यानित्य-वस्तुविवेक मशीनगन जैसा साधन है।

मैं कौन है? ब्रह्म क्या है? संसार क्या है ? जीवन का लक्ष्य क्या है ? उसे कैसे प्राप्त किया जाय ? जन्म-मृत्यु से छुट-कारा कैसे मिलेगा ? मोक्ष का स्वरूप क्या है ? कब, कहाँ, कैसे ? प्रत्येक साधक को इस प्रकार अन्वेषण करते रहना चाहिए और जीवन का लक्ष्य सिद्ध करने का प्रयत्न करना चाहिए ।

सृष्टि दो प्रकार की है जीवसृष्टि और ईश्वर-सृष्टि । अहङ्कार और ममकार जीवसृष्टि है। मनुष्य को संसार में बाँधने वाली यह जीवसृष्टि ही है। जीवसृष्टि को ही मनोमायासृष्टि भी कहते हैं। पाँच भूत (तत्व) ईश्वर ने बनाये हैं। ईश्वर-सृष्टि से मनुष्य बद्ध नहीं होता। इसके विपरीत मनुष्य को मुक्त करने में वह सहायक भी होती है।

श्रुतियों ने बार-बार घोषित किया है कि ब्रह्म निविशेष है, कारण-कार्य भाव से रहित है, उससे मन और वाणी चकित हो कर वापस हो जाते हैं, ब्रह्म न यह है न वह है। वह ज्ञात और अज्ञात दोनों से परे है। वह निरुपाधिक सत् है। वह सत्यों का सत्य (सत्यस्य सत्यम्) है।

वेदान्त का विद्यार्थी 'नेति-नेति' सिद्धान्त का नित्य जीवन में व्यवहार करता है। वह कहता है- "मैं यह शरीर नहीं है। मैं यह मन नहीं है। मैं यह प्राण नहीं है। मैं इन्द्रिय नहीं है।" नेति-नेति का अर्थ है यह नहीं, यह नहीं। यह निषेध-मार्ग (व्यतिरेक सरणि) है। परन्तु वह सर्वव्यापी आत्मा से एकरूप होने का प्रयत्न करता है। यह प्रयत्न आत्मानुभूति में परि-समाप्त होता है। इसके द्वारा पूर्ण ब्रह्म की भावना विकसित होती है।

मान लीजिए एक घर में दश कमरे हैं। रात में सभी कमरों का अन्धकार समान है। अन्धकार एक ही है। एक कमरे में प्रकाश जलायें तो उसी कमरे का अन्धकार दूर होगा। इसी प्रकार चैतन्य सभी जीवों में समान है। सभी प्राणियों में रहने बाला चैतन्य एक ही है। किसी एक जीव में अविद्यारूपी अन्धकार दूर किया जाय तो वही एक जीव प्रकाशित होगा। एक जीव के ब्रहमज्ञान पाने से सारे जीव जीवन्मुक्त नहीं हो सकते; क्योंकि प्रत्येक जीव की उपाधि, अन्तःकरण या विभाजक दीवाल अलग-अलग है।

आत्मा सर्वव्यापक और अविभाज्य है। जो और कुछ नहीं देखता है, और कुछ नहीं सुनता है, और कुष्ठछ नहीं सूघता है, और कुछ नहीं चसता है. और कुछ नहीं छूता है, और कुछ नहीं जानता है, वह आत्मा है। आत्मा ऊपर-नीचे, आगे-पीछे, दायें-बायें सर्वत्र है। आत्मा सभी प्राणियों का जीव है। सुषुप्ति में मन उसी आत्मा में जा कर विश्रान्ति प्राप्त करता है। मन को सोचने की प्रेरणा आत्मा से मिलती है। चूंकि आत्मा शुद्ध, सर्वव्यापी सूक्ष्म चंतन्य है, इसलिए वह अरूप है, अनाम है, अशरीर है, निर्गुण है; परन्तु वह चिद्यन और आनन्दघन है।

इस शरीर में छिपे हुए उस चैतन्य की प्ररणा के बिना कोई कुछ देख नहीं सकता, सुन नहीं सकता, बोल नहीं सकता, सोच नहीं रुकता, समझ नहीं सकता, चल नहीं सकता, कुछ भी नहीं कर सकता । मृत शरीर बोल या देख नहीं सकता; क्योंकि उसमें जीव या चैतन्य नहीं है।

सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, हिमालय के हिमाच्छादित पर्वतशृङ्ग, चमेली, गुलाब, नियाग्रा का जल-प्रपात और विशाल समुद्र आदि देख कर हमें आश्चर्य होता है। वायुयान, जलयान, वाष्पयान, तार, बेतार का तार आदि की हम प्रशंसा करते हैं; किन्तु हमारे मस्तिष्क के अन्दर का यह मन सचसे अधिक अद्भुत है। पलक मारते वह कोलम्बो से लन्दन और हिमालय से बलिन चला जाता है; परन्तु इस संसार में सबसे अधिक अद्भुत वस्तु है वह विश्वव्यापी ब्रहम। उसी से चन्द्र, सूर्य, तारे और मन को प्रकाश मिलता है।

नवद्वारयुक्त इस माया-नगर में यह जीव सुषुप्तावस्था में सुख भोगता है। इस स्थिति में वृत्ति भी नहीं रहती, सङ्कल्प भी नहीं रहता, भावनाविकल्प भी नहीं रहते, इन्द्रियों का खेल भी नहीं रहता, बुद्धि की सक्रियता भी नहीं रहती। इस स्थिति में सही और गलत के ज्ञान का भी कोई स्थान नहीं है।

संसार में अत्यन्त शक्तिशाली दो शक्तियाँ हैं। एक है भलाई और दूसरी है बुराई। ये दोनों परस्पर सम्बद्ध हैं। ये दोनों एक ही पिता की जुड़वाँ सन्तान हैं। ये द्वन्द्व हैं। इनका अलग-अलग अस्तित्व नहीं है। बुराई से भलाई का महत्त्व वढ़ता है। भलाई के अस्तित्व का मूल कारण बुराई है। बुराई भलाई का ही अभावात्मक रूप है। बुराई भलाई की ही योनि है। शुद्ध भलाई या शुद्ध बुराई हो नहीं सकती। बुराई ध्वंसात्मक शक्ति है और भलाई रचनात्मक शक्ति है। भलाई को छोड़ कर बुराई रह नहीं सकती। जहाँ भलाई है वहाँ बुराई भी है ही। इस सापेक्ष संसार में केवल भलाई की अपेक्षा नहीं की जा सकती। हाँ, केवल भलाई एकमात्र ब्रहम में मिल सकती है। भलाई और बुराई के पीछे जो यह सत्य है, उस दृष्टिकोण से देखने से इस संसार में भलाई और बुराई केवल हवाई चीजें हैं। भलाई और बुराई

केवल मन की सृष्टियाँ हैं। इन दोनों से ऊपर उठना चाहिए और शाश्वत शान्ति और अमरत्व का आश्रय लेना चाहिए। जो ज्ञानी है, जिसने आत्मज्ञान प्राप्त कर लिया है, उसके लिए यहाँ न कुछ भलाई है न बुराई ।

इस संसार में कोई भी वस्तु बुरी नहीं है। मैला बुरा लग सकता है, पर वह बुरा नहीं। साग-सब्जी के खेत के लिए वह सुन्दर खाद का काम देता है। स्वयं मैले से उसकी शिकायत सुनिए। वह कहता है, "मित्रो. आप लोग मुझे गाली देते हो। मैं अगर बिगड़ा है तो आप ही लोगों की जीभ, पेट और आँतों के सम्पर्क से बिगड़ा है। मेरा असली रूप तो मीठे सन्तरे का था। मैं स्वादिष्ट रसगुल्ला था। मैं कलमी आम था।" भला, बुरा यह सब सापेक्ष शब्द हैं। मानसिक सृष्टि हैं। आम मीठा नहीं है। यह कल्पना ही है कि वह मीठा है। स्त्री सुन्दर नहीं है। यह कल्पना ही है कि बह सुन्दर है। मैला खराब नहीं है। यह कल्पना ही है कि वह खराब है। मन को सुधारना चाहिए। मूलस्रोत आत्मा का विचार करना चाहिए। फिर सब-कुछ पवित्र है, शुद्ध है, भला है और सुन्दर है। बुरे को भले में बदल दो। धरती पर स्वर्ग लाने का यही मार्ग है।

डाक्टर सोचता है कि वकील का काम अच्छा है। उससे आय भी अच्छी हो जाती है। वकील सोचता है कि डाक्टरी-धन्धा अच्छा है। उससे आमदनी अच्छी होती है। पर दोनों एक ही भ्रम में भटक रहे हैं। यह माया है। यह मन की दूसरी चालाकी है। सावधान रहो। विवेकी बनो।

राग, द्वेष, सुख दुःख-ये सब मन के गुण हैं। सांख्यशास्त्री समझते हैं कि आत्मा में कोई दुःख नहीं है। जो कुछ भी दुःख है, सारा शारीरिक है। वे जानते हैं कि सारा प्रकृति का खेल है और आत्मा मौन साक्षी मात्र है। उन्हें भलीभाँति मालूम है कि सारी क्रियाएँ गुणों पर अवलम्बित हैं। अतः यही विचार करना चाहिए कि 'मैं कुछ नहीं कर रहा है।'

आत्मा स्वयंभू और स्वयंप्रकाश है। वह कानों का कान है, आँखों की आंख है, जीभों की जीभ है, मनों का मन है, प्राणों का प्राप्ण है। ये सारी इन्द्रियाँ, मन और प्राण अपनी शक्ति उसी ब्रह्म से प्राप्त करते हैं जो सृष्टि का मूल है। उसके बिना आप सुन नहीं सकते, देख नहीं सकते, साँस नहीं ले सकते, सोच नहीं सकते। वह अन्तर्यामी है।

उस असीम और विभु आत्मा ने अपनी कल्पनाशक्ति से जो रूप धारण किया है, उसका नाम है मन। मन बनाता है, बिगाड़ता भी है। सारे विश्व की सृष्टि उसी की कल्पनाशक्ति से होती है। वही सारे सुखों और दुःखों का कर्त्ता और भोक्ता है। वही बन्धन और मुक्ति का कारण है। जो-कुछ है, सब मन ही है। वह आपका सच्चा मित्र है, वही पक्का शत्रु भी है। निम्न स्तर का मन शत्रु है। उसके कारण नाना-विध आसक्तियों का निर्माण होता है। उसके मूल में कई वासनाएँ और भावनाएँ भरी पड़ी हैं। उच्च स्तर का मन दुर्लभ भित्र है, महान् उपकारी है; क्योंकि जीवन के अन्तिम ध्येय को प्राप्त करने में वह सच्चा योगदान दे सकता है। उन्नत मन आपका मार्ग-दर्शक गुरु बन सकता है।

उसकी मधुर, मन्द वाणी और उपदेशों को सुनिए और उनके अनुसार चलिए। शुद्ध चित्त की आवाज भगवान् की आवाज़ है। वह अमोघ वाणी है। गीता में लिखा है- "मनुष्य को चाहिए कि संसार-समुद्र से अपने द्वारा अपना

नलद्धार करे और अपने आत्मा को अधोगति में न पहुंचाये; क्योंकि यह जीवात्मा आप ही तो अपना मित्र है और आप ही अपना शत्रु है। उस जीवात्मा का तो वह आप ही मित्र है कि जिस जीवात्मा द्वारा मन और इन्द्रियों सहित शरीर जीता हुआ है और जिसके द्वारा मन और इन्द्रियों सहित शरीर नहीं जीता गया है, उसका वह आप ही शत्रु के सहश शत्रुता वर्तता है (अ० ६-५,६) । निम्न स्तर के मन को जीतने के अतिरिक्त इस संसार-सागर को पार करने का कोई दूसरा साधन नहीं है।

जो ब्रह्म देश या दिशाओं से परे है, वह दिशाओं में कैसे प्रकट किया जा सकता है? पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर कैसे आये ? यह सब मन की ही चालाकी है, मन की सृष्टि है। आप थके हों तो तो एक एक फरलाङ्ग एक मील जैसा दिखेगा। स्फूत्ति रही तो एक मील भी एक फरलाङ्ग जैसा लगेगा। जीवन्मुक्त के लिए न देश है, न काल। वह देश-काल-रहित एक ब्रह्म को पहचानता है।

जो मन की सारी वृत्तियों का साक्षी है, उन वृत्तियों के उठने के पीछे जो है और जो उन वृत्तियों के अन्दर निहित है, वही ब्रह्म है।

ऊपर-नीचे, अन्दर-बाहर, ऊँचा-नीचा, बड़ा-छोटा, मोटा-पतला, गुण-अवगुण, भला-बुरा, सुख-दुःख, सुन्दर-असुन्दर, अब और तब, यहाँ और वहाँ ये सारे सापेक्ष शब्द हैं। यह सारी मानसिक सृष्टि ही हैं। ऊँचा नीचा भी हो सकता है, नीचा ऊँचा भी हो सकता है। यह छड़ी इससे मोटी छड़ी की तुलना में पतली है तो इससे पतली छड़ी की तुलना में मोटी है। अन्दर बाहर होता है तो बाहर भी अन्दर हो जाता है। एक समय जो अच्छा है, वही दूसरे समय बुरा हो जाता है। एक के लिए जो अच्छा है, वह दूसरे के लिए बुरा है। एक के लिए जो धर्म है, वह दूसरे के लिए अधर्म है। एक समय जो धर्म है वही दूसरे समय अधर्म होता है। परन्तु ब्रह्म न तो स्थूल है न सूक्ष्म, न अन्तः है न बाह्य, न भला है न बुरा, न सुख है न दुःख, न ऊँचा है न नीचा। वह आनन्द और ज्ञान का समन्वित सार है। वहाँ मन का खेल नहीं है। वहाँ देश-काल नहीं है; पूर्व-पश्चिम नहीं है; भूत-भविष्य नहीं है और न सोम-बुध ही है।

आप अपने प्रिय भाई बनर्जी को अपने सामने देखते हैं। जिसे आप बनर्जी नाम से पुकारते हैं, वह क्या है? बनर्जी न उसका हाथ है, न पाँव है, न शिर है, न छाती है। उसका हाथ कट जाय, पैर गल जाय, श्वेतकुष्ठ से चमड़े का रङ्ग बदल जाय, आँख की पुतली निकाल दी जाय, तब भी आपको उससे उतना ही प्यार होगा। फिर भी आप उसको बनर्जी ही कहेंगे। इससे सिद्ध होता है कि बनर्जी जो है, वह भौतिक शरीर नहीं है। भौतिक शरीर तो पञ्चभूतात्मक है। वह आद्यन्त-सहित है। प्रश्न उठ सकता है कि बनर्जी में जो विचार है, भावना है, अनुभूति है, वही भावना और मन ही बनर्जी है। पर विचार बदलते हैं, मन बदलता है। मन सूक्ष्म द्रव्यों से बना है। अपञ्चीकृत पञ्च तन्मात्राओं के सत्त्वगुणों से मन बनता है। मन अविद्या का परिणाम है। उसका भी आदि और अन्त है। बनर्जी का विचार और चरित्र बदल जाय, तब भी आप उसके व्यक्तित्व को पहचानते हैं; इसलिए बनर्जी उसका विचार नहीं है, मन भी नहीं है, इन्द्रियाँ भी नहीं है, शरीर भी नहीं है, वह वास्तव में उन इन्द्रियों को, मन को प्रकाश देने वाला है। वास्तविक बनर्जी तो अमर आत्मा है, जो बुद्धि, मन, देश, काल, कारण, कार्य आदि सबसे परे है। शरीर, मन, इन्द्रियाँ सब अविद्या की सृष्टि हैं और भ्रमात्मक उपाधियाँ हैं।

सरोवर के ऊपरी धरातल की तुलना चेतन मन से और उसके निम्न तल की तुलना अवचेतन मन (चित्त) से की जाती है। सरोवर के निम्न तल से ऊपरी धरातल पर आने वाली वस्तुओं की तुलना अवचेतन मन से चेतन मन में आने वाले विचारों से की जाती है। मन को क्षुब्ध बनाने वाली विक्षेप-शक्ति की तुलना सरोवर के जल को उथल-पुथल करने वाली वायु से की जाती है। जाग्रतावस्था में विक्षेप-शक्ति, जीव के सङ्कल्प-विकल्प और उसकी इन्द्रियाँ मन को क्षुब्ध करते रहते हैं। प्रगाढ़ निद्रा में मन पूर्ण विश्राम करता है।

नशे में चूर मधुमक्खी की तरह मन भटकता है। इन्द्रियों को विषयों से हटाओ । सारे आकर्षणों से छूट निकलो । प्राणों को नियन्त्रित करो। शरीर के द्वारों (छिद्रों) को बन्द करो। जैसे हाथी को पकड़ा जाता है, वैसे अब मन को भी पकड़ा जा सकता है। जिस प्रकार सैनिक बार-बार आक्रमण करने वाले शत्रु का तलवार से संहार कर देता है, उसी प्रकार बार-बार उठने वाले वैषयिक विचारों को मार दो। वृत्तियों के समाप्त होने पर मानसिक अन्धकार की स्थिति आती है। इस अन्धकार को विवेक के द्वारा हटानो। तब भास्वर प्रकाश मिलेगा। इस स्थिति को भी पार करो। उसके अनन्तर एक और शून्य प्रदेश को पार करना होगा। निद्रा अथवा मोह-नाश करना होगा । अन्त में निर्विकल्प समाधि में पहुँचोगे ।

वहाँ ये आँखें, यह वाणी, यह मन पहुँच नहीं सकते। यह सूर्य और चन्द्र वहाँ प्रकाश नहीं दे सकते। वहाँ यह अग्नि जल नहीं सकती, यह वायु बह नहीं सकती।

उस अनन्त, अखण्ड आत्मा को इन चर्म-चक्षुओं से देख नहीं सकते, हाथ से स्पर्श नहीं कर सकते। उसके न कान हैं न आँख, न मुह है न नाक, न हड्डी है न माँस, न वह कठोर है न कोमल । वह अनादि है, अनन्त है, देशकालातीत है, विश्वाधार है, समस्त वेदों की योनि है, देवाधिदेव है, परब्रह्म है, वह हमें शुद्ध बुद्धि और ऐक्यहष्टि प्रदान करे !

वासनाक्षय से मनोनाश होता है। मनोनाश से संस्कार भी नष्ट हो जाते हैं। तब जीव को जीवन्मुक्ति की दशा प्राप्त होती है।

ओंठ दो हैं; पर वाणी एक है। पैर दो हैं, पर गति एक है। आँखें दो हैं, पर उनका अधिष्ठातृ देवता एक ही है। पदार्थ दो प्रकार के होते हैं- स्थूल और सूक्ष्म; पर जीवात्मा एक है। प्रकृति दो प्रकार की है परा और अपरा; पर परब्रह्म एक है। मन दो प्रकार का होता है- शुद्ध मन और अशुद्ध मन; पर आत्मा एक है। पुरुष दो प्रकार के होते हैं-क्षर और अक्षर, पर पुरुषोत्तम एक है।

प्रगाढ़ निद्रा में आपका अनुभव क्या है? आप अकेले हैं। वहाँ दूसरा कुछ नहीं है। सम्भोग का क्या अनुभव है ? दो एक हो गये हैं। घनिष्ठ मित्रों का हृदय, मन और आत्मा एक हो जाता है, यद्यपि शरीर दो दिखते हैं। एक हो वास्तविक तथ्य है। अविद्या या माया के जादू के कारण एक ही अनेक दिखता है। रस्सी में सर्प की भाँति अनेकता भ्रान्ति ही है।

दृश्य और द्रष्टा का जो भी कुछ अनुभव है, वह सारी केवल मानसिक कल्पना है। जो केवल कल्पना की वस्तु है, वह वास्तविक नहीं हो सकती। विषय और विषयी-यह जो द्वैतभावना है, यह मन की सृष्टि है और बाह्य वृत्ति है।

जीव पर अज्ञान का परदा पड़ा है। इसी आवरण के कारण मिथ्या द्वैत का अनुभव होता है और मनुष्य अपने को परब्रह्म से भिन्न समझता है। ब्रह्म से एकता प्राप्त करने के लिए इस आवरण को दूर करना होगा। अविद्याग्रन्थि को आत्मज्ञान-रूपी शस्त्र से काट दो। अखण्ड आनन्द के राज्य की ओर बढ़ो और इस वेदान्त-गीत की गर्जना करते जाओ- "ॐ अहं ब्रह्मास्मि, शिवोऽहम्, सोऽहम्, सच्चिदानन्दस्वरूपोऽहम् ।"

ब्रह्म के प्रति भक्ति का नाम ब्रह्मनिष्ठा है। इसका अर्थ है ब्रह्म के साथ तादात्म्य स्थापित करना। बाहरी सारी प्रवृत्तियों को हटा कर ब्रह्म के प्रति आसक्त होना और सब छोड़ कर एक-मात्र ब्रह्म का ही विचार करना ब्रह्मनिष्ठा है।

ज्ञान क्या है ? अभेद-दर्शन ही ज्ञान है। उस परब्रह्म के साथ जीवात्मा की एकता का भान ही ज्ञान है। ध्यान क्या है ? "ध्यानं निर्विषयं मनः" ध्यान मन की वह अवस्था है, जिसमें सभी प्रकार के वैषयिक विचार शून्य हो जाते हैं।

एकमात्र ब्रह्म ही जीवन्त सत्य है। वह तुम्हारा अन्तरात्मा ही है। वह भूत, भविष्य और वर्त्तमान तीनों कालों में है। वह स्वयंप्रकाश है, आत्मस्थित है। वह सच्चिदानन्दस्वरूप है। वह विश्व का आधार है। वह अमर है, विभु है, अखण्ड है, शाश्वत है, अजन्मा है, अपरिवर्त्तनीय है, अनन्त है, देश-कालापरिच्छित है। अपना हृदय शुद्ध करो। ध्यान द्वारा ब्रह्म का साक्षात्कार करो और अमरता, मुक्ति और आनन्द भोगो ।

ज्ञाता को आप कैसे जान सकते हो ? ज्ञाता हमेशा साक्षी बना रहता है। आप तो बाहरी वस्तुओं को ही देख सकते हो। प्रगाढ़ ध्यान के द्वारा, अतीन्द्रिय ज्ञान द्वारा उस ज्ञाता का, आत्मा का अनुभव कर सकते हो।

ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त करने का अर्थ है उससे एकरूप होना । ब्रह्मज्ञान अर्थात् ब्रह्मरूपता। उसको जानना ही शाश्वत जीवन है। अतः ध्यान और विचार से उसे जानो ।

सतत साधना के बिना अमर आत्मा की प्राप्ति असम्भव है, इसलिए अमरत्व, और मोक्ष की प्राप्ति करनी हो तो दीर्घकाल तक आत्मविचार करना होगा।

नमक के पहाड़ का कोई भी भाग चखो तो नमक का पूरा स्वाद मिलेगा, उसी प्रकार सच्चिद्रानन्दरूप पर्वत का कोई भी खण्ड सतत. विचार और शुद्ध चित्त के द्वारा चखो तो ब्रह्मानन्द का ही स्वाद पाओगे ।

ध्यानावस्था में अपने अन्दर प्रदीप्त उस कात्तिकी दीप को पहचानो जो भव्य है। इससे आप शान्ति पानोगे । स्वयं वह आध्यात्मिक ज्योति बन जाओ। उस तेजस्वी आत्मा से एक-रूपता अनुभव करो। आप सूर्यों के सूर्य हो, ज्योतियों की, ज्योति हो। आप सारे विश्व का प्रकाश हो। इसका अनुभव करो।

दिल्ली में रहते हुए भी आप कुस्तुनतुनिया, कलकत्ता, बम्बई, लन्दन, बलिन आदि कहीं पर गाये जाने वाले गीत को रेडियो द्वारा सुन सकते हो। यह है प्रसारण। भौतिक स्तर में रेडियो की लहरों में एकता है। इसी प्रकार वेदान्तिक निदि-ध्यासन से या बहंग्रह उपासना से उस आत्मा की एकता का भी अनुभव किया जा सकता है।

एक बार शिष्य बाष्कलि ने अपने गुरु जी के पास जा कर पूछा कि 'उपनिषदुक्त वह शाश्वत असीम ब्रहम कहाँ है ?' गुरु जी ने कुछ नहीं कहा। शिष्य ने दोबारा प्रश्न किया। गुरु मौन रहे। शिष्य ने बार-बार पूछा; पर गुरु जी ने मुंह खोला तक नहीं। वे शान्त रहे। अन्त में गुरु ने कहा, "मैं तुम्हारे प्रश्न का उत्तर प्रत्येक बार देता रहा; पर तुम समझ नहीं पाये। मैं क्या करू ? वह ब्रहम, वह अव्यय शान्त है।"

यदि उस सच्चिदानन्द-रूप ब्रहम का, शुद्ध सर्वव्यापी आत्मा का एक पलभर भी स्मरण और मनन करें तो उससे प्रयागस्थित गङ्गा, यमुना और सरस्वती के त्रिवेणी सङ्गमः में हजार बार स्नान करने से अधिक पुण्य मिलेगा। यही सच्चा मानसिक्क़ स्नात है। इसः ज्ञान-स्नान की तुलना में भौतिक स्नान का कोई मूल्य नहीं है। उन्नततर आध्यात्मिक राज्य में प्रवेश करने का सर्वदा प्रयल करना चाहिए।

मुनि सदा मौन से ही उपदेश देते हैं। मौन बहुत प्रभावशाली व्याख्यान है।. मौन शक्तिशाली भाषा है। वह हृदय की भाषा है। भगवान् दक्षिणामूत्ति ने सनक, सनन्दन, सनातत और सनत्कुमारों को मौन द्वारा ही ब्रहमविद्या का उपदेश दिया।

एकान्त स्थान अद्वितीय ब्रहम ही है। वहाँ न शब्द है, न वर्ण है.। यहाँ. की कोई बाधा. वहाँ नहीं है। साधना. के प्रारम्भ में एकमात्र ब्रहम ही आपका साथी है। प्रगाढ़ ध्यान में जब आप वह (ब्रहम) बनोगे तब केवली बनोगे (शिवः केवलोऽहम्)। कठोर आत्मानुशासन-और नियमित निदिध्यासन उस शाश्वत तत्त्व पर पूर्णतया चित्तः स्थिर करने में सहायक होते हैं।"

बुलबुला फूट कर सागर में लीन हो जाता है। यह शरीर जब फटता है और जब मन गल जाता है, तब जीव उस ब्रहम से एक हो जाता है। निराकार ध्यान में निम्नङ्कित स्वरूप सहायक होगा :-

"मैं सच्चिदानन्द सागर है, ॐॐॐ। मैं ज्योतिसागर है, ॐॐॐ उपयुक्त उदाहरणों को भी स्मरण करना चाहिए ।

वेदान्त के विद्यार्थी जब ध्यान के लिए आसन पर बैठते हैं, तब उन्हें ब्रहमविद्या के आचार्यों का ब्रहमा, वसिष्ठ, शक्ति, पराशर, व्यास, शुक, शङ्कर, सुरेश्वराचार्य, पद्मपाद, त्रोटक, दत्तात्रेय, दक्षिणामूत्ति, श्रीकृष्ण आंदि का स्मरण और मनन करना चाहिए । इससे पाप और बाधाओं का परिहार होता है। यदि वे अपना पाठ आरम्भ करने से पूर्व उन्हें स्मरण करेंगे तो उपनिषद्, ब्रहमसूत्र और अन्यान्य वेदान्तशास्त्र-ग्रन्थों का अर्थ सुगमता से समझने की योग्यता प्राप्त होगी।

निर्गुण ध्यान के लिए सत्, चित्, आनन्द, ज्योति- इनमें से कोई भी शब्दकल्पना चुन ले सकते हैं। जब ब्रह्मानुभव प्राप्त होगा, तब शब्दकल्पना अपने-आप समाप्त हो जायगी। निर्गुण ध्यान के साधकों के लिए यह शब्दकल्पना अत्यन्त सहायक होगी।

इन्द्रिय, मन, बुद्धि, विषय तथा पञ्चभूतों को विलय करने पर जो शेष रहता है, वह है चिन्मात्र या चैतन्य। यह भी चिदानन्द ही है। एक यही चिदानन्द नित्य है। यह सत् है। इस शुद्ध चैतन्य का ध्यान करके मुक्त होओ।

"नाशरहित तू उसको जान कि जिससे यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है; क्योंकि इस अविनाशी का विनाश करने को कोई भी समर्थ नहीं है" (गीता अ० २-१७) । अविनाशी का अर्थ है जिसे नष्ट नहीं किया जा सकता हो, वह। आत्मा अविनाशी है। यह श्लोक आत्मा की अमरता का प्रतिपादक है। इस श्लोकार्थ का सतत विचार करने से निश्चय ही आत्मसाक्षात्कार होगा। इस श्लोकार्थ का ध्यान ही आत्मचिन्तन है। अविनाशी शब्द का ध्यान प्रचुर साहस भरता और इच्छाशक्ति बढ़ाता है। इस शब्द का निरन्तर मानसिक जप करते रहिए। जब भी भय आक्रान्त करे, तब दोहाइए : 'मैं अविनाशी आत्मा है ॐ ॐ ॐ ।

सच्चिदानन्द परब्रहम में न सूर्योदय है न सूर्यास्त । वहाँ न दिन है न रात्रि। वहाँ न अर्द्धत हैन द्वत। वहाँ न अस्तित्व है न नास्तित्व। वहाँ सारी वाणी शान्त हो जाती है. विषय और विषयी एक हो जाते हैं। वहाँ न साक्षी है न साक्ष्य है। यहाँ जो सोऽहं (मैं वह है) ज्ञान है, यह भी वहाँ समाप्त हो जाता है। जब द्रष्टा और दृश्य ही नहीं रहते, तब कौन रहता है और कौन कह सकता है कि क्या है और क्या नहीं है ?

उस आत्मा के अन्दर इस सुन्दर जीवन के अमर माधुर्य का आस्वादन करो। आत्मा में जिओ और भव्य अमरता प्राप्त करो । ध्यान करो और शाश्वत जीवन की गहराई में दिव्य महिमा के उन्नत शिखरों को प्राप्त करो और अन्ततः परमात्मा के परम योग की महिमा को प्राप्त होओ। अब आपका श्रान्तदायी दीर्घ प्रवास समाप्त होगा। आप अपनी मञ्जिल पर, शाश्वत शान्ति के निजी घर में, परम धाम में प्रवेश करोगे ।

वेदान्त का विद्यार्थी ध्यानावस्था में शब्द, प्रकाश और दृश्य की उपेक्षा करता है। वह उपनिषदुक्त मन्त्र का, बाहरी नाम रूपविवर्जित सारतत्त्व का ध्यान करता है। "वहाँ सूर्य प्रकाशित नहीं होता, चन्द्रमा और तारे भी नहीं चमकते और न यह विद्युत् ही चमकती है; फिर इस अग्नि की तो बात ही क्या है ? उसके प्रकाशमान् होते हुए ही सब-कुछ प्रकाशित होता है और उसके प्रकाश से ही सब-कुछ भासता है।"

वह ऐसा भी ध्यान करता है- "वहाँ वायु नहीं बहती है, अग्नि नहीं जलती है। न वहाँ शब्द है न स्पर्श। न गन्ध है न वर्ण, न स्वाद है। उस सर्वसार में न मन है न प्राण ही है।"

"अशब्द, अस्पर्श, अरूप, अगन्ध,

अप्राण, अमन, अतीन्द्रिय, अदृश्य,

चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ।

मैं आनन्दरूप शिव है, आनन्दरूप शिव है।"

जिसने यह तुरीयावस्था प्राप्त कर ली है, वही सुखी है। जो अपने ही सच्चिदानन्दस्वरूप में लीन रहता है, वह पुण्यशाली है। जिसने जीवन का चरम फल पा लिया है, वही शान्त है। जिसने ऋषि-मुनियों के अमर घाम ब्रह्मपद को प्राप्त कर लिया है, वही सुखी है।

ज्ञानमार्ग की तीन अवस्थाएँ हैं (१) साधनावस्था, (२)अल्पावस्था और (३) सहजावस्था, इसमें वह ब्रह्मस्वरूपात्मक या सच्चिदानन्दरूपी आत्मस्वरूप में दृढ़ रूप से स्थिर हो जाता है। अल्पावस्था में साधना को छोड़ देना नहीं चाहिए। सहजा-वस्था में पहुँचने तक उसे चालू रखना चाहिए।

अखण्ड ब्रह्मानुभव पाने का प्रयत्न करना चाहिए। ऊँचा चढ़ो। उस स्थिति में जितनी देर तक रह सको, रहो। वहीं स्थिर रहने का प्रयत्न करो। सदा सहजावस्था में रहो। यही आपका ध्येय होना चाहिए। अभी से प्रयत्न आरम्भ करना चाहिए।

शरीर को भूल जाओ। विश्व को भूल जाओ। सारे मित्र और सगे-सम्बन्धियों को भूल जाओ। अपने अन्तरात्मा में स्थित उस शाश्वत, अपरिवत्तंनीय, स्वयंप्रकाशी तत्त्व का ध्यान करो। उसी में स्थिर रहो। उसी में लीन होओ। आप अब जीवन्मुक्त हो, भागवत हो।

ब्रह्म इन्द्रियों की पहुँच से परे है; परन्तु साधक 'अहं ब्रह्मास्मि', 'तत्त्वमस्यादि' उपनिषदों के महावाक्यों के ध्यान से ब्रह्माकार-वृत्ति प्राप्त करके तद्वारा ब्रह्म का प्रत्यक्ष साक्षा-त्कार पा सकते हैं।

जीव पर जो अज्ञान का आवरण पड़ा है और इस सापेक्ष संसार के जो दुःख उसे भोगने पड़ते हैं, वे सब जीवात्मा और परमात्मा की एकता की अनुभूति से मिट जाते हैं। 'तत्त्वमसि' -इस महावाक्य के निष्ठापूर्वक ध्यान करने से यह एकत्व सिद्ध होता है।

जिस तरह माँ रोते हुए बच्चे को शान्त करने के लिए उसके सामने केला, बिस्कुट या मिठाई रख देती है, उसी प्रकार तापत्रयं-पीड़ित सांसारिक मनुष्य के दुःख को दूर करने के लिए आचार्यों ने उपनिषदों के महावाक्यरूपी अमूल्य और पौष्टिक आहार प्रस्तुत कर दिये हैं जो कि जीवात्मा और परमात्मा की एकता घोषित करते हैं। वे कहते हैं, "प्यारे बच्चो, अब और न रोना । तुम साक्षात् सच्चिदानन्द ब्रह्म हो। इस नश्वर शरीर का मोह और लगाव छोड़ो। 'तत्त्वमसि ।' उसका अनुभव करो और आनन्द भोगो ।"

तत्त्वमसि का वास्तविक अर्थ समझ लो। इस महावाक्य में जीवात्मा और परमात्मा की एकता दरसायी है। यही मोक्ष है।

यह अनुभव करो कि 'मैं ब्रह्म है।' अपनी आत्मा को उस शुद्ध अद्वत परमात्मा में लीन करो, जीवन का परम आनन्द प्राप्त करो। तब आपको न अपने शरीर का भान रहेगा न शारीरिक जीवन का । अब इस सारे संसार को परब्रह्म से भिन्न समझते हो ।

हे सौम्य, गाओ 'ॐ ॐ ॐ शिवोऽहं, शिवोऽहं, शिवोऽहं ।' साहसी बनो। सदा प्रसन्न रहो। इस माँसपिण्ड से बाहर निकलो। आप यह नश्वर शरीर नहीं हो। आप अमर आत्मा हो, सच्चिदानन्द ब्रह्म हो, लिङ्गविहीन आत्मा हो। आप राजाओं के राजा हो, सम्राटों के सम्राट् हो। उपनिषदुक्त ब्रह्म आपके हृदय में बसता है और आपके मन का वह साक्षी है। ऐसे ही व्यवहार करो। ऐसे ही अनुभव करो। अपने जन्मसिद्ध अधिकार के लिए कल से नहीं, आज, अभी और इसी क्षण से प्रयत्न शुरू करो। हे वीर निरञ्जन ! तत्त्वमसि ।

तत्त्वमसि तुम अमर हो, तुम ब्रह्म हो। इस पर दृढ़ रहो। भले ही दुःख आये, भले ही आप तोप के मुह के सामने खड़े किये गये हो; किन्तु यह न भूलो कि 'तत्त्वमसि'- तुम बह (ब्रह्म) हो।

द्वादश अध्याय: ज्ञानयोग

(१) ब्रह्म क्या है ?

ब्रह्म देश-काल-कारणातीत परमात्मा है। वह असीम है, शान्त है तथा सभी शरीरों में समान रूप से प्रतिभासित होता है। वह कोई निर्दिष्ट पदार्थ नहीं हो सकता। वह चैतन्य है। वह वस्तु है। वह गुप्त निधि है। वह मणियों का मणि है, रत्नों का रत्न है। वह अविनाशी अनन्त परम निधि है जो न चुराया जा सकता है, न लूटा जा सकता है। वह चिन्तामणियों का चिन्तामणि है जो मनुष्य को सभी वाञ्छित पदार्थ देता है।

जो स्वयं सबको देखता है, जिसे दूसरे नहीं देख पाते; जो बुद्धि को प्रकाश देता है, परन्तु जिसे कोई प्रकाश नहीं दे सकता, वह ब्रह्म है, वह आत्मा है।

ब्रह्म स्वयं-प्रकाश है, शुद्ध सत्ता है, विश्वाधार है, चैतन्यरूप है, परमानन्दरूप है और अपरिवर्त्तनशील है।

वह परम सत्ता ही एक सत्ता है। वह है परमात्मा। वह है परब्रह्म । वह अविनाशी है, अजन्मा है, अजर है, अमर है। वह सनातन है। वह एक है। वह प्रज्ञानधन तथा आनन्दघन है।

ब्रह्म सत्-चित्-आनन्द का महान् सागर है। उसके चारों ओर मन, प्राण, आकाश और तन्मात्राओं के सागर हैं।

यह अश्रुत श्रोता, अहष्ट द्रष्टा, अचिन्त्य चिन्तक और अज्ञात ज्ञाता है। ब्रह्म अज, अजर, अमर और अभय रूप है। यह सारा विश्व जिसमें से निष्पन्न हुआ है, जिसमें स्थित है और जिसमें लीन होने वाला है, वह है ब्रह्म।

आत्मा नित्य है, निविकार है, प्रज्ञानघन, चिद्‌दन अथवा विज्ञानधन है, अक्षर है। आत्मा काल-देश-सीमा बिहीन है। वह ज्ञानमय है, शान्त और स्वयंज्योति है, ज्योतिर्मय है। वेदान्त के सभी साधक ब्रह्मानुभव प्राप्त करने के लिए इसी का ध्यान करते हैं। वह परम वस्तु कहलाता है। वह अमरत्व प्रदान करता है।

ब्रह्म में न पूर्व है न पश्चिम, न प्रकाशं है न अन्धकार, न सुख है न दुःख, न भूख है न प्यास, ने हर्ष है न शोक, न लाभहैन हानि ।

आत्मा निरवयव है, अतः वह निष्क्रिय है। निरवयव आत्मा में कत्तपिन का आरोप भला कैसे किया जा सकता है ? आत्मा का कोई शरीर नहीं है। वह अतनु है, निराकार है। फिर उसे जरा, मरण कहाँ से आयें? आत्मा अजर है, अमर है, अविनाशी है। आत्मा मन, शरीर आदि की तरह उत्पन्न नहीं है। नित्य चैतन्य ही उसको स्वभाव है। जीवात्मा और परमात्मा एक ही हैं।

आत्मा ज्ञानमात्र का द्रष्टा है, साक्षी है; क्योंकि वह असीम और स्वयंज्योति है। वह न तो स्वयं प्रकट होता है और न किसी के द्वारा प्रकट किया जा सकता है। उसे प्रत्यक्ष अनुभव से, अन्तर्ज्ञान से या अपरोक्षानुभूति से जाना जा सकता है।

सच्चिदानन्द के रूप में ही बुद्धि ब्रह्म को समझ सकती है।

यही कारण है कि उसमें ये गुण माने जाते हैं, किन्तु ब्रह्म वस्तुतः सच्चिदानन्द से भी भिन्न है। इसका यह अर्थ नहीं कि ब्रह्म अस्तित्वहीन या शून्य है, अभावात्मक विचार या आत्म-विषयक रहस्य है। नहीं, एकमात्र वही जीवन्त सत्य है। उसकी ही सत्ता है। वही सार वस्तु है।

मन सदैव आनन्द की खोज में भटकता फिरता है; क्योंकि वह आनन्द में से निष्पन्न हुआ है। हमें आम इसलिए पसन्द है कि हमें उससे सुख मिलता है। प्रत्येक वस्तु से आत्मा सर्वाधिक प्रिय है। यह जो आत्मप्रियता या आत्मप्र म है, यह इस बात का द्योतक है कि आनत्त्द आत्मा का स्वभाव है।

वह अद्वितीय परम सत्ता जो प्रत्येक के हृदय में अन्तर्यामी है, सूत्रधार है, साक्षी है, अन्तरात्मा है, जिसका आदि-मध्य-अन्त नहीं है, जो विश्व, वेद, मन, बुद्धि, शरीर, इन्द्रिय, प्राण आदि का मूलस्रोत है, जो सर्वव्यापी है, निविकार है, एकरस है; भूत, भविष्य, वर्त्तमान में समान रूप से है, जो स्वयंभू, स्वतन्त्र और स्वयं-ज्योति है, वही भगवान् है, आत्मा है, बह्म है, पुरुष है, चैतन्य है, पुरुषोत्तम है।

आत्मा ज्ञेय मात्र से भिन्न है। अज्ञेय से भी वह परे है। वह अगम्य है। इसका यह अभिप्राय नहीं कि वह कुछ है ही नहीं, शून्य है। वह चिधन है। चैतन्य एक पत्थर, हीरा या स्वर्ण से भी अधिक ठोस है। वही एक वास्तविक जीवित सत्ता है, सबका एकमात्र आधार है।

आत्मा मनुष्य के अन्दर का अमर तत्त्व है। आत्मा ही विचारों, इच्छाओं तथा तर्कों का उद्गम स्थान है। आत्मा आध्यात्मिक तत्त्व है; क्योंकि शरीर और मन से वह परे है। यह अवश्य ही अमर है, क्योंकि वह देश-काल-कारणातीत है; अनादि, अनन्त, अकारण और असीम है।

आत्मा या ब्रह्म अक्षुण्ण, सनातन और अविनाशी तत्त्व है जो सर्वजगदाधार है, जो जाग्रति, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्थाओं का मौन साक्षी है। इस आत्मा को जानने वाला अमर हो जाता है, अमृतानन्द प्राप्त कर लेता है।

ब्रह्म को आत्मा और पुरुष भी कहते हैं। पुरुष इसलिए कहते हैं कि वह इस शरीर में है, वह अपने-आपमें पूर्ण है। जो-कुछ हम देखते हैं, सबमें वही है। आत्मा ही चरम सत्य है। वही चरम दार्शनिक सिद्धान्त है। वह सर्वाधार है। वही एक जीवन्त सत्य है। वह उपनिषदुक्त ब्रह्म है, जग का सहारा है, इस शरीर और प्राण का आश्रय है। वह अव्यक्त है, शुद्ध है।

ब्रह्म स्वयंज्योति है। ब्रह्म किसी अन्य से प्रकाशित नहीं किया जा सकता। ब्रह्म सबको प्रकाशित करता है। स्वयंज्योतित्व एक ऐसा मूलभूत सिद्धान्त है जिसके आधार पर वेदान्त का सारा महल खड़ा है। आत्मा से ही सूर्य, चन्द्र, तारा, बिजली, अग्नि, बुद्धि, इन्द्रिय-सबको प्रकाश मिलता है। आत्मा के प्रकाश से ही सारे प्रकाशित होते हैं; किन्तु ये आत्मा को प्रकाशित नहीं कर सकते ।

एकमात्र आत्मा की ही सत्ता है। जिस प्रकार हम रस्सी को साँप के रूप में देखते हैं, उसी प्रकार वही आत्मा विभिन्न पदार्थों के रूप में दिखता है। आत्मा दृश्य पदार्थों को रूप प्रदान करता है। वह अपने-आप प्रकाशित होता है। वह स्वयंज्योति है। स्वयंज्योति आत्मा से प्रकाश ले कर ही शेष सारे पदार्थ प्रकाशित होते हैं।

मनुष्य का आत्मा ब्रह्म है। वह सारे विश्व का आत्मा है। ब्रह्म ही एक असीम है। असीम दो पदार्थ नहीं हो सकते। यदि दो असीम पदार्थ होंगे तो वे आपस में झगड़ेंगे। एक कुछ पैदा क़रेगा तो दूसरा कुछ मिटाता रहेगा। अतः असीम तो एक ही होना चाहिए। आत्मा ही एकमात्र असीम ब्रह्म है। शेष अन्य सब उसी की अभिव्यक्ति हैं।

ब्रह्म अज, अविनाशी, निविकार, अतनु और निर्भय है। उसका कोई नाम-रूप नहीं है। उसमें सङ्कोच-विकास नहीं है, सुन्दर-असुन्दर नहीं है। वस्तुतः निर्भयता ही ब्रह्म है। जो ब्रह्म को जानता है, वह अमर और अभय हो जाता है।

अन्तर में झाँको। वहीं आनन्द का स्रोत है। वहीं सच्चा जीवन है। सच्चा 'मैं' क्या है? वही आत्मा है। वह ब्रह्म है, शुद्ध चैतन्य है।

(२) ब्रह्म की प्रकृति

अनन्त, निराकार, निर्गुण, निविशेष, अदृष्ट आदि सारे ब्रह्म के अभावात्मक गुण हैं। सच्चिदानन्द, सत्य, शान्त, ज्ञान आदि उसके भावात्मक गुण हैं।

ईशावास्योपनिषद् में आत्मा के गुणों का यों वर्णन किया गया है- "आत्मा सर्वव्यापी, तेजस्वी, अकाय, अव्रण, स्नायु-रहित, शुद्ध, अपापहत, सर्वद्रष्टा, सर्वज्ञ, सर्वोत्कृष्ट और स्वयंभू है। उसी मे नित्यसिद्ध प्रजापतियों के लिए यथायोग्य रीति से कत्तव्यों का विभाग किया है" (मन्त्र : ८)।

साकार पदार्थों के ही उत्पत्ति और नाश हैं। जो ब्रह्म या चैतन्य निराकार है, उसकी भी उत्पत्ति और नाश मानना मूर्खता है। वह निराकार है, शुद्ध चैतन्य है।

किसी भी लड़के से निम्नाङ्कित प्रश्न पूछिए। वह आत्मा के अविनाशित्व का प्रतिपादक सही उत्तर देगा। "क्यों भाई, तुम्हारा नाम क्या है?" "मेरा नाम राम है।" "यह नाम तुम्हारा है या तुम्हारे शरीर का?" वह कहेगा-"यह मेरे शरीर का नाम है।" "यह टोपी किसकी है?" राम कहेगा- "मेरी।" "यदि यह टोपी नष्ट हो जाय तो क्या तुम भी

विनाश को प्राप्त होगे ?" राम- "नहीं।" "शरीर का अन्त हो जाय तो क्या तुम्हारा भी अन्त हो जायगा?" राम "नहीं, मैं तो अमर आत्मा है।"

"सत्यं ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म" (तैत्तिरीय उ० २-१) । वेदान्ती लोग प्रायः इसका उद्धरण देते हैं।

इस धरती पर उस असीम, अव्यक्त ब्रह्म के चार प्रतीक हैं-हिमालय, सागर, विशाल आकाश और सूर्य ।

श्रुतियों ने ब्रह्म की प्रकृति के विषय में जोरों से कहा है-"आकाशवत् सर्वंगत नित्य।" आकाश की तरह वह नित्य 'और विभु है। आकाश और सागर ये दोनों चूंकि असीम हैं, इसलिए एक प्रकार से ब्रह्म की तुलना इनसे कर सकते हैं। आकाश सूक्ष्म है, विभु है और निराधार है। ब्रह्म भी सूक्ष्म है, विभु है और निरालम्ब है। यह है आकाश और ब्रह्म का साम्य ।

मुस्कराना, हँसना, गाना, नाचना ये सारे आनन्द के लक्षण हैं। उनसे सङ्केत मिलता है कि मनुष्य बस्तुतः आनन्दरूप है। इससे मालूम होता है कि आतन्द आत्मा का गुण है। अर्थात् यह सिद्ध होता है कि ब्रह्म आनन्दघन है।

ब्रह्म चिङ्घन है, प्रज्ञानघन है। उसमें और कोई विशेषता नहीं है। उसमें कोई भी भेद नहीं है। वृहदारण्यकोपनिषद् में कहा है- "नमक में कोई अन्दर-बाहर का भेद नहीं है। सर्वत्र एक ही स्वाद है। इसी प्रकार आत्मा का भी कोई अन्दर-बाहर नहीं है; वह विज्ञानघन है" (४-१३)। जैसे नमक की डली का सर्वत्र एक ही स्वाद होता है, उसी तरह ब्रह्म अन्तर्वाहय सर्वत्र शुद्ध ज्ञानमय है। यह अन्दर और बाहर का भेद मानसिक है। जब मन मौन में लीन होता है, तब अन्दर-बाहर का भेद भी मिंट जाता है। योगी तब असीम और एक ही शुद्ध चेतन-पुञ्ज का अनुभव करता है।

पानी का धरातल विस्तृत होता है तो उसमें प्रतिबिंम्वित सूर्य-प्रकाश भी विस्तृत होता है। पानी का धरातल सङ्कीर्ण होता है तो सूर्य-प्रकाश भी संकुचित होता है। पानी हिलता है तो वह भी हिलता है। पानी दो भागों में बँट जाय तो वह भी. दो भागों में बँट जाता है। पानी के हर प्रकार के परिवर्तन के अनुसार वह भी परिर्वात्तत होता जाता है जबकि सूर्य एक और स्थिर है। इसी प्रकार ब्रह्म स्वयं एक समान और स्थिर होते हुए भी जिन उपाधियों में, शरीर मन आदि में, जो गुण-धर्म होते हैं, उनके अनुसार स्वयं भी प्रतिभासित होता है। यद्यपि ये सब गुण-धर्म मिथ्या हैं, फिर भी ऐसा प्रतीत होता है मानो वे उसके अपने ही गुण-धर्म हों।

ब्रह्म में द्वैत नहीं है। उसका अन्दर, बाहर कुछ नहीं है। वह एक है, समान है, अविभक्त है, अमर तत्त्व है। वह जाग्रति, स्वप्न और सुषुप्तिरूप अवस्थात्रय-विमुक्त है। न वह गोल है, न नुकीला। वह न नाटा है न लम्बा न मोटा है न पतला। वह अणु से अणुतर है। सूक्ष्मतम से भी सूक्ष्म है। अच्छे-बुरे से परे है, शान्त है, नित्य और निविकार है, गति और जड़ता से मुक्त है, देशातीत है, निष्कलङ्क और परिपूर्ण है। सत् और असत्-से भी परे है।

ब्रह्म अपनी शान्ति से पूर्ण है। वह मृत्यु-रहित है। मृत्यु का अर्थ है शरीर से प्राणवायु का विघटन। यह जीव के लिए हो सम्भव है; क्योंकि वह प्राणवायु-सहित है। ब्रह्म या आत्मस्थिति में जबकि प्राणवायु से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है, तब मृत्यु की सम्भावना कैसे हो ? श्रुति कहती है- "ब्रह्म प्राणविहीन है, चित्त-हीन है, शुद्ध है।"

आत्मा का कर्मों से कोई सम्बन्ध नहीं है। वह कोई अङ्ग या कर्म नहीं है। आत्मा कोई कार्य या परिणाम नहीं है। वह कोई प्राप्तव्य या शोधनीय पदार्थ नहीं है। वह कर्त्ता या भोक्ता नहीं है। वह सर्वदा मौन साक्षी है।

आँखें उसे देख नहीं सकतीं। मन उस तक पहुँच नहीं सकता । प्रापञ्चिक स्थूल बुद्धि उसे ग्रहण नहीं कर सकती। वाणी उसका वर्णन नहीं कर सकती। वाणी, चूंकि कुछ भी कह नहीं सकती, कहने योग्य शब्द उसके पास नहीं हैं, इसलिए मन के साथ ही लौट आती है। ऋषि कहते हैं- "उसके सम्बन्ध में कुछ भी कहने में हम भी असमर्थ हैं। हम चकित रह गये हैं। उसकी महिमा अनिर्वचनीय है। उसके बारे में कुछ कहने का अर्थ है उसका निषेध करना।" सीमित मन असीम को कैसे ग्रहण कर सकता है ? परन्तु जो साधक साधन-चतुष्टय से सम्पन्न है, जो निरन्तर घ्यानस्थित है, उसकी प्रज्ञा तीक्ष्ण, सूक्ष्म और शुद्ध है, वह उसे प्रत्यक्ष अनुभव कर सकता है।

(३) वेदान्त-ज्ञान

असीमता आनन्द है, यदि हम यह कहें कि असीमता ही आनन्द है तो कोई अत्युक्ति नहीं। असीमता ही ब्रह्म, आत्मा या परमात्मा है। असीमता ही परब्रह्म है। असीम ही भूमा है अर्थात् देश-काल-कारणातीत है। असीमता ही अमरता है। जहाँ और कुछ देखा नहीं जाता है, सुना नहीं जाता है, समझा नहीं जाता है वह असीम है। असीम का अपना महत्त्व है। असीमता ही चरम शान्ति है, निर्भयता है। वह शुद्ध सत्ता है, शुद्ध ज्ञान है, शुद्ध आनन्द है। असीम परिपूर्ण है, अविभक्त है, स्वयम्भू है, आत्मस्थित है, स्वयंज्योति है। असीम ही एकमात्र सत् है। तीनों कालों में एक असीम ही रहता है। उसकी जिज्ञासा करनी चाहिए, उसे जानना चाहिए और उसका साक्षात्कार करना चाहिए ।

जो-कुछ दिखता है, वह भावपदार्थ है। पदार्थ का अर्थ है वस्तु और भाव का अर्थ है अस्तित्व वाला। जब हम कहते हैं- 'बहुत बड़ा', 'बहुत मधुर' आदि, तब इस 'बहुत' का अर्थ है 'अभाव पदार्थ।' वह मन से भी कल्पना नहीं किया जा सकता। ब्रह्म भी अभाव पदार्थों की कोटि में है; क्योंकि वह असीम है।

चूंकि ब्रह्म का वर्णन करने योग्य भाषा नहीं है, इसलिए ऋषिगण विभिन्न प्रशान्त स्थितियों के साथ, जैसे आकाश आदि के साथ, उसकी तुलना करते हैं। साधकों को समझाने की सुविधा के लिए सांसारिक पदार्थों का भी उदाहरण ले लेते हैं।

ब्रह्म सच्चिदानन्द है। ब्रह्म स्वयंज्योति है। ब्रह्म निर्विकार और अविनाशी है। ब्रह्म केवल यही नहीं है, वह इनसे कहीं ऊँचा है, बहुत भिन्न है। वह इन्द्रियातीत है। वेदान्ती उसे 'वस्तु' कहते हैं। ब्रह्म की परिभाषा या व्याख्या नहीं की जा सकती। उपयुक्त केवल अस्थाई व्याख्या है। चूंकि हमें विश्व में असत्, जड़ और दुःख का अनुभव होता है, अतः हम ब्रह्म में इनके 'विपरीत गुण सत्-चित्-आनन्द का आरोप करते हैं। वेदान्त में इसे अतद्व्यावृत्ति लक्षण कहते हैं।

श्रुतियाँ कहती है- "ब्रह्म निश्चय सामने है और पीछे है।" "यह सारा ब्रह्म जानने वाला अमरत्व प्राप्त करता है।" पार कर जाता है।" ही नीचे है, ऊपर है, ही है।" "ब्रह्म को "आत्मज्ञानी दुःख को

याज्ञवल्क्य और शाकल्य का एक संवाद है :-

"पूर्व दिशा में कौन देवता है ?"

"सूर्य ।"

"सूर्य कहाँ रहता है ?"

"आंबों में।"

"आंब कहाँ रहती हैं ?"

रूपों में।"

उसने कहा- "हृदय में।" चूंकि रूप हृदय द्वारा निर्मित है, अतः हृदय (परमात्मा) ही रूपों का निधान है।

बृहदारण्यकोपनिषद् (२-४-१३) में आया है-

"वह किससे, किसे देखे ?" इससे स्पष्ट दिखता है कि आत्मा दृष्टि का विषय नहीं है। वह सदा ज्ञाता है। वहाँ कर्ता, कर्म और करण कुछ भी नहीं है। केवल भौतिक जगत् में द्रष्टा, दृष्टि और दृश्य रूपी त्रिपुटी है। उस ज्ञाता को कौन जान सकता है ? . जिससे यह सब-कुछ जाना जाता है, 'उसे' कोई कैसे जाने ? दृष्टि के द्रष्टा को आप नहीं देख सकते। श्रवण के श्रोता को आप सुन नहीं सकते। स्पर्श का स्पर्श जो करता है, उसका आप 'स्पर्श नहीं कर सकते। ज्ञान के ज्ञाता को आप जान नहीं सकते।

वैशेषिक दर्शन के अनुसार पदार्थ छः प्रकार के हैं- द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय ।

अन्तःकरण सूक्ष्म तत्वों से अर्थात् तन्मात्राओं से निर्मित है। मन वायु-तन्मात्रा से बना है, इसलिए उसका स्वभाव चञ्चल है। बुद्धि पाँचों तन्मात्राओं से बनी है। चित्त जल-तन्मात्रा से बना है। अहङ्कार पृथ्वी-तन्मात्रा से बना है। हृदय आकाश-तन्मात्रा से बना है।

इन्द्र ने कई अज्ञानी संन्यासियों को मार डाला; किन्तु उनकी हत्या का उस पर कोई भी प्रभाव नहीं पड़ा। कर्मनाश करने की ज्ञानाग्नि उसके पास जो थी। वह जानता था कि वह अकर्त्ता, अभोक्ता और असङ्ग है। राजा जनक ने कई पण्डितों को, जब वे ब्रह्मज्ञान के सम्बन्ध में उसके प्रश्नों का समाधान नहीं कर सके, जेल भेज दिया था। इसका रत्तीभर भी प्रभाव उस पर नहीं पड़ा; क्योंकि वह ज्ञानी था। इसीलिए गीता कहती है: "जिस पुरुष में 'मैं कर्ता है' ऐसा भाव नहीं है, जिसकी बुद्धि विषयों में लिपायमान नहीं होती, वह पुरुष इन सब लोकों को मार कर भी वास्तव में न तो मारता है और न पाप से बंधता है" (गी०अ० १८-१७) । :

प्रत्येक का अपना-अपना एक संसार होता है। बन्दर या कुत्ते का भी अपना संसार है। बहरा, अन्धा, पागल, जङ्गली, शहरी, बच्चा, साधक, दुष्ट, चोर, राजा, कृषक सबका अपने-अपने ढङ्ग का संसार है।

'प्रयत्न या भाग्य', 'पुरुषार्थ या प्रारब्ध', 'स्वतन्त्र इच्छा या आवश्यकता', 'तकदीर या तदबीर'- ये पर्यायवाची शब्द हैं।

जिसको अज्ञानरूपी साँप काट गया हो, उसका विष ब्रह्मज्ञान-रूपी गरुड़मन्त्र से उतारा जा सकता है।

वास्तविक 'मैं' वह अनन्त आत्मा ही है। वास्तविक 'मैं' निर्विकार है, जबकि शरीर विकारी है। शरीर गन्दगी की खान है। तब यह शरीर ही आत्मा कैसे हो सकता है ?

एक अद्भुत कहानी है। एक बन्ध्या-पुत्र मरीचिका के जल में स्नान कर, आकाश-कुसुम धारण करके, हाथ में खरगोश के सींग से बना हुआ धनुष ले कर जाता है। यह कितना सत्य है ? यह संसार भी इस कहानी जितना ही सत्य है।

कोई काम सर्वथा अच्छा भी नहीं है और न सर्वथा बुरा ही। गीता कहती है- "सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाग्नि-रिवावृताः" - धुएँ से अग्नि के सदृश सब ही कर्म किसी-न-किसी दोष से आवृत हैं (गीता अ० १८-४८) ।

अहं दो प्रकार का है समष्टि अहं और व्यष्टि अहं । समष्टि अहं ईश्वर और व्यष्टि अहं जीवात्मा है। जीव में पहले अहं पैदा होता है। वह सोचने लगता है- 'मैं जीव है', तभी वह संसार और ईश्वर को देखने लगता है।

ज्यों ही आप यह अनुभव करने लगें कि मैं शरीर नहीं है, त्यों ही आप जड़ तत्वों से, मृत्यु से, कर्म-बन्धन से, वासना की शृङ्खलाओं से, ऐहिक जीवन की मृगतृष्णा से और तज्जन्य दुःख-कष्टों से मुक्त हो जाते हैं।

एक जलप्रपात को देखिए, पानी निरन्तर गिरता है। फोटो लीजिए तो पानी गिरता-सा दिखेगा; परन्तु चित्र के पानी में कोई गति नहीं है। प्रवाह या गति मानसिक कल्पना है। वह मन और आँखों की चालाकी है। गति सापेक्ष है। पदार्थ चलता--सा दिखता है। गति भ्रम है। चञ्चल पदार्थों के पीछे आत्मा अचञ्चल है। जबकि आत्मा सर्वत्र व्याप्त है, अनन्त है, तब वह कहाँ हिले ? बैठे-बैठे वह दूर-दूर तक जाता है। चूंकि वह विभु है, अतः वह सर्वत्र मौजूद है।

दश अज्ञानी व्यक्ति नंदी पार कर रहे थे। पार कर चुकने के बाद उन्हें संशय हुआ कि कहीं कोई डूब तो नहीं गया। अतः वे गिनने लगे। सबने बारी-बारी से गिना, पर प्रत्येक बार एक व्यक्ति कम हो जाता रहा। प्रत्येक बार ही गिनने वाला अपने को गिनना भूल जाता, इससे नौ ही संख्या आती। अन्त में उन्होंने सोचा कि एक आदमी डूब मरा। वे जोर-जोर से रोने लगे। इतने में वहाँ एक आदमी आया। इनको रोते हुए देख कर उनसे रोने का कारण पूछा। मालूम हुआ कि दशाँ आदमी मर गया। अब वह आदमी उठा और दशों को खड़ा करके गिन कर बता. दिया कि दशों के दशों जीवित हैं, कोइ मरा नहीं है। उसने समझाया कि जो व्यक्ति गिनता था, वह अपनी गिनती करना भूल जाता था, इसलिए नौ दिखते थे। वास्तव में कोई नहीं मरा । तदनन्तर वे सब-के-सब अत्यन्त प्रसन्न हुए ।

जिस प्रकार वे लोग अपने इतने सन्निकट होते हुए भी अपने को भूल जाते रहे और सामने खड़े हुए लोगों में ही उलझ कर रह जाते थे; इसी प्रकार जीव भी अज्ञान के कारण ब्रहम के साथ अपनी एकता को पहचान नहीं पाता है। वह स्वयं ब्रहम ही है, फिर भी तादात्म्य नहीं पाता। श्रुतियों और गुरुओं के समझाने पर वह समझ लेता है कि वह स्वयं ब्रहम है, सबका आत्मा है.।

(४) वेदान्त और दूसरे मत

सांख्य-दर्शन के अनुसार प्राण-तत्त्व कोई स्वतन्त्र 'तत्त्व नहीं है। सभी अङ्गों की सम्मिलित क्रिया ही प्राण है।

न्याय-दर्शन के अनुसार वाक्य के पाँच अवयव होते हैं-प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमन ।

वाद तीन प्रकार के हैं- (१) परिणामवाद- यह सांख्यों का वाद है. जैसे दूध दही में परिणत होता है। यही इनका सिद्धान्त है। (२) विवर्तवाद श्री शङ्कराचार्य का है, जैसे रस्सी में साँप का भ्रम होता है। (३) अजातवाद श्री गौड़पाद जी का है। पहला वाद निम्न कोटि का है, विवर्तवाद मध्यम है और अजातवाद उन्नत वाद है।

श्री कणाद ऋषि के वैशेषिक दर्शन के अनुसार विश्व में छः मूल पदार्थ हैं- द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय ।

सांख्यवादी प्राण को नहीं मानते हैं। उनके अनुसार चित्त भी अलग नहीं है। वेदान्त और सांख्य में यही अन्तर है। वेदान्त-दर्शन सांख्य-दर्शन का विस्तार ही है, उसी की पूत्ति है। सांख्य- दर्शन के अनुसार 'पुरुष' कई हैं जबकि वेदान्त में अखण्ड आत्मा एक ही है।

कुछ राष्ट्रों में प्रधान मन्त्री ही सर्वस्व है। वह कुछ भी कर सकता है। महाराजा केवल नाम मात्र को होता है। इसी प्रकार सांख्यों का 'पुरुष' नाम मात्र का प्रधान है। उसकी केवल उपस्थिति आवश्यक है। वस्तुतः प्रकृति ही सब-कुछ है। वही सारी सृष्टि रचने वाली है।

ब्रह्म के सत्-चित्-आनन्द-रूपी गुण से यह मालूम होता है कि ब्रह्म में असत्य, अविद्या और दुःख नहीं हैं। सत्-चित्-आनन्द के विशुद्ध धर्म ब्रह्म में उपलब्ध नहीं होंगे। इसी प्रकार 'चू कि ब्रह्म अनन्त और अमृत है, इसलिए उसका अन्त और मरण नहीं है। वेदान्त में इसे व्यावृत्ति कहते हैं।

निर्गुण ब्रह्म का दूसरा नाम 'सत्ता सामान्य' है। तुरीयातीत अवस्था उसे कहते हैं जिस अवस्था में जीव परब्रह्म में निमग्न हो कर तरूप ही हो जाता है।

ब्रह्म में परिणाम कैसे सम्भव है? ब्रह्म का अर्थ ही है बृहत्, अनन्त, असीम । दूध से दही बनता है, यह है परिणाम । सावयव पदार्थ ही परिणामी होते हैं। सावयव का अर्थ है अवयव-सहित, अङ्गयुक्त, जैसे मनुष्य का शरीर हाथ, पैर आदि अवयवों से युक्त है। ब्रह्म निरवयव है। इसलिए ब्रह्म में परिणाम नहीं हो सकता है। इस विषय को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए । तब बहुत सारी मानसिक अशान्ति, व्यग्रता और उलझनों से बचा जा सकता है।

श्री रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत में सविशेष ब्रह्म के जो कल्याण गुण माने गये हैं, वे श्री शङ्कराचार्य के निविशेष ब्रह्म के अनन्त गुणों के अंश मात्र हैं। निर्गुण का यह अर्थ नहीं कि शुद्ध ब्रह्म या परब्रह्म में गुणमात्र का बिलकुल अभाव ही है। उसका अभिप्राय यह है कि निर्गुण ब्रह्म गुणों का खजाना है। श्री रामानुजाचार्य के कुछ अनुयायी अज्ञानवशात् आलोचना कर देते हैं कि 'श्री शङ्कराचार्य का निर्गुण ब्रह्म पाषाण-खण्ड है, एक-दम शुष्क है। उस निर्गुण ब्रह्म में कोई रस नहीं है।' यह निरा अज्ञान ही है। श्री शङ्कराचार्य का निर्गुण ब्रह्म- 'रसो वै सः', 'आनन्दो वै सः' अर्थात् वह रस है, आनन्द है। वह सर्वज्ञ नहीं, सर्व ज्ञान है। वह सुन्दर नहीं, स्वयं सौन्दर्य है, वह सौन्दर्य-स्वरूप है, सार है। वह सब रसों की प्रतिमूत्ति है।

(५) तत्त्व

बाह्य जगत् में जो-कुछ नाम-रूप और दृश्य पदार्थ है वह सारा माया का कार्य है। माया अव्यक्त है, अव्याकृत है। वह भगवान् की अनिर्वचनीय शक्ति है। वह सत्त्व, रजस् और तमस् के समभाग का मिश्रण है। जीवों के कर्म-फल देने के लिए ईश्वर के मन में इच्छा पैदा हो कर जब इस गुणसाम्य में क्षोभउत्पन्न होता है तब महाकल्प के आरम्भ में सारी सृष्टि पैदा होती है।

ब्रह्मा ने सोचा - "संसार तो है, अब इसके रक्षकों की सृष्टि होनी चाहिए।" जल-तत्त्व से उसने पुरुष (हिरण्यगर्भ) को एकत्र किया और उसे रूप दिया। उसे घ्यानाग्नि' में तपाया (ऐक्षन्त)। इस प्रकार उष्ण होने पर उसका हृदय फूट पड़ा । हृदय से मन प्रकट हुआ और मन से मन का अधिष्ठातृ देवता चन्द्रमा उत्पन्न हुआ । हृदय मन का आश्रय-स्थान है। अतः हृदय के फूटने पर मन बाहर आया। समाधि में मन पुनः अपने मूल-स्थान में, हृदय में जाता है। सुषुप्ति में भी वह मन अपने और ब्रह्म के बीच एक आवरण ले कर उसी हृदय में विश्राम करता है (ऐतरेयोपनिषद् १-३-४) ।

बीज के अंकुर की तरह अव्यक्त (माया) से सर्वप्रथम महत् तत्त्व प्रकट हुआ । इससे अहङ्कार और फिर मन, इन्द्रियाँ, प्राण, तन्मात्राएँ, पाँच स्थूल तत्त्व उत्पन्न हुए। इन्हीं पाँच मूल भूतों से सारी विश्व-सृष्टि होती है।

गुण चौबीस हैं। वे हैं- रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, गुरुत्व, द्रवत्व, स्नेह, शब्द, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म और संस्कार ।

मन । द्रव्य नौ हैं। ये हैं- पाँच भूत, दिक्, काल, आत्मा और वासुदेव, सङ्घर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध ये चतुर्व्यूह बनाते हैं। ये क्रमशः परमात्मा, जीवात्मा, मन और अहङ्कार के समकक्ष हैं।

ब्रह्मा का एक दिन मनुष्यों के ४,३२,००,००,००० वर्षों के बराबर है। यही विश्व की आयु मानी गयी है।

प्रत्येक वस्तु अपने कारण में लीन हो जाती है। उसे प्रलय कहते हैं।

(६) ब्रह्मविद्या के विद्यार्थी

वाजश्रवा ने अपने विश्वजित् याग में अपनी सारी सम्पत्ति दान में दे डाली। उसके नचिकेता नाम का एक पुत्र था । वाज-श्रदा ने अपने पास जो बूढ़ी अनुपयोगी गायें थीं, उन्हें भी ऋत्विजों को दान में दे दिया। नचिकेता को अपने पिता का यह दानः पसन्द नहीं आया । उसने सोचा कि कहीं मेरे पिता याग का पूरा फल पाने से वञ्चित न रह जायें और सुखहीन लोकों को प्राप्त हों । इसलिए उसने अपने पिता से पूछा - "पिता जी, आप मुझे किसे दान में दे रहे हैं ?" यही प्रश्न उसने तीन बार पूछा । पिता क्रोध में आ कर बोल पड़े- "मैं तुझे मृत्यु को दे रहा है।" तब नचिकेता यमराज के घर जा पहुँचा। चूंकि यमं उस समय बाहर गया हुआ था; अतः वह तीन रात्रि बिना भोजन किये ही टिका रहा। यम जब लौट कर आया तो उसने नचिकेता से कहा - "हे ब्रह्मन् ! तुम मेरे घर में तीन रात्रि तक बिना भोजन किये रहे, अतः उसके बदले में मुझसे तीन वर माँग लो। तुम्हें नमस्कार हो !"

तब नचिकेता ने तीन वर माँगे - (१) "मेरे पिता गौतम मेरे प्रति शान्तसङ्कल्प, प्रसन्न-चित्त और क्रोधरहित हो जायें तथा आपके भेजने पर मुझे पहचान कर बातचीत करें।" (२) "हे मृत्यो ! आप स्वर्ग के साधनभूत अग्नि को जानते हैं। मुझसे उसका वर्णन कीजिए, जिसके द्वारा स्वर्ग को प्राप्त हुए पुरुष अमृतत्व प्राप्त करते हैं।" (३) "मेरे

हुए मनुष्य के विषय में जो यह सन्देह है कि कोई तो कहते हैं 'रहता है' और कोई कहते हैं 'नहीं रहता', कृपया आप मुझे बतायें कि सत्य क्या है।"

यमराज ने पहले के दोनों वर प्रसन्नतापूर्वक दे दिये; पर तीसरे वर के विषय में इनकार करते हुए कहा- "पूर्वकाल में इस विषय में देवताओं को भी सन्देह हुआ था; क्योंकि यह सूक्ष्मधर्म सुगमता से जानने योग्य नहीं है। हे नचिकेता ! तू दूसरा वर माँग ले, मुझे न रोक। तू मेरे लिए यह वर छोड़ दे।"

यम नचिकेता की निष्ठा को परख रहा था और देख रहा था कि नचिकेता में वास्तविक वैराग्य और विवेक है या नहीं। यम ने उसे बहुत सारे प्रलोभन दिखाये - हाथी, धन, सत्ता, राज्य, अप्सराएँ, दीर्घ जीवन, पुत्र-पौत्र, पशु, स्वर्ण, घोड़े, रथ, वीणा आदि। इन प्रलोभनों के होते हुए भी नचिकेता हढ़ रहा और विचलित नहीं हुआ। उसने कहा- "हे यमराज ! ये भोग कल रहेंगे या नहीं- इस प्रकार के हैं और सम्पूर्ण इन्द्रियों के तेज को जीर्ण कर देते हैं। दीर्घ जीवन भी अल्प ही है। ये अप्सरा आदि भोग तो मनुष्य के धर्म, वीर्य, प्रज्ञा, तेज, यश आदि का क्षय करने वाले होने से अनर्थ के ही कारण हैं। इनसे मनुष्य नास्तिक बन जाता है। अतः आपके रथादि वाहन और नाच-गान आपके पास ही रहें। आत्मविज्ञान का वह वर ही मुझे वरणीय है।" अन्त में यम ने नचिकेता को सुयोग्य साधक पा कर उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और उसे ब्रहमविद्या का उपदेश दिया।

आरुणि का पुत्र श्वेतकेतु पञ्चालों की सभा में आया। जीवल के पुत्र प्रवाहण ने पूछा "ओ कुमार ! क्या पिता ने तुझे शिक्षा दी है?" वह बोला "जी हाँ।" "क्या तुझे मालूम है कि इस लोक से जाने पर प्रज्ञा कहाँ जाती है?" श्वेतकेतु ने उत्तर दिया, "नहीं भगवन्।" "देवयान और पितृयान-इन दोनों मार्गों का पारस्परिक वियोग-स्थान तुझे मालूम है ?" श्वेत-केतु - "भगवन् नहीं।" "तुझे मालूम है, यह पितृलोक भरता क्यों नहीं है ?" श्वेतकेतु- "नहीं, भगवन्।" "तो फिर तू अपने को मुझे शिक्षा दी गयी है, ऐसा क्यों कहता था ? जो इन बातों को नहीं जानता वह अपने को शिक्षित कैसे कह सकता है ?" तब वह त्रस्त हो कर अपने पिता के स्थान पर आया और उनसे बोला- "श्रीमान् ने मुझे शिक्षा दिये बिना ही कह दिया था कि मैंने तुझे शिक्षा दे दी है। उस क्षत्रिय बन्धु ने मुझसे पाँच प्रश्न पूछे, किन्तु मैं उनमें से एक का भी विवेचन नहीं कर सका।" पिता ने कहा- "यदि मैं इन्हें जानता होता तो तुम्हें क्यों न बताता ?"

तब गौतम राजा के स्थान पर आया। राजा ने अपने यहाँ आये हुए उसकी पूजा की। दूसरे दिन प्रातःकाल राजा के सभा में आने पर वह राजा के पास गया। राजा ने उससे कहा-"भगवन् गौतम ! आप मनुष्य-सम्बन्धी धन का वर माँग लीजिए।" उसने कहा- "मनुष्य सम्बन्धी धन आप ही के पास रहे। आपने मेरे पुत्र के प्रति जो बात कही थी वही मुझे बताइए।"

राजा सङ्कुट में पड़ गया। "यहाँ चिरकाल तक रहो।" उसे ऐसी आज्ञा दी, और उससे कहा- "गौतम ! जिस प्रकार तुमने मुझसे कहा है, उससे तुम यह समझो कि पूर्वकाल में तुमसे पहले यह विद्या ब्राहमणों के पास नहीं गयी। इसी से सम्पूर्ण लोक में क्षत्रियों का ही इस पर अनुशासन रहा।"

जनक ने याज्ञवल्क्ष्य से प्रश्न किया- "यह पुरुष किस ज्योति वाला है?" उसने उत्तर दिया- "हे सम्राट् ! यह आदित्यरूप ज्योति वाला है। यह आदित्यरूप ज्योति से ही बैठता. सब ओर जाता कर्म करता और लौट आता है।" "याज्ञवल्यय ! यह बात ऐसी ही है।"

"याज्ञवल्क्य ! आदित्य के अस्त हो जाने पर यह पुरुष किस ज्योति वाला होता है ?" "उस समय चन्द्रमा ही इसकी ज्योति होता है; चन्द्रमारूप ज्योति के द्वारा ही यह बैठता है, इधर-उधर जाता, कर्म करता और लौट आता है।" "याज्ञवल्क्य ! यह बात ऐसी ही है।"

"याज्ञवल्क्य ! आदित्य के अस्त हो जाने पर तथा चन्द्रमा के अस्त हो जाने पर यह पुरुष किस ज्योति वाला होता है ?" "अग्नि ही इसकी ज्योति होता है। यह अग्निरूप ज्योति के द्वारा ही बैठता, इधर-उधर जाता, कर्म करता और लौट आता है।" "याज्ञवल्क्य ! यह बात ऐसी ही है।"

"याज्ञवल्क्य जी ! आदित्य के अस्त होने पर, चन्द्रमा के अस्त होने पर और अग्नि के शान्त होने पर यह पुरुष किस ज्योति वाला होता है ?" "वाक् ही इसकी ज्योति होती है। यह बाक्रूप ज्योति के द्वारा ही बैठता, इधर-उधर जाता, कर्म करता और लौट आता है। इसी से हे सम्राट् ! जहाँ अपना हाथ भी नहीं जाना जाता, वहाँ ज्यों ही वाणी का उच्चारण किया जाता है कि पास चला जाता है।" "याज्ञवल्क्य ! यह बात ऐसी ही है।"

"याज्ञवल्क्य जी ! आदित्य के अस्त होने पर, अग्नि के शान्त होने पर और वाक् के भी शान्त होने पर यह पुरुष किस ज्योति वाला रहता है ?" "आत्मा हीं इसकी ज्योति होता है। यह आत्मज्योति के द्वारा ही बैठता, इधर-उधर जाता, कर्म करता और फिर लौट आता है।" "आत्मा कौन है ?" "यह जो प्राणों में बुद्धिवृत्तियों के भीतर रहने वाला विज्ञानमय ज्योतिःस्वरूप पुरुष है।"

(७) राजनीति में शान्ति

राजनीति राजधर्म है। महाभारत, मनुस्मृति और याज्ञवल्क्य-स्मृतियों में इस विषय का प्रतिपादन है। धर्म और भगवान् एक साथ रहते हैं। अध्यात्म के आधार के बिना राजनीति निश्चय ही निःसार है। समाज और राजनीति का आधार परमात्मा है, इसलिए राजनीति को धर्म और आचारशास्त्र से पृथक् नहीं किया जा सकता। शुष्क राजनीति शोषण और भ्रष्टाचार का रूप ले लेती है। राजनीति का प्रमुख ध्येय विश्व में रहते हुए विश्व के द्वारा, देश-सेवा के द्वारा भगवत्साक्षात्कार का होना चाहिए ।

भारत का ही नहीं, वरन् किसी भी राष्ट्र का वास्तविक स्वराज्य तभी सम्भव है जब राजनैतिक प्रवृत्तियों के साथ-साथ आध्यात्मिक साधना भी चले। कार्यकर्ताओं की यह भावना होनी चाहिए कि उनका प्रत्येक कार्य योगक्रिया है और भगवान् की पूजा है। उन्हें स्वार्थ, अहङ्कार, ममता, लोभ, काम आदि से मुक्त होना चाहिए; ब्रह्मचर्य, अहिंसा, सत्य, क्षमा, आत्मसंयम, विश्वप्रेम, हृदयवंशाल्य और विश्वव्यापी सहिष्णुता और भगवत्सत्ता में अटूट

विश्वास से युक्त होना चाहिए। उन्हें दर्शन और कर्मयोग के मूल सिद्धान्तों का स्पष्ट परिचय प्राप्त करना चाहिए । उन्हें सारा काम निष्कामभाव से, कर्तृत्व की भावना छोड़ कर करना चाहिए। प्रत्येक कार्य और उसके फल को भगवान् के चरणों में सर्पित करना चाहिए ।'

हत्यारे को शूली देने की प्रथा ठीक नहीं है। इससे वह शिक्षा प्राप्त करने और सुधरने से वञ्चित रह जाता है। उसे फाँसी न दे कर उचित शिक्षा देनी चाहिए।

शिशु के जन्म-काल की प्रसव-वेदना की तरह इन दिनों विश्व में समाज की एक नयी व्यवस्था, एक नया युग, नयी संस्कृति और नयी सभ्यता के जन्म की पीड़ा हो रही है।

जब जनता क्रोधावेश में आती है तब अच्छे-बुरे का विवेक खो बैठती है। केवल पाशवी शक्ति प्रकट होती है। न्याय-दृष्टि समाप्त हो जाती है।

हे शान्तिप्रेमियो, जागो। सजग रहो। प्रबल शक्ति के साथ काम में लगो । दूर-दूर तक शान्ति फैलाओ। अपने प्रयत्न में कुछ भी कमी न रखो। शान्ति-स्थापना के लिए आकाश-पाताल एक कर दो। शान्ति की बात ही सोचो। शान्ति की बात ही कहो। शान्त के लिए ही काम करो। शान्ति-स्थापकों को धन्य है; क्योंकि वे ईश्वर के राज्य में प्रवेश पाते हैं। इस धरती पर जब शान्ति हो तभी सन्तजन धार्मिक शिक्षा का प्रचार तथा साधकजन योग-साधना कर सकते हैं।

(८) साधकों के लिए निर्देश

बच्चों से काफी आध्यात्मिक शिक्षा ग्रहण की जा सकती है। उनके पास सभी मनुष्यों के लिए एक सन्देश है। बच्चों में उपनिषदों की अनुभूति की अभिव्यक्ति मिलेगी, ऋषि-मुनियों के अनुभवों की प्रेरणा मिलेगी। बच्चों में व्यावहारिक धर्म है। वे शान्ति, समन्वय, स्वतन्त्रता और आनन्द का सनातन सन्देश देते हैं। बच्चों को ध्यान से देखिए । उनसे आध्यात्मिक शिक्षा ग्रहण कीजिए और समझदार बनिए । नवजात शिशु सदा समाधिस्थ रहता है, आनन्दमय भगवान् के साथ एकरूप रहता है। उसकी आँखें कैसी स्थिर हैं, देखिए । वह साक्षात् ब्रह्म ही है। जब वह अपने माता-पिता को देखने और पहचानने लगता है, मुसकराने लगता है तब उसके अन्दर माया प्रवेश करती है।

पापमोचन के कई जपाय हैं- पुण्य कर्म करना, पाप को सबके सामने प्रकट कर देना, पश्चात्ताप करना, दान देना, तपस्या करना, सब-कुछ त्याग कर तीर्थ सेवन करना, शास्त्रों का निरन्तर चिन्तन-मनन करना आदि। जिसने त्याग-साधना की हो, वह फिर कोई नया पाप नहीं कर सकता ।

हमसे श्रेष्ठ कोई भी ब्राह्मण आदि पूज्य पुरुष घर पर पधारें, उनको आसन आदि प्रदान करके सेवा करनी चाहिए, श्रद्धापूर्वक दान देना चाहिए । अश्रद्धापूर्वक नहीं देना चाहिए। लज्जापूर्वक देना चाहिए। सङ्कोच अनुभव करते हुए देना चाहिए। भय मानते हुए देना चाहिए। विवेकपूर्वक देना चाहिए । यह सब करते हुए भी यदि आपको किसी अवसर पर अपना कर्तव्य निश्चित करने में दुविधा उत्पन्न हो जाय, तो ऐसी स्थिति में वहाँ जो कोई उत्तम विचार रखने वाले, सत्कर्म और सदाचार में तत्परतापूर्वक लगे हुए, सबके साथ प्रमपूर्वक व्यवहार करने वाले तथा एकमात्र धर्मपालन की ही इच्छा रखने वाले विद्वान् ब्राह्मण हों, वे जिस प्रकार ऐसे प्रसङ्गों पर आचरण करते हों, उसी प्रकार का आचरण आपको भी करता चाहिए। इसके 'अतिरिक्त जो मनुष्य किसी भी दोष के कारण लाञ्छित हो गया हो, उसके साथ किस समय कैसा व्यवहार करना चाहिए, इस विषय में यदि आपको दुविधा प्राप्त हो जाय तो वहाँ जो भी विचारशील, सत्कर्म और सदाचार में पूर्णतया संलग्न तथा धर्मकामी निःस्वार्थी विद्वान् ब्राह्मण हों, वे लोग उसके साथ जैसा व्यवहार करें, वैसा ही आपको भी करना चाहिए। यही आज्ञा है, यही उपदेश है तथा यही सम्पूर्ण वेदों का रहस्य है। इतना ही नहीं, अनुशासन भी यही है। इसलिए आपको इसी प्रकार कत्र्तव्य एवं सदाचार का पालन करना चाहिए। इसी प्रकार कत्र्तव्य एवं सदाचार का पालन करना चाहिए। यही सच्ची शिक्षा है।

स्वस्थ नवयुवक भी एक घण्टे से अधिक सुषुप्ति में नहीं रह सकता है। पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक भी इसे मानते हैं। प्रौढ़ मनुष्य के लिए छः घण्टे की निद्रा पर्याप्त है। १० बजे सो कर ४ बजे उठना चाहिए ।

दो वस्तुओं की तुलना की जाय तो कुछ गुण या कुछ अंश ही दोनों में समानता से मिलते हैं। उदाहरणों में वे ही कुछ अंश लेने होते हैं। सारे के सारे गुण-धर्मों की समानता नहीं मिल सकती। दो वस्तु सर्वात्मना समान रहें, यह असम्भव है।

हममें भिन्न विचार, भिन्न नीति, भिन्न ध्येय और भिन्न मत हैं- इसलिए हमें एक-दूसरे का शत्रु नहीं बनना चाहिए ।

पत्र लिखो तो स्पष्ट अक्षरों में लिखो। दो पंक्तियों के बीच में पर्याप्त स्थान छोड़ना चाहिए। उपान्त अधिक रखना चाहिए । कृपण नहीं बनना चाहिए। अस्पष्ट लिखना, टेढ़ा-मेढ़ा लिखना, लिफाफे की सामग्री को कार्ड में ही भर देना आदि सब बुरा है। पढ़ने वाले की आँख पर जोर पड़ता है, उसे दुःख होता है। उसे अपना समय आवश्यकता से अधिक नष्ट करना पड़ता है।

सदा भूत-प्रेतों का चिन्तन करने वाला भूत ही बनता है। क्योंकि प्रकृति का यह अटल नियम है कि मनुष्य का आगामी जन्म उसके प्राणत्याग करते समय के अन्तिम विचारों पर निर्भर करता है। अन्तिम क्षण का विचार जीवनभर के निरन्तर चिन्तन का ही परिणाम होता है; अतः आजीवन भगवान् या ब्रह्म के विषय में ही चिन्तन करना चाहिए। इससे अन्तिम विचार भगवान् या ब्रह्म-विषयक ही होगा, अमरत्व तथा मुक्ति प्राप्त होगी।

भूत-प्रेतों के साथ सम्पर्क स्थापित करने की बात से यह सिद्ध होता है कि इस जीवन के उपरान्त भी जीवन बना रहता है। किन्तु मृतात्माओं के साथ अधिक सम्पर्क साधने से कोई अधिक लाभ नहीं है। हाँ, इतना हो सकता है कि प्रार्थना, कीर्त्तन, दान, श्राद्ध आदि के द्वारा उन मृत आत्माओं को शान्ति पहुँचाने में सहायता की जाय, उनको सान्त्वना दी जाय। उनसे सम्पर्क स्थापित करने से वे इस लोक के बन्धन में बंधी रहती हैं और ऊध्वं लोकों की ओर अग्रसर नहीं हो पातीं। उनके अन्दर हमारे प्रति और हमारे अन्दर उनके प्रति आसक्ति पंदा हो जाती है। इसके अतिरिक्त भूतों का विचार आपको स्वप्न में भी सताने लगेगा । प्रतात्माओं का सन्देश सदा सच ही होता है, ऐसा नहीं है। हमें यथाशक्य प्रयत्न यह करना चाहिए कि हम आत्म-साक्षात्कार करें। इससे सारा विश्व सन्तुष्ट होगा। आप विश्व का कल्याण कर सकेंगे। आपसे सारे पूर्वज प्रसन्न होंगे। जो अपनी शुद्धि करता है, वह सारे विश्व को शुद्ध करता है। सीप के पीछे न दौड़िए; अमूल्य मोती को खोजिए जो आत्मा है, जो आपके ही अन्दर है।

वसन्त ऋतु आती है। उसके सौन्दर्य का आनन्द लीजिए । जीवन में भी वसन्त आने दीजिए। ईश्वर के मिलन का माधुर्य भोगिए । आत्मानुभूति को फलने-फूलने दीजिए। भक्ति, ज्ञान, मुक्ति, अमरता, शान्ति और आनन्द का अनुभव कीजिए ।

लोग पुरानी वस्तुएँ फेंकते नहीं हैं। पुरानी चीनी, पुराना चावल, पुराना अचार, पुराना गुड़, पुराना भी सब पचासों साल तक रखते हैं। उसकी बड़ी कीमत है; क्योंकि उसमें प्रचुर शक्ति है। उनसे कई रोग दूर होते हैं, इसलिए उन्हें सुरक्षित रखा जाता है। इसी प्रकार जिसकी मनोवृत्ति वेदान्त की ओर है, जो सारे शरीरों में एक ही आत्मा को जानता है, उसकी पत्नी यदि बूढ़ी हो जाय तब भी उसे प्यारी लगती है। समझदार मालिक अपने पुराने सेवक को बहुत चाहता है। शुद्ध अन्तःकरण वालों के लिए पुराने मित्र बहुत घनिष्ठ होते हैं।

हमारे चारों ओर कीटाणु भरे पड़े हैं। शरीर के अन्दर भी कीटाणु भरे हैं। फिर भी हम जीवित हैं; यह बड़ा चमत्कार है, विश्व का बड़ा आश्चर्य है।

व्यक्तित्व (Personality) और जीवत्वभाव (Indivi-duality) दोनों भिन्न वस्तुएँ हैं। जीवत्वभाव का विकास करने में कोई हानि नहीं है, बल्कि जिसमें शक्तिशाली जीवत्वभाव है, वह वेदान्त और ज्ञानयोग की साधना के लिए अधिक उपयुक्त है। 'यहं ब्रहमास्मि' 'में ब्रहम है' - यह है जीवत्वभाव । यह सात्त्विक है। व्यक्तित्व मनुष्य की मानसिक सृष्टि है। वह राजसिक है।

पाश्चात्यों में व्यक्तित्व बहुत प्रमुख वस्तु है। हिन्दू के लिए वह कुछ नहीं है। पदवी, आदर, पद, श्रेणी, कक्षा, प्रतिष्ठा-ये व्यक्तित्व से सम्बन्धित हैं। व्यक्तित्व का अन्त पाश्चात्यों के लिए मृत्यु-समान है; किन्तु भारतीय के लिए यह प्रसन्नता का विषय है। हिन्दू अमरत्व की प्राप्ति के लिए त्याग और संन्यास का स्वागत करता है। हिन्दू-मानस में धार्मिक संस्कार सदा प्रबल रहा है। पाश्चात्यों के मन में त्याग और संन्यास शब्द से ही अपार भय पैदा हो जाता है। हिन्दुओं के मन में 'अपरिग्रह' घर कर गया है और पाश्चात्यों के मन में 'परिग्रह' ।

माया बड़ी गहन है। वह बड़े रहस्यपूर्ण ढङ्ग से जीवों को भरमा कर बन्धन में डाल देती है। वह मनुष्य के ज्ञान पर परदा डाल कर उसे वासना, लोभ और सत्ता के पीछे पागल बना देती है। वृद्धा माँ अपने बच्चे को शादी के लिए विवश करती है। वह सोचती है कि बहू घर आयेगी तो वृद्धावस्था में उसकी सहायता करेगी, रात को उसका पैर दबायेगी, पान देगी, चाय पिलायेगी आदि। वह बहू ज्योंही घर में पैर रखती है वह घर की मालकिन बन जाती है। तिजोरी और सन्दूक की चाबी वह अपने पास रख लेती है। सास चाहती है कि बहू उसका कहा माने । सुशिक्षित बहू चाहती है कि यह गँवार सास उसका कहा माने । सास बहू पर शासन करना चाहती है और बहू सास पर । बहू को लगता है सास का व्यवहार भद्दा है. और सास को बहू का। घर में नित्यप्रति झगड़ा चलने लगता। बेचारा लड़का बड़े असमञ्जस में पड़ जाता है। उसके लिए माँ और पत्नी दोनों को एक समान मानना और उनके साथ निभाना कठिन हो जाता है। ढोलक की तरह उसे दोनों ओर से थपेड़े लगते हैं। भले ही उनके पास पर्याप्त मात्रा में घन और सम्पत्ति हो; पर घर में शान्ति नहीं रहती। दूसरों पर शासन चलाने की आखिर आवश्यकता ही क्या है ? जब कि संसार की सभी वस्तुएँ नाश-वान् है तो इन प्रापञ्चिक अधिकारों का महत्त्व ही क्या है ? आज्ञा-पालन का अभ्यास करना चाहिए। सेवा करना, दूसरों को प्रसन्न करना सीखना चाहिए। तब सभी आपका कहा मानेंगे । सबके हृदय में आप घर कर लेंगे। त्याग की अपेक्षा अनुवर्तन बड़ी वस्तु है। अनुवर्तन से बहङ्कार नष्ट होता है और अन्तः शक्ति, सुख और समाधान बढ़ते है।

वायु द्वारा सीधे नाइट्रोजन (नत्रजन) ग्रहण करने वाले कीटाणुओं को शरीर में प्रवेश करा दिया जाय तो मनुष्य बिना खाये भी रह सकेगा; क्योंकि उन कीटाणुओं द्वारा उसे पर्याप्त नाइट्रोजन मिला करेगा। मनुष्य और उन कीटाणुओं के बीच सामञ्जस्य हो जायगा। कीटाणुओं से मनुष्य को नाइट्रोजन मिलेगा और मनुष्य से कीटाणु अपनी आवश्यकता के अनुसार पोषण पा लेंगे। यह सामञ्जस्य 'सिबोसिस' कहा जाता है। सेन्द्रिय द्रव्यों के बीच जो भौतिक सम्बन्धों का सामञ्जस्य निर्माण होता है उसका विश्लेषण करते समय डा० डी० वेरी ने यह नया शब्द निर्माण किया है।

इन दिनों बहुतों के लिए भगवान् उनके उदर तक ही सीमित रह गया है। उपर्युक्त प्रयोग यदि सफल हो जाय तब मनुष्य अपने भौतिक झञ्झटों से छूट कर भगवत्-स्मरण और आध्यात्मिक साधना में अधिक समय लगा सकेगा। हमें उन कीटाणुओं के प्रति कृतज्ञ होना चाहिए जो मनुष्य को भोजन की आवश्यकता से मुक्ति दिला सकते हैं।

आपको यदि एक छोटा बक्स चाहिए तो कई दूकानों को देखते-देखते अन्त में आप उपयुक्त दूकान को खोज निकालते हैं जहाँ आपको अपनी मनचाही वस्तु मिल सकती है। दूकानदार भी योग्य ग्राहक की खोज में रहता है। यह युगपत् सम्पात है। एक निर्धन विद्यार्थी है। उच्च अध्ययन के लिए वह आक्सफोर्ड जाना चाहता है, पर इच्छा पूरी नहीं हो पाती और जीवन समाप्त हो जाता है। वह आगामी जन्म में उपयुक्त वातावरण में किसी धनी परिवार में पैदा होगा और विदेश जा कर अपने पिछले जन्म को इच्छा पूरी कर लेगा। यह भी युगपत् सम्पात का उदाहरण है।

चक्षुयाँ हसते विद्वान् दन्तोष्ठाभ्यां तु मध्यमः ।

अघमा अट्टहासेन न हसन्ति मुनीश्वराः ।।"

- विद्वान् लोग केवल आँखों से हँसते हैं, मध्यम श्रेणी के लोग दाँत और ओठों से हँसते हैं, जो निकृष्ट कोटि के लोग हैं वे ठट्ठा मार कर हँसते हैं और यतिश्रेष्ठ कभी हँसते ही नहीं।

न मृत्यु की अपेक्षा करो और न जीने की इच्छा रखो । जैसे सेवक अपने स्वामी की प्रतीक्षा करता रहता है, वैसे काल की प्रतीक्षा में रहो। यह ज्ञानी की उदासीन वृत्ति है।

योगाभ्यास से जिस उच्चतम बिन्दु या लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है वह श्रीचक्र है। श्रीविद्या यदि सिद्ध हो जाय तो फिर योगाभ्यास के द्वारा सिद्ध करने को कुछ शेष नहीं रह जाता ।

श्रमिक की चिन्ता अपनी दैनिक मजदूरी तक ही सीमित है। मुनीम अपने काम के उत्तरदायित्व में पड़ा रहता है। तहसीलदार समूची तहसील की चिन्ता करता है। डिप्युटीकलेक्टर को अपने उपमण्डल की चिन्ता है, कलेक्टर को जिले की, राज्यपाल को राज्य की और राष्ट्रपति को अपने राष्ट्र की चिन्ता रहती है।

'बेचैन शिर है वो जो पहने है ताज को।' मनुष्य जितना बड़ा, उसकी चिन्ताएँ और उत्तरदायित्व का भार भी उतना बड़ा ।

जो अपने पुण्यकर्मों के कारण ब्रह्मलोक को जाते हैं, उन्हें अगले कल्प में उनके पुण्य के अनुसार उत्तरदायित्वपूर्ण पद प्राप्त होता है। हिरण्यगर्भ के उपासक ब्रह्माण्ड के प्रलय होने पर हिरण्यगर्भ के साथ परब्रह्म में लीन होते हैं।

स्वर्ग की कामना से किया जाने वाला ज्योतिष्टोम और इसी प्रकार के विभिन्न कामनाओं की सिद्धि के लिए किये जाने वाले कर्म काम्य कर्म कहे जाते हैं। ब्रह्महत्या, मदिरापान और अन्य पाप निषिद्ध कर्म हैं। सन्ध्यावन्दन आदि जो दैनिक कृत्य हैं, वे नित्यकर्म हैं।

त्रयोदश अध्याय: जीवन्मुक्त

(विशेषताएँ और अनुभव)

बन्धनमुक्त योगी जीवन्मुक्त कहलाते हैं। जीवित रहते हुए ही वे मुक्त हैं। वे संसार में रहते हुए भी नहीं रहते हैं। वे सर्वदा परमात्मा के अखण्ड आनन्द में लीन रहते हैं। वे अपने शरीर अथवा इन्द्रियों से तादात्म्यता नहीं अनुभव करते। उनके प्रारब्ध कर्म का अवशेष भी जब क्षीण हो जाता है तब भोग या भोक्ता होने का भान भी उनमें नहीं होता। कर्म या कंर्त्ता की भावना उनमें नहीं होती। वे अनासक्त हो कर, निरहङ्कार हो कर, सन्तुलित मन और समदृष्टि के साथ प्रसन्नतापूर्वक विहार करते हैं। उनकी अवस्था अनिर्वचनीय है। वे साक्षात् ब्रह्म हैं।

जावन्मुक्त आध्यात्मिक क्षेत्र का उदात्त नायक है। वह एक प्रबुद्ध योगी है। उसे आत्मानुभूति प्राप्त हो गयी है। वह मनुष्यों में सर्वोत्तम है। वह मनोजयी है। वह इच्छा, राग, द्वेष, भय, भ्रम और गर्व आदि से सर्वथा मुक्त है।

जीवन्मुक्त की दृष्टि में दुष्ट और साधु में, सुवर्ण और पत्थर में, ऊँच और नीच में, स्त्री और पुरुष में, मनुष्य और पशु में, निन्दा और स्तुति में, आदर और अनादर में कोई अन्तर नहीं है। वह सर्वत्र एक आत्मा को ही पहचानता है, सबमें देवत्व देखता है। चूंकि वह मनविहीन है, इसलिए सभी भेद, सीमा आदि उसके लिए समाप्त हो चुके हैं।

अनुपम आनन्दामृत से भरे हुए असीम ब्रह्मसागर में वह न कुछ देखता है न सुनता है। वह आत्मा में, अपने निजी रूप सच्चिदानन्द-स्वरूप में ही स्थित रहता है। वह निर्विकल्प समाधि में अद्वैत आत्मा को देखता है। उसकी अनुभूति वाचा-तीत है। उसे परम शान्ति मिली है। वह सदा प्रसन्न रहता है। वह शुद्ध चरित्र होता है। वह अनुभव कर चुका होता है कि वह शुद्ध चैतन्य है। वह अपने आत्मारूपी आनन्दोपवन में पूर्ण विश्राम करता है।

राजा जनक ने एक योगी से प्रश्न किया- "हे श्रद्धय मुने ! आप प्रातः, मध्याह्न और सायङ्काल में सन्ध्यावन्दन क्यों नहीं करते ?" योगी ने कहा- "हे राजन् ! मेरे हृदय के चिदाकाश में ज्ञानसूर्य सदा प्रकाशमान् है। मेरे लिए कोई सूर्योदय या सूर्यास्त नहीं है, तब मैं सन्ध्यावन्दन कैसे करू ? तिस पर मेरी नानी, माया, मर चुकी है।" राजा जनक मस्तक झुका कर चले गये। वह समझ गये कि वह योगी जीवन्मुक्त है, ब्रह्मचैतन्य का अनुभव पा चुका है।

अवकाशरहित ब्रह्म में अवकाश कैसे प्रकट हो सकता है ? पूर्व, पश्चिम आदि दिशाएँ कैसे हो सकती हैं? यह भी मन की ही सृष्टि है। यदि आप थके हों तो फरलाङ्गभर की दूरी आपके लिए मीलभर लगेगी और स्फूत्ति हो तो एक मील की दूरी एक फरलाङ्ग-जैसी लगेगी। जीवन्मुक्त या द्रष्टा के लिए न तो दूरी है, न काल है। वह देश-कालातीत एकमात्र ब्रह्म का साक्षात्कार करता है।

जीवन्मुक्त सम्पूर्णतया अहङ्कार, संशय, भय और शोक से मुक्त होता है। पूर्णता की प्राप्ति के ये चार आवश्यक लक्षण हैं।

हर्ष-शोक से मुक्ति, समदृष्टि, मन की सन्तुलित अवस्था और त्रिकालज्ञान- ये जीवन्मुक्त के प्रमुख लक्षण हैं।

शान्ति, सन्तोष, समता, हर्ष-शोक से मुक्ति, और निर्भयता-ये पाँचों जीवन्मुक्त के आधारभूत गुण हैं।

आत्मज्ञानी जब कुछ बोलता है तो उससे श्रोताओं में शान्ति, समाधान, शक्ति और बल का सञ्चार होता है। उसमें आनन्द, शान्ति और पवित्रता का जो अन्तः सागर भरा है, वह उसे ही बाह्य उंडेलता है। वह अपने चतुर्दिक् आनन्द और प्रेम को विकीर्ण करता है।

आत्मज्ञानी सभी कामनाओं से मुक्त होता है। क्योंकि वह जानता है कि सभी पदार्थ उसके अन्दर ही हैं। उससे बाहर कोई पदार्थ ही नहीं जिसको वह कामना करे। "भ्राप्तकामस्य का स्पृहा ?" जिसकी सारी इच्छाएं पूरी हो गयी हों, उसे फिर कौन-सी इच्छा हो सकती है? ब्रह्म परिपूर्ण है, निरपेक्ष है। आत्मा का जिसने अनुभव कर लिया उसे फिर कैसे कोई इच्छा हो सकती है ?

जिस योगी ने मन को सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म में लीन कर दिया है, अज्ञानरूपी शत्रु को जीत लिया है, अहं-मम भाव से जो मुक्तं है, गर्व, स्वार्थ, राग, द्वेष आदि को जिसने निर्मूल किया है, वह अनन्त, असीम आनन्दसागर में आनन्द-मग्न होगा।

परमहंस कौन है ? जो प्राणिमात्र में आत्मा देखता है और और हंसक्षीरन्याय से पाँचों आवरणों से आत्मा को अलग पहचानता है, वह परमहंस है। वह गङ्गाजल की तरह पवित्र होता है। वह अनासक्तभाव से परिव्राजक जीवन व्यतीत करता है।

परब्रह्म के ज्ञाता अमर होते हैं, शाश्वत आनन्द भोगते हैं। वे दुःख-शोक को तर जाते हैं। संशय, भ्रम और सीमाओं से परे हो जाते हैं। अविद्या, काम और कर्म आदि उनकी सारी हृदयग्रन्थियाँ छिन्न हो जाती हैं। वह स्थिति अवर्णनीय है।

सञ्चित कर्म अविद्या पर निर्भर होते हैं, क्रियमाण कर्म अहङ्कार पर आश्रित होते हैं मौर प्रारब्ध कर्म भौतिक शरीर पर अवलम्बित होते हैं। जीवन्मुक्त में ज्ञानोदय से अज्ञान का नाश - हो गया होता है। अतः उसके सञ्चित कर्म नष्ट हो जाते हैं। उसमें अहङ्कार नहीं रहता है। इसलिए उसके क्रियमाण कर्म भी समाप्त हो जाते हैं। चूंकि वह सर्वव्यापी ब्रह्मरूप बन जाता है; इसलिए इस दृष्टि से उसका कोई शरीर ही नहीं रहता है। इस प्रकार ज्ञात-प्राप्ति के साथ ही तीनों प्रकार के कर्म समाप्त हो जाते हैं।

पुण्यकर्म करने वाले स्वर्ग जाते हैं। उपासना करने वाले ब्रह्मलोक जाते हैं। ज्ञानी किसी लोक में नहीं जाते हैं। वे बिभु परमेश्वर में लीन हो जाते हैं।

गार्गी ज्ञानी थी। उसका नाम बृहदारण्यकोपनिषद् में आता है। राजा जनक के दरबार में वह नङ्गी आयी और याज्ञवल्क्य के साथ शास्त्रार्थ किया।

ज्ञानी के लिए उसकी भुजा ही शिरहाना है। आकाश ही उसका चंदवा है। हरी घास से आवृत धरती उसकी रेशमी शय्या है। नक्षत्र ही बिजली की बत्ती हैं। भगवान् वायुदेव ही उसके पङ्खा झलने वाले सेवक हैं। आकाश ही वस्त्र है, हाथ ही बरतन है, जो सदा तैयार हैं। त्याग ही पत्नी है। किसी प्रकार की चिन्ता के बिना वह सोता है और अपनी ज्ञान, वैराग्य और उपरति के मध्य रह कर परम शान्ति का उपभोग करता है।

जीवकोटि जीवन्मुक्त वह है जिसने अपने ही प्रयत्न से क्रमिक विकास के द्वारा आत्मसाक्षात्कार किया है। ध्यान के द्वारा वह अपने को जीवत्व से छुड़ा कर ब्रह्मत्व तक पहुँचाता है। वह कई जन्म लेता है। उसने किसी भी प्रकार से अपने को जन्म-मरण के चबकर से से मुक्त कर लिया है। वह है। वह कुछ इने-गिने लोगों की ही सहायता कर सकता है। अधिक लोगों को वह उन्नत नहीं बना सकता है। उसकी तुलना बैलगाड़ी या नदी में बहते हुए काष्ठ-फलक से की जा सकती है जो चार-पाँच व्यक्तियों को ही ले जा सकता है। नित्यमुक्त ईश्वरकोटि जीवन्मुबत का जन्म धर्म की स्थापना, सज्जनों की रक्षा और मानवता की भलाई करने के हेतु से होता है। वह इस जीवन में कोई ध्यान या साधन नहीं करता। वह प्रभु का अंश होता है। वह जन्मजात सिद्ध होता है, बचपन से ही वह प्रबुद्ध होता है। वह बहुतों को उन्नत बना सकता है। वह लोकसंग्रह के लिए प्रकट होता है और उस विशेष कार्य के समाप्त होते ही तिरोधान हो जाता है। उसकी तुलना रेलगाड़ी या सागर के एक बड़े जलपोत से की जा सकती है जो बहुसंख्यक लोगों को ले जा सकता है। श्री शङ्कराचार्य ईश्वरकोटि जीवन्मुक्त थे और वामदेव जीवकोटि जीवन्मुक्त थे ।

ज्ञानी दो प्रकार के होते हैं केवल ज्ञानी और सिद्ध ज्ञानी । केवल ज्ञानी स्वयं आत्मसाक्षात्कार प्राप्त कर लेता है; पर वह संसार का अधिक कल्याण नहीं कर सकता। वह अपने लिए ही भला होता है। वह रात में चमकने वाले तारों की तरह होता है। वह विश्व के अधिकतर लोगों के लिए अपरिचित रहता है। इसके विपरीत सिद्ध ज्ञानी महिमामय होता है। वह सूर्य की तरह सारे विश्व को प्रकाश देता है। वह ज्ञानी भी होता है और योगी भी। वह विश्व का अपरिमित कल्याण कर सकता है। श्री शङ्कराचार्य सिद्ध ज्ञानी थे। मदालसा केवल ज्ञानी थी।

विश्व को केवल अन्तह ष्टि-सम्पन्न योगियों की आवश्यकता है। आत्मप्रकाश पायी हुई प्रबुद्ध आत्माएँ विश्व के लिए वरदान हैं। वे जनता को धर्ममार्ग का पथ-प्रदर्शन करेंगी और अज्ञान-सागर पार करके अमरत्व और शाश्वत आनन्द की प्राप्ति करने में उनकी सहायता करेंगी। शिक्षण संस्थाओं के प्रमुखों का वे मार्गदर्शन करेंगी।

बेदान्ती कहता है, "मेरा कुछ भी नहीं है और सब-कुछ मेरा है।" चूं कि यह विश्व केवल दिखावा है, अतः उसका यह कहना कि 'मेरा कुछ नहीं है' बिलकुल ठीक है। चूंकि उसने आत्म-साक्षात्कार कर लिया है और उसके लिए ब्रह्म अथवा आत्मा के अतिरिक्त इस विश्व का कोई स्वतन्त्र और स्थायी अस्तित्व नहीं है; इसलिए वह कहता है कि 'सब-कुछ मेरा है।' चूंकि वह घ्राणेन्द्रिय और पृथ्वी-तत्त्व पर अधिकार पा चुका है; इसलिए सारे गन्ध पदार्थ उसके

हैं। चूंकि वह रसना को तथा जल-तत्त्व को अपने अधिकार में कर चुका है; इसलिए स्वादिष्ट वस्तुमात्र, फल आदि-सभी खाद्य-पदार्थ उसके हैं। उसने चक्षुरिन्द्रिय और अग्नि-तत्त्व को अपने अधीन कर लिया है; इसलिए दृश्यमान सौन्दर्य, सुन्दर उद्यानं आदि सब उसके हैं। उसने स्पर्शेन्द्रिय और वायु-तत्त्व पर नियन्त्रण पाया है; इसलिए स्पृश्य पदार्थ मात्र उसके हैं। उसने श्रवणेन्द्रिय तथा आकाश-तत्त्व पर अधिकार 'पा लिया है, इसलिए सारे ध्वनि और सङ्गीत उसके हैं।

चीनी की बनी बिल्ली बच्चे के लिए वास्तविक बिल्ली है। बच्चे को चीनी नजर नहीं आती; क्योंकि उस पर बिल्ली छा गयी है। बिल्ली से चीनी छिप गयी है। बड़े आदमी के लिए वह केवल चीनी ही है। यहाँ चीनी बिल्ली पर छा गयी है। इसी प्रकार जीवन्मुक्त की दृष्टि में सारे मायिक नाम और रूप ब्रह्म में छिप जाते हैं। वह सर्वत्र ब्रह्म को ही देखता है। सारे नाम और रूप उसके लिए लुप्त हो जाते हैं। संसारी मनुष्य के लिए ये नाम और रूप ब्रह्म पर छा जाते हैं। वह सर्वत्र एक-मात्र मायिक आकृतियों को पहचानता है।

याज्ञवल्क्य ने मैत्रेयी से कहा- "हे मैत्रेयी पार्वती को शिवजी से इतना प्रेम है कि वह उनका आधा शरीर ही बन गयी हैं, परन्तु तुम मेरे प्रेम में मेरे समूचे व्यक्तित्व में ही छा जाने को आतुर हो।" जिसने आत्मानुभव कर लिया है, वह चूंकि स्वयं सभी प्राणियों का आत्मा हो जाता है, इसलिए सभी प्राणियों में प्रवेश करता है।

सर्वव्यापी, अमर, अदृश्व, स्वयंज्योति आत्मा को सर्वत्र देखने वाले जीवन्मुक्त के लिए कोई ज्ञातव्य या प्राप्तव्य नहीं रहता है।

उसने पूर्णता, परम आनन्द और परम ज्ञान प्राप्त कर लिया हैं।

यद्यपि ज्ञानी सृष्टि के सभी शरीरों के साथ एकरूप होता है, (संमष्टि-अभिमानी दिखता है) तथापि वह यह जानता है कि प्रारब्धवशात् प्राप्त इस देहं के साथ, जिसे उसने धारण कर रखा : है, उसका कुछ विशेष सम्बन्ध है।

जीवन्मुबत या भागवत के नेत्रों से ज्योति छिटकती है। उसके मस्तक और त्रिकुटी में उभार होता है। उसकी वाणी का श्रोता के मन पर इतना प्रभाव पड़ता है कि वह बात उसे जीवन-पर्यन्त नहीं भूलती। उसमें अद्भुत आकर्षण होता है। वह सभी प्रकार के संशयों का बड़े ही सुन्दर ढङ्ग से समाधान करता है। उसके सान्निध्य में विलक्षण शान्ति और सुख अनुभव होता है। उसकी उपस्थिति में सारे संशय दूर हो जाते हैं। उसकी भाषा मौन है। वह बड़ा कृपालु होता है। उसमें स्वार्थ, क्रोध, लोभ, अहङ्कार, काम और गवं नहीं रहते। वह सत्य, शान्ति, ज्ञान - और आनन्द का मूतरूप होता है।

चित्र में वृक्ष, फल, अग्नि, छुरी, नदी आदि पदार्थों को देख कर लोग समझ लेते हैं कि ये सारे झूठे हैं; इसी प्रकार जीवन्मुबत इस संसार को देख कर जान लेता है कि सारे रूप झूठे हैं। चित्र में साँप या शेर देख कर जैसे कोई डरता नहीं है, उसी प्रकार जीवन्मुक्त के लिए जीवित सर्प या जीवित शेर से कोई डर नहीं है।

जिसने यह जान लिया कि संसार में ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, उस ज्ञानी के लिए जन्म-मरण का चक्कर नहीं रहता है। वह मुक्त हो गया है, अमर हो गया है और पूर्ण हो गया है। वह जीवन्मुक्त है। इस जीवन में रहते हुए भी इस जीवन से मुक्त है।

किसी उत्सव के समय हम लोगों की भीड़ देखते हैं तो हम केवल उसे देखते ही हैं। उसके प्रति हमारे मन में कोई आसक्ति नहीं होती है। इसी प्रकार जीवन्मुक्त के लिए यह संसार है। उसे इनमें से किसी के प्रति आसक्ति नहीं है।

एक राजा के महल में एक बड़ा प्रशाल था जो शीशे का बना हुआ था। राजा जब कभी उसमें जाता तो अपनी ही प्रतिच्छाया हर कहीं देखता । अपना ही प्रतिबिम्ब देख कर उसे बड़ा आनन्द आता था। उसका कुत्ता भी प्रशाल में आया। वहाँ चारों ओर कुत्ते की ही प्रतिच्छाया थी। उसने सोचा कि चारों ओर बहुत-से कुत्ते हैं। वह दूसरे कुत्तों को काटने के लिए इधर-उधर झपटने लगा। इसी प्रकार जो योगी संसार में अपना ही प्रतिरूप देखता है, वह बड़ा प्रसन्न रहता है, जबकि अज्ञानी व्यक्ति देखता है कि दूसरे सब उससे भिन्न और पृथक् हैं, वह उनसे द्वेष करता और लड़ता है।

ब्रह्मज्ञानी की दृष्टि में भला-बुरा कुछ भी नहीं रहता है। वह शोक-रहित हो जाता है। वह परमात्मा के साथ एकरूप हो जाता है। वह परमात्मा में ही आनन्द भोगता है।

जीवन्मुक्तों की जीवनचर्या में अन्तर होता है। भगीरथ राजा का-सा जीवन व्यतीत करता था। दूसरा योगी भिक्षुक की तरह रहता है। एक सदा ध्यानावस्था में रहता है। वह कभी कुछ काम नहीं करता, कुछ नहीं बोलता। वह सदा एकान्त में रहता है। जड़भरत का जीवन इसी प्रकार का था। दूसरा कोई व्यस्त जीवन व्यतीत करता है। वह भीड़ भरे शहरों में रहता है। वह लोकसंग्रह में निमग्न रहता है। वह लोगों से बातचीत करता है, व्याख्यान देता है, धार्मिक वर्ग चलाता है, पुस्तकें लिखता है आदि। श्री शङ्कराचार्य का जीवन इस प्रकार का था। यह सब प्रारब्ध के अनुसार होता है। प्रत्येक योगी का अपना-अपना प्रारब्ध होता है। यदि सभी योगियों की जीवन-प्रणाली एक-सी होती, सबका प्रारब्ध एक ही होता, तब यह संसार एक जेल जैसा हो जाता। अभिव्यक्ति में विविधता प्रकृति का स्वभाव है।

कुछ कट्टर वेदान्ती कहते हैं- "जीवन्मुक्त या व्यवहार-ज्ञानी भी क्रोध और पीड़ा आदि से युक्त होते हैं; किन्तु यह केवल आभास है। वह जले हुए वस्त्र की तरह है। यह वैसा ही है जैसा नदी के जल में छड़ी के आघात से बना हुआ चिह्न।" यह विचार गलत है। जीवन्मुक्त कभी भी, क्षणभर के लिए भी, किसी भी परिस्थिति में क्रोध की झलक भी नहीं दिखा सकता है। वह सर्वथा मन-रहित व्यक्ति है। जिसमें मन ही न हो तो वह क्रूद्ध कैसे हो सकता है? यह असम्भव है। शुकदेव की कथा प्रसिद्ध है। राजा जनक के द्वारपालों ने उसके साथ बढ़ा ही दुर्व्यवहार किया, तब भी क्या उसने अपनी पूर्ण मनःशान्ति बनाये नहीं रखी ? क्या उसने आभासमात्र भी क्रोध प्रकट किया ?

ईश्वर निर्गुण ब्रह्म की अवस्था में रह कर चाहे जितना काम कर सकता है; पर उसकी निगुण ब्रह्म की चेतना नष्ट नहीं होती । माया पर उसका पूरा अधिकार होता है। अवतार-पुरुष भी अपने मूल स्वरूप की रक्षा करते हुए काम कर सकता है; परन्तु सप्तम अवस्था में रहने वाला ज्ञानी काम नहीं कर सकता (प्राचीन रूढ़िवादी मत) ।

छठी या सातवीं भूमिका में रहने वाला ज्ञानी लोकसंग्रह नहीं कर सकता। वह सदा ब्रह्म में लीन रहता है। यदि वह लोक-संग्रह करना चाहे तो उसे चौथी या पाँचवी भूमिका में उतरना पड़ेगा (प्राचीन रूढ़िवादी मत) ।

ज्ञानी की चैतन्यावस्था दोहरी होती है। छठी भूमिका में रहते समय अपने स्वरूप में रह कर ही वह काम कर सकता है। निम्न भूमिका में आना उसके लिए आवश्यक नहीं है। (चोरनारी-हष्टात्त : जिस प्रकार कौआ एक ही पुतली को दोनों ओर घुमा कर दोनों आँखों से देख सकता है वैसा ही ।) (नवीन मत) ।

ब्रह्मज्ञान प्राप्त होते ही जीवन्मुक्त लुप्त हो जाता हो, ऐसी बात नहीं है। यदि ऐसा होता तो फिर साधकों को धार्मिक उपदेश कैसे मिलते ? यह प्रकट है कि जीवन्मुक्तों से साधक मार्ग-दर्शन प्राप्त करते हैं।

दूध से दूध. पानी से पानी और तेल से तेल मिल कर जैसे एकरूप हो जाते हैं वैसे ही जीवन्मुक्त आत्मज्ञान प्राप्त करने पर उस आत्मा से एकरूप हो जाता है। इसमें संशय नहीं है। वामदेव, जड़भरत, मन्सूर, शम्सतबरेज़, मदालसा, चुडाला आदि ने आत्मा के साथ एकरूपता प्राप्त कर ली थी। वे अपने पोछे अपने अनुभवों और उपदेशों को विश्व की पीड़ित मानवता के लिए छोड़ गये हैं।

जिस प्रकार कपूर गल कर अग्नि के साथ एकरूप हो जाता है वैसे ही ज्ञानी का मन भी गल कर ब्रह्म के साथ एकरूप हो: जाता है।

आत्मानुभूति-प्राप्त ज्ञानी आत्मा के साथ एकात्म हो जाता है। वह साक्षात् ब्रह्म ही बन जाता है। ज्ञानाग्नि के द्वारा उसके तीनों शरीर जल जाते हैं। बाहर से देखने वालों को उसका भौतिक शरीर दिखता है, पर ज्ञानी की अपनी दृष्टि में कोई शरीर नहीं है; क्योंकि उसका ब्रह्म के साथ तादात्म्य होता है।

जीवन्मुवत आध्यात्मिक शक्ति का विद्युत् गृह है। वहाँ से विश्व के कोने-कोने तक शक्ति की तरङ्गे प्रवाहित होती हैं। उसके समक्ष बैठो। आपके सारे संशय स्वतः दूर हो जायेंगे। आप एक विलक्षण आनन्द और स्फूत्ति का अनुभव करोगे ।

कितना महान् आश्चर्य है ! इन जीवन्मुक्तों ने कितना पुण्य-कर्म किया होगा ! जीवित रहते हुए भी वे जीवन से मुक्त हो जाते हैं। वे धरती पर साक्षात् परमेश्वर हैं। उनमें कितनी तेजस्विता है ! उनका मन सदा अक्षुब्ध रहता है। जहाँ कहीं भी वे जायें उनका प्रभाव लोगों पर पड़ता है। वे बोलें नहीं, तब भी मौन के द्वारा ही साधकों को उपदेश देते हैं। उन उन्नत आत्माओं को नमस्कार !

ज्ञान बड़ी शक्ति है। जो वैद्य दवालों का ज्ञान रखता है। शरीरयन्त्र, उसकी प्रक्रियाओं, रोगों, निदानों और निवारणो पायों को जानता है, वह बड़ा शक्तिशाली व्यक्ति होता है। उसका प्रभाव सहस्रों व्यक्तियों पर पड़ता है। कानूनों का ज्ञात रखने वाले वकील में बड़ी शक्ति होती है। सेनापति और सेनाध्यक्षों में, जो कि युद्धतन्त्र का पूर्ण ज्ञान रखते हैं, बड़ी शक्ति होती है। उनके सामने सारी सेना एकदम शक्तिमयी हो जाती है और उनके आदेश से मर मिटने को तैयार हो जाती है। पुलिस के इङ्गित मात्र से सड़क पर चलने वाली सारी गाड़ियाँ रुक जाती हैं। जैसे अग्नि से उष्णता को अलग नहीं किया जा सकता वैसे ही ज्ञान से शक्ति को अलग नहीं किया जा सकता । माया का अधिष्ठान जो ब्रहम है, वह सारे ज्ञानों का भण्डार है। ब्रहम का ज्ञान रखने वाला व्यक्ति बहुत ही शक्तिशाली होता है। उसकी इच्छाएँ सत्सङ्कल्प से होती हैं, अतः पूरी हो जाती हैं।

ज्ञानी में माँस आदि तामस आहार को सात्विक रूप में बदल देने की शक्ति होती है। वह माँस को हलवा बना सकता है। वह संसारी मनुष्यों की तरह सुख या स्वाद के लिए कुछ नहीं खाता है। उसके मन पर किसी वस्तु की छाप नहीं पड़ती है। वह सदा साक्षी रहता है। वह अपने शरीर, मन और इन्द्रियों से मुक्त रहता है। वह सदा अन्तरात्मा से आनन्द प्राप्त करता रहता है। उसको ऐसा कभी नहीं लगता कि उसने बढ़िया पक्वान्न खाया है। उसकी स्थिति अनिर्वचनीय है। उसकी स्थिति का अनुमान सभी नहीं लगा सकते ।

कानपुर के पास एक योगी रहता था। उसके पास कई सिद्धियाँ थीं। वह चिथड़ों में घूमता रहता था। वह अवधूत की स्थिति में था। एक बार एक विदेशी अधिकारी प्रवास पर जाते हुए उस ग्राम के मार्ग से जा निकला। उसने उस योगी को शिर पर सामान ढोने का आदेश दिया। वह अधिकारी सामने घोड़े पर सवार हो कर जा रहा था। उसने पीछे मुड़ कर देखा तो देखता है कि उस मङ्गलदास (योगी) के शिर से तीन फुट की ऊँचाई पर वह सामान अधर में चल रहा है। अधिकारी को बढ़ा आश्चर्य हुआ। वह घोड़े पर से उतरा, उस सन्त को प्रणाम किया और अपनी भूल के लिए क्षमा-याचना की।

जीवन्मुक्त समझ जाता है कि वह मुक्त है। उसका फिर पुनर्जन्म नहीं है। वह यह भी समझ जाता है कि उसका सारा कत्र्तव्य पूरा हो गया है, किसी भी काम के लिए उसे फिर इस संसार में आना नहीं पड़ेगा। उसने जो कुछ पाना था सब पा लिया है, अब और कुछ जानने या पाने को बाकी नहीं है। उसने सर्वोत्कृष्ट ज्ञान पा लिया है।

जीवन्मुक्त के लिए इस संसार की सत्ता नहीं रह जाती है। वह सदा सर्वत्र ब्रहम को ही पहचानता है। सामान्य मनुष्य जब यह जान जाता है कि यह रस्सी है साँप नहीं, यह मृगतृष्णा है जल नहीं, तो फिर वह रस्सी या मृगमरीचिका को देख कर भ्रम में नहीं पड़ता है। उसी प्रकार जीवन्मुक्त के सामने यदि सारा विश्व दोबारा आये तब भी वह भ्रान्त नहीं होता है। यदि संसार उसे दोबारा भासता भी है तो वह द्वन्द्वों का, मानसिक क्लेश, पीड़ा और शोक का पहले वाला संसार नहीं रहता है, वह आपत्तियों और कष्टों का कारागार नहीं रहता है। दुःखों, कष्टों से भरा हुआ संसार अब सच्चिदानन्द में बदल गया है। उस सर्वव्यापी आत्मा के ज्ञान के कारण सारी बाधाएँ, सारे भेद, सारी विशेषताएँ और सारी द्व'त भावनाएँ समाप्त हो गयी हैं। उसकी दृष्टि विश्वदृष्टि बन गयी है।

बात्मानन्द और आत्मज्ञान में वह आनन्दित रहता है। अपनी ही बात्मा में वह प्रसन्न रहता है। इसलिए उसमें कोई बाधा नहीं डाल सकता। उसकी स्थिति अवर्णनीय है।

''लोगों को यह मालूम रहता है कि उनके पैर में एक पुराना फंटा जूता लटका हुआ है तथा उनका पैर उस जूते से भित्र है।"

इसी तरह ज्ञानी अपने जर्जर शरीर को देख कर यह अनुभव करता है कि वह उससे लटका हुआ एक फटा-पुराना खोल है और वह स्वयं ब्रह्म है तथा उस शरीर से सर्वथा भित्र और पृथक् है।

शराबी शराब के नशे में जब चूर रहता है उस समय उसे यह भान नहीं रहता है कि कपड़ा उसके कन्धे से नीचे लटक रहा है; इसी प्रकार ब्रह्म के नशे में चूर ज्ञानी को इस देह का भान नहीं रहता है।

ब्रह्मज्ञानी को भी दुःख होता है, फिर भी संसारी व्यक्ति के और उसके दुःख में अन्तर है (प्राचीन वेदान्त-मत) ।

दृश्य जगत् के बाह्य रूप को जीवन्मुक्त देखता तो है, पर उसका अनुभव भिन्न प्रकार का है। उसका अनुभव है कि सारा विश्व उसके आत्मा में है। उसके मन में उस संसार का मिथ्यात्व निश्चित हो चुका है।

स्वप्न में मनुष्य राजा बनता है, सभी वाञ्छनीय भोगों को भोगता है, कुछ काल पश्चात् शत्रु से पराजित हो कर वन में जाता है और वहाँ कठोर तपस्या करता है। फिर वह स्वप्न देखता है कि वह भिखारी है। आधे घण्टे के समय में मानो वह अस्सी वर्ष जीया है, ऐसा अनुभव करता है। वह स्वप्न देखता है कि उसे साँप ने काट लिया है और वह मर गया है। अब वह भय से अपनी आँखें खोलता है और उसे पता चलता है कि यह सब-कुछ स्वप्न था। जैसे जागने पर मनुष्य स्वप्न के पदार्थों को नहीं देखता है, वैसे ही ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर लेने पर ज्ञानी संसार को नहीं देखता है।

ज्ञानी समस्त संसार को अपने में ही स्थित देखता है और सबको आत्मा ही मानता है। दिन में सूर्य प्रकाश देता है। चाँद और तारे रात को प्रकाश देते हैं। इस प्रकाश को देखने का साधन क्या है? एकमात्र आँख से ही प्रकाश देखा जा सकता है। अन्धे को प्रकाश की कल्पना नहीं होती है। किस साधन से यह जाना जा सकता है कि आँखें खुली हैं या बन्द ? बुद्धि से। आँखों को भी वुद्धि से शक्ति मिलती है। यदि बुद्धि न होती तो आँखों से सूर्य का प्रकाश देख न पाते। उस बुद्धि को भी प्रकाश देने वाला कौन है ? आत्मा। वह प्रकाशों का प्रकाश है, स्वयंज्योति है। मैं वह है। वहाँ मैं है- 'तत्र अहम् ।'

जीवन्मुक्त कहता है- "मैं पृथ्वी है। मैं पृथ्वी में है। मैं जल है। मैं जल में है। मैं अग्नि है। मैं अग्नि में है। मैं वायु है। मैं वायु में है। मैं पुष्प है। मैं पुष्प में है। मैं वृक्ष है। में वृक्ष में है। मैं स्त्री है। मैं स्त्री में है। मैं बुद्धि है। मैं बुद्धि में है। मैं सागर है। मैं सागर में है। मैं प्रकट-रूप विराट् है। मैं अन्तर्यामी हिरण्यगर्भ है। मैं ब्रह्म है।

"मैं जब स्वयं ब्रह्मस्वरूप है तो किसको प्रणाम करू ? मेरे सिवा जब कुछ भी नहीं है तो कौन किसको सम्मान दे, कौन किसको प्रणाम करे ? मैं उस महान् पुरुष को जानता है जो सूर्यबत् प्रकाशमान् है, जो अन्धकार (अविद्या) से परे है। उसको ही जानने से मृत्यु जीती जा सकती है। मुक्ति का और कोई दूसरा उपाय नहीं है।

"मैं रेत के एक कण में विश्व को, जङ्गली पुष्प में स्वर्ग को, अपनी हथेली में अनन्त रूप को और घण्टेभर में नित्यता को देखता है।

"मुझमें ही सृष्टि का उद्भव है, मुझमें ही अखिल ब्रह्माण्ड स्थित है, मुझमें ही सब लय होता है। मैं स्वयं कालातीत ब्रह्म है। शिवोऽहम्, शिवोऽहम्, शिवोऽहम् ।। न मैं यह शरीर है, न यह मन है। चिदानन्दरूपः शिवोऽहम् ।।

"मैं सभी शरीरों में आनन्द लेता है। मैं सभी शरीरों में दुःख भोगता है। मैं सभी आँखों से देखता है, सभी हाथों से काम करता है और सभी कानों से सुनता है।"

यह ज्ञानी का अनुभव है। अधिक पुस्तकों का अध्ययन आवश्यक नहीं है। उपयुक्त विचारों का सतत चिन्तन करो। इससे शीघ्र ही आत्मानुभूति प्राप्त होगी।

ज्ञानी कहता है- "मैं सर्वरूप है।" ब्रह्म के साथ तादात्म्य अनुभव करता है। "मैं सर्व में है।" बह सारा ब्रह्माण्ड ब्रह्म में हिलोरें ले रहा है। इसलिए वह अनुभव करता है- "मैं सर्वरूप है। सारे नाम और रूप मुझसे भिन्न नहीं है।" 'मैं' से विचार को अलग नहीं किया जा सकता, अतः यह कहना उपयुक्त होगा कि 'मैं सर्वरूप है।'

परिशिष्ट

दिव्य जीवन सङ्घ, शिवानन्दनगर

आध्यात्मिक दैनन्दिनी

महिना -------------------------- सन ---------------------------------- आयु --------------------------

१. कितने घण्टे सोये ?

२. सो कर कब उठे ?

३. आसन कितनी देर किये ?

४. एक आसन में कितनी देर बैठे ?

५. शारीरिक व्यायाम कितनी देर किया ?

६. कितनी देर तक अपने इष्टदेव (सगुण या निगुण) का ध्यान किया ?

७. कितना समय कीर्तन में लगाया ?

८. कितनी देर धार्मिक पुस्तकें पढ़ीं ?

६. सत्सङ्ग कितनी देर किया ?

१०. स्वार्थ-रहित निष्काम सेवा में कितना समय लगाया ?

११. कितनी माला का जप किया ?

१२. कितने प्राणायाम किये ?

१३. गीता के कितने श्लोक पढ़े या कण्ठस्थ किये ?

१४. कितने मन्त्र लिखे ?

१५. कितनी देर मौन रहे ?

१६. कितने व्रत और जागरण किये ?

१७. कितना दान किया ?

१८. कितनी बार झूठ बोले क्या दण्ड दिया ? और उसके लिए अपने को

१९. कितनी बार क्रोध किया, कितनी देर रहा और उसके लिए क्या दण्ड दिया ?

२०. कितने घण्टे व्यर्थ बिताये ?

२१. कितनी बार ब्रह्मचर्य में त्रुटि हुई ?

२२. कितनी बार बुरी आदतों को रोकने में असफल रहे और अपने को क्या दण्ड दिया ?

२३. किन गुणों का विकास कर रहे हैं ?

२४. किन बुरी आदतों को रोकने का प्रयत्न चल रहा है ?

२५. कौन-सी इन्द्रिय आपको अधिक सताती है ?

२६. कितने बजे सोये ?

नाम--------------------------------- हस्ताक्षर

पता

दिव्य जीवनं सङ्घ, शिवानन्दनगर, ऋषिकेश

संकल्प-पत्र

१- मैं नित्य मिनट आसन और प्राणायाम करूंगा ।

२-मैं सप्ताह/पक्ष/माह में एक बार रात्रि को भोजन न कर केवल दूध और फल ही ग्रहण करूंगा।

३- मैं एकादशी के दिनों में या माह में एक बार व्रत रखूंगा।

४- मैं अपने सुखोपभोग की एक वस्तु को एक बार प्रति ... दिन/महीने अथवा उसे... दिनों / महीनों के लिए त्याग दूंगा ।

५- मैं प्रतिदिन या सप्ताह या मास में एक बार से अधिक अपने को निम्नलिखित दुर्व्यसनों में न डिगाऊँगा :

(अ) घूमपान,
(ब) ताश खेलना,
(स) सिनेमा देखना,
(द) उपन्यास पढ़ना ।

६- मैं... मिनट /घण्टे नित्य तथा मिनट / घण्टे के लिए रविवार या अन्य छुट्टी के दिनों में मौन-व्रत रखूंगा और इस समय को धारणा, घ्यान, जप तथा अन्तनिरीक्षण में लगाऊँगा ।

७- मैं लगातार... सप्ताह/माह ब्रह्मचर्य का पालन करूंगा ।

८- मैं किसी के प्रति क्रोधान्वित, कठोर और अश्लील वाणी इस वर्ष नहीं उच्चारण करूंगा।

९- मैं इस वर्ष किसी भी मूल्य पर सत्य-भाषण करूंगा।

१०- मैं किसी के प्रति बुरे विचार या द्वेषभाव नहीं रखूंगा।

११- मैं अपनी आय में से पैसे प्रति रुपये के हिसाब से दान करूंगा।

१२ - मैं नित्य या सप्ताह में घण्टे निष्काम्य कर्मयोग का अभ्यास करूंगा ।

१३- मैं नित्य माला जप करूंगा (१०८ मनकों की माला) ।

१४-मैं अपनी नोट पुस्तक में नित्य-प्रति मिनट या... पृष्ठों में इष्टमन्त्र या गुरुमन्त्र को लिखूँगा।

१५- मैं नित्य-प्रति गीता के श्लोक का अर्थ-सहित अध्ययन करूंगा ।

१६- मैं दैनिक आध्यात्मिक दैनन्दिनी का पालन करूंगा तथा उसकी एक प्रति को अपने गुरु जी के पास भेजूंगा जिससे मुझे आगे के लिए उपदेश मिल सके ।

१७- मैं नित्य प्रातः बजे उठूंगा तथा घण्टा समय जप, धारणा, ध्यान, प्रार्थना आदि में लगाऊँगा ।

१८- मैं अपने परिवार के लोगों तथा मित्रों के साथ नित्य-प्रति... घण्टा/मिनट रात्रि में सङ्घीत्तंन करूंगा।

दिनाङ्क"   हस्ताक्षर

नाम और पता ------------------------

आवश्यक नियम

शीघ्र आध्यात्मिक प्रगति के लिए

१- दैनिक आध्यात्मिक दैनन्दिनी रखिए तथा महीने के अन्त में उसकी एक प्रति अपने आध्यात्मिक गुरु के पास भेजिए जो आपको आगे के लिए उपदेश देंगे।

२- दैनिक लिखित जप के लिए पुस्तिका रखिए तथा नित्य-प्रति स्याही से इष्टमन्त्र या गुरुमन्त्र को एक या दो पृष्ठ लिखिए।

३- दैनिक अभ्यास के लिए कार्यक्रम बना लीजिए तथा हर हालत में उसका पालन कीजिए। विक्षेप तथा बाधाएँ बहुत-सी हैं। सदा सावधान तथा सतर्क रहिए।

४- नये वर्ष के लिए कुछ सङ्कल्प कर लीजिए। सङ्कल्प-पत्र पहले दिया जा चुका है। किसी को भी आप हटा सकते हैं या परिवर्तन ला सकते हैं अथवा कुछ ऐसे और सङ्कल्पों को जोड़ सकते हैं, जो आपकी प्रवृत्ति, सुविधा तथा प्रगति के स्तर के अनुकूल हों।

५-अपने जीवन-क्रम को अचानक ही न बदल डालिए। अपनी सङ्कल्प-शक्ति का विकास कर, मन तथा इन्द्रियों को वशीभूत कर सङ्कल्प-पालन द्वारा उन्नति कीजिए।

६- आत्मसंयम की कमी होने के कारण, अनजाने में अथवा परिस्थितियों के वशीभूत होने से यदि किसी भी सङ्कल्प के पालन में आपको विफलता प्राप्त हो तो आप कुछ माला अधिक जप करें अथवा एक बार का भोजन त्याग दें जिससे आपके मन में सङ्कल्प-पालन का महत्त्व बैठ जाय।

७- सङ्कल्प-पत्र की दो प्रति रखिए, एक प्रति को हस्ताक्षर के साथ अपने गुरु के पास भेज दीजिए। इससे आप सङ्कल्पों के पालन में ढिलाई नहीं कर सकते और किसी झूठे बहाने से उसे तोड़ नहीं सकते।

८- अपने मित्रों से प्रार्थना कीजिए कि वे भी सङ्कल्प-पत्र, आध्यात्मिक दैनन्दिनी तथा मन्त्रलेख पुस्तिका का पालन करें। इस प्रकार आप बहुतों को संसार-पङ्क से निकाल सकते हैं।